प्रातःस्मरणीय,

योगी और परमहंस

हिमालयवासी श्री स्वामी गंगानंद जी महाराज के चरणों में—

गुरुदेव,

आप न जाने कहाँ हैं ? इन दस वर्षों में मैं बहुत गिरा हूँ; प्रमाद के कारण अनेक बार पतित हुआ हूँ। यदि आपका सत्संग मिलता रहता तो आज मेरी यह दशा क्या होती ?

आपके चरणों में बैठकर पहले-पहल आध्यात्मिक उपासना का महत्व समझ पाया था; आज प्रलोभन और प्रमादपूर्ण जीवन के अंधेरे मार्ग में मेरे लिए वही सहारा है। उसे भूल जाता हूँ पर संसार की ठोकर खाकर, गिर कर, तिलमिलाकर फिर उधर आँखें उठाकर जीवन की भिक्षा मांगता हूँ।

मैं आपको क्या दे सकता हूँ ? आपकी आशा मेरे जीवन में पूरी होगी, यह भी कौन कह सकता है ? फिर भी यह क्षुद्र कृति, जिसमें एक महान् आत्मा की वाणी निहित है, आपके चरणों में समर्पित है।

सेवक,
'सुमन'

पुस्तक के सम्बन्ध में—

ईसाई धर्मग्रन्थों में बाइबिल के बाद 'इमीटेशन' (Imitatio M Christie) का सबसे अधिक आदर और प्रचार है; दुनिया की प्रायः सभी प्रधान भाषाओं में इसके अनुवाद हो चुके हैं और अबतक लग-भग सात हजार संस्करण निकल चुके हैं। इसके एक-एक भाग दो-दो चार-चार आने से लेकर ९३००) तक में बिके हैं। इसका एक संस्करण पैरी में १८५५ में छपा और सिर्फ १०३ प्रतियों की छपाई में नौ लाख रुपये खर्च हुए। इन बातों से पता चलता है कि जनसमाज में इसका कैसा आदर और स्वागत हुआ है। इसके प्रभाव के सम्बन्ध में प्रो० हारनैक ने लिखा है—"यह हृदय में स्वतंत्र धार्मिक वृत्ति को प्रकाशित करता है; तथा ऐसी आग जलाता है जो अपनी निराली लपट के साथ जलती है।" ×

मूल पुस्तक लैटिन भाषा में लिखी गई थी। इसकी एक बहुत प्राचीन हस्तलिपि ब्रसेल्स के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित है। इसके अंत में लिखा है—"प्रभु के १४४१† संवत् में, ज़्वोल (Zwolle)-निकटवर्त्ती माउण्ट सेण्ट ऐग्ने में धर्मबंधु टामस केम्पिस के हाथ से यह ग्रंथ पूर्ण हुआ।"

× "It kindles independent religious life, and a fire which burns with a flame of its own." What Is Christianity? Page—266

† परन्तु इसकी २० और हस्तलिखित प्रतियां मिली हैं जो इससे भी पहले की हैं; जैसा कि हम आगे लिखेंगे।

इस विषय में विद्वानों में बड़ा मतभेद है कि इस पुस्तक का लेखक असल में कौन है। बहुतों का कहना है कि पुस्तक के भिन्न-भिन्न भागों को कई ईसाई संतों ने समय-समय पर लिखा। टामस केम्पिस के हाथ से तो इसकी पूर्णाहुति हुई है। लगभग सवा तीन सौ वर्षों से इस बात को लेकर वाद-विवाद चलता रहा है। कहा जाता है कि कुछ हिस्सों के अनुवाद एक प्रान्तीय डच बोली में १४२३ में ही हो गये थे। पर साधारणतः टामस केम्पिस को ही लोग इसका प्रणेता मानते हैं।

इसकी सब से प्राचीन हस्तलिपि १४२४ ई० की मिलती है जिसमें केवल प्रथम खण्ड है। सम्पूर्ण पुस्तक की सब से प्राचीन प्रति १४२७ ई० की है। कुछ प्रतियां इससे भी प्राचीन बताई जाती हैं; हो भी सकती हैं पर उनमें सन्-सम्वत कुछ दिया नहीं है इसलिए निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता।

एक डच पादरी (Johann Van Schoonhoven) का लैटिन भाषा में एक पत्र मिला है। इसमें इस पुस्तक के प्रथम भाग का कुछ ज़िक्र है। उस पर से बहुतों ने यह अनुमान लगाया है कि प्रथम भाग केम्पिस का लिखा नहीं है; कहीं से लेकर उसने संग्रह कर दिया है। इस पत्र से इतना तो निश्चित हो जाता है कि 'इमीटेशन' (जीवन-सूत्र) के प्रथम भाग की रचना १३८२ और १४२४ ई० के बीच हुई है।

यह कहना भी मुश्किल है कि चारों खण्ड एक ही लेखक-द्वारा, या एक ही समय में, लिखे गये हैं। और भाग कब लिखे गये, इसका भी पता नहीं चलता। पुस्तक में प्रयुक्त मुहाविरों तथा उसकी भाषा से तो ऐसा मालूम होता है कि लेखक

टीटानिक जाति का था। फिर इस पुस्तक की लगभग ४०० प्राप्त हस्तलिपियों में ३४० टीटानिक देशों में मिली हैं। उनमें भी १००, और सब से प्राचीन, तो नेदरलैण्ड से ही प्राप्त हुई हैं। इन सब बातों का विचार करने पर कहा जा सकता है कि हालैण्ड में इस पुस्तक का सब से पहले और सब से ज्यादा प्रचार हुआ था।

फिर जिस मठ में केम्पिस रहता था वहाँ उसके जीवन-काल में तथा बाद भी लोग उसी को इस पुस्तक का लेखक मानते थे। उसके पास के एक मठ (Windesherm) के सदस्य बूश (Busch) ने भी, जो उससे परिचित था, उसे ही लेखक माना है।

इन बातों के अलावा केम्पिस की सब से पुरानी जीवनी १४९४ में छपी थी। इसकी हस्तलिपि १४८८ की मिलती है। अज्ञात जीवनी-लेखक लिखता है—"मुझे 'सेण्ट माउण्ट एग्ने' के मठ (जिस में केम्पिस रहता था) के बन्धुओं से, जीवनी की बहुत-सी सामग्री प्राप्त हुई है।" यह जीवनी केम्पिस की मृत्यु के चन्द वर्षों बाद ही लिखी गई। १४७१ ई० में केम्पिस का देहावसान हुआ। जीवनी की १४८८ की हस्तलिपि प्राप्त है। इसलिए इसे प्रामाणिक मानना ही चाहिए। इस लेखक ने 'जीवन-सूत्र' (इमीटेशन) के तीसरे खण्ड को केम्पिस का लिखा बताया है। इसके अलावा उसने उसकी लिखी ३८ और पुस्तकों के नाम दिये हैं जिनमें कई छोटी पुस्तकों में 'इमी-टेशन' (जीवन-सूत्र) बिखरा हुआ है। इन बातों से तो यही सिद्ध होता है कि इसका लेखक केम्पिस ही है।

इसका प्रथम संस्करण छप कर १४७१ ई० में प्रकाशित हुआ। स्वर्गीय प्रो० इंग्रम ने पहली बार अंग्रेजी भाषा में इसका अनुवाद किया। तब से इसके कई अनुवाद प्रकाशित हुए हैं।

× × ×

टामस केम्पिस का जन्म, कोलंग से ४० मील दूर डसोंलडरक नामक नगर के पास राइन एवं म्यूस नदियों के बीच बसे 'केम्पन' क़सबे में, १३८० में हुआ था। पिता का नाम गरट्रूड हेमार्किन था। केम्पिस का असली नाम टामस हेमार्किन था। यह एक धार्मिक कुटुम्ब था। हेमार्किन के दो पुत्रों (जान तथा टामस केम्पिस) ने अपना सारा जीवन आध्यात्मिक विभूतियों की प्राप्ति में लगा दिया। टामस केम्पिस ने आचारिक साधना के साथ ही जीवन में आन्तरिक अनुभूतियों को प्रधानता दी। इसीलिए इस पुस्तक की अधिकांश बातें न केवल ईसाई धर्म-भावना के अनुकूल हैं वरन् अन्य धर्मों की उच्च भावनाओं को भी प्रकट करती हैं।

'क्राइस्ट का अनुकरण' (Imitatio Christie) नाम भ्रमात्मक है। इस नाम के ऊपर अनेक विद्वानों ने आक्षेप किया है। क्योंकि इसमें सार्वदेशिक सदाचार एवं भक्तितत्त्व के भी अनेक सिद्धान्त निहित हैं। कई पुरानी हस्तलिखित प्रतियों में 'म्यूज़िका एकलेज़ियास्टिका' (धर्म मन्दिर-गायन) के नाम से भी इसका उल्लेख किया गया है।

× × ×

इस पुस्तक से मेरा प्रथम परिचय, प्रायः दस वर्ष पहले असहयोग-आन्दोलन के समय बनारस ज़िला-जेल में हुआ।

उन दिनों जेल में बाक़ायदा गाँधी-आश्रम स्थापित हुआ था और आचार्य कृपलानी हम लोगों को इस पुस्तक के चुने हुए अंश सुनाते और उनकी व्याख्या करते थे। तभी से मेरे हृदय में इसका अनुवाद करके हिन्दी पाठकों के सामने रखने का भाव पैदा हुआ परन्तु बीच में अन्य अनेक कार्यों में लग जाने के कारण, इच्छा होते हुए भी, इधर ध्यान न दे सका। गत वर्ष के अन्तिम भाग में मैंने इसके प्रथम खण्ड का अनुवाद बीमारी की अवस्था में पड़े-पड़े किया था। इसलिए इस वर्ष सत्याग्रह-आन्दोलन में बन्दी होकर आने के बाद मैंने अपने जेल-जीवन को इसकी पूर्ति में लगाया और फल-स्वरूप पुस्तक जनता के सामने उपस्थित है।

मैंने इस पुस्तक का अविकल अनुवाद नहीं किया है। जो बातें अन्य धर्मावलम्बियों के लिए भी कल्याणकर हो सकती हैं, उन्हें ही मैंने लिया है। ईसाई पौराणिक बातों को छोड़ दिया है। कई अध्याय छूट गये हैं तथा चौथा खण्ड तो बिलकुल ही छोड़ दिया गया है। अन्य विद्वानों की तरह मुझे भी इसका प्रचलित नाम भ्रमात्मक मालूम हुआ; फिर इतनी काट-छाँट के बाद इसका रूप और ज्यादा बदल चुका था और चूँकि इसमें जीवन के उत्थान के सम्बन्ध में अनेक सिद्धान्तों का उपदेश किया गया है, इसलिए मैंने इसका नाम 'जीवन-सूत्र' रक्खा है।

इस पुस्तक में सदाचार एवं भक्ति-तत्त्व की प्रधानता है। अनेक जगह इसकी शिक्षायें गीता तथा अन्य हिन्दू सद्‌ग्रन्थों से मिलती-जुलती हैं। इसमें भी अनेक स्थानों पर ईश्वरीय वाणी का आभास मिलता है। इससे हृदय को बल मिलता है; आचारों का परिष्कार होता है तथा आध्यात्मिक एवं पवित्र सदाचारमय

जीवन की ओर बढ़ने की व्याकुलता उत्पन्न होती है। इसलिए नवयुवकों एवं नवयुवतियों के लिए यह विशेष लाभ की चीज़ होगी, इसमें मुझे संदेह नहीं है।

अंग्रेज़ी भाषा में इसके जो अनुवाद हुए हैं वे पुराने ज़माने की अंग्रेज़ी में हैं।। तब से आज अंग्रेजी भाषा का रूप बहुत बदल गया है। शब्दों के उच्चारण, व्युत्पत्ति, 'स्पेलिंग' तथा प्रायः अर्थ में भी पहले से अन्तर पड़ गया है। इसलिए इस पुस्तक का अनुवाद करने में बड़ी कठिनाइयाँ आती हैं फिर भावों में उलट-पुलट न हो जाय, इसका मैंने बहुत ध्यान रक्खा है।

इस पुस्तक का बँगला में जो अनुवाद आचार्य लक्ष्मीप्रसाद चौधरी ने किया है, वह मूल से अनेकांश में भिन्न है। उससे भी मैंने कहीं-कहीं सहायता ली है।

यदि इससे थोड़े भाई-बहनों के जीवन पर भी अच्छा असर पड़ा तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

सेण्ट्रलजेल,
अजमेर
९-६-३२

श्री रामनाथ 'सुमन'

विषय-सूची

प्रथम खण्ड : साधना का पथ ३-७८

जीवन-सूत्र

'इमीटेशन ऑव् क्राइस्ट' का स्वतन्त्र अनुवाद

—श्री रामनाथ 'सुमन'

प्रथम खण्ड

साधना का पथ

[१]
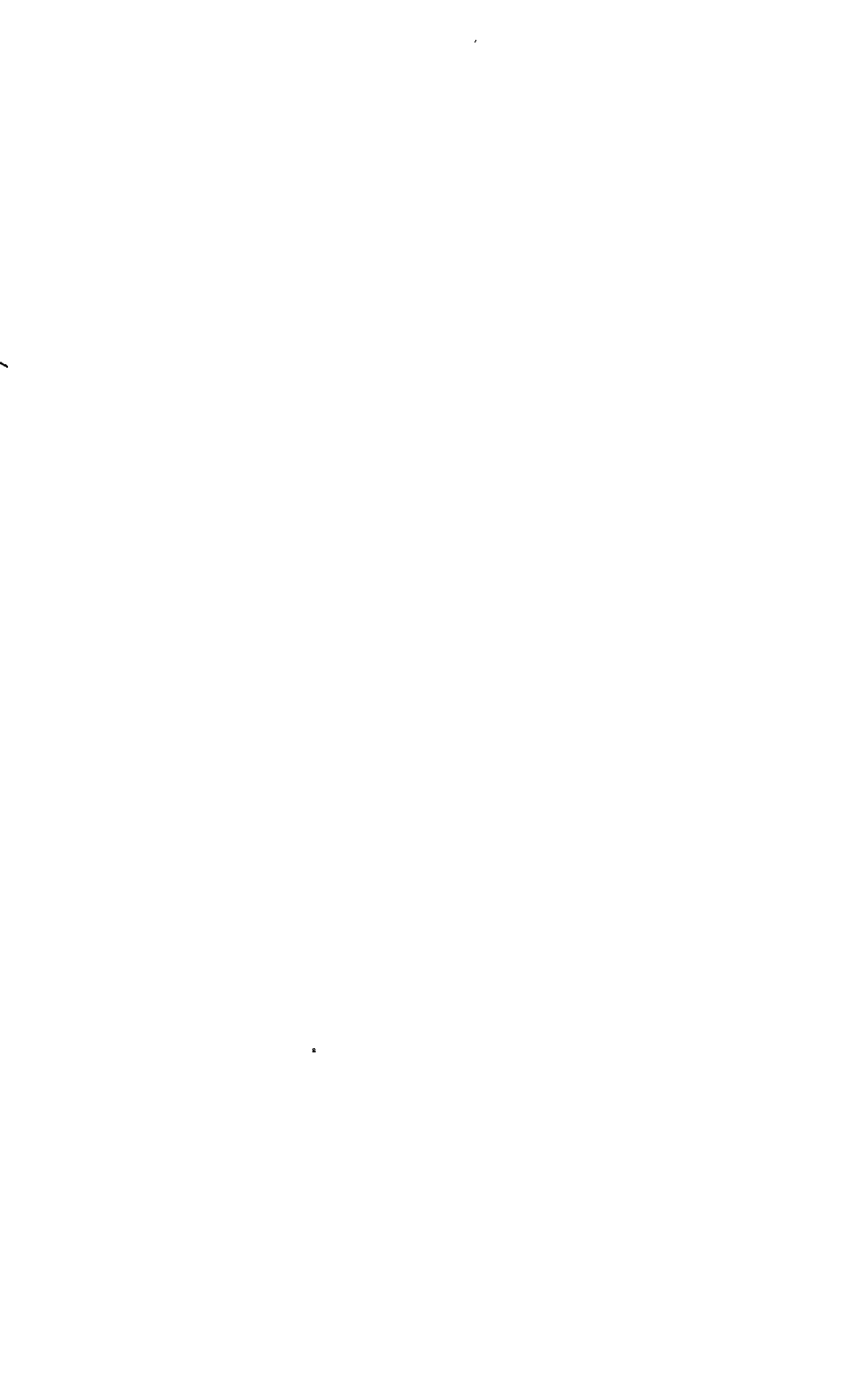
अनासक्ति

बड़ी-बड़ी बातें करने से कोई आदमी पवित्र और सदाचारी नहीं होता; निर्मल जीवन ही मनुष्य को भगवान् का प्यारा बनाता है।

मैं पश्चात्ताप की परिभाषा जानने की अपेक्षा उसका अनुभव करने की इच्छा अधिक रखता हूँ।

यदि संसार के सब धर्मग्रंथ तुझे कण्ठस्थ हैं और तू सब तत्त्वज्ञानियों की शिक्षाओं से परिचित है तो इससे क्या लाभ, यदि उसके साथ ही शील और उदारता को तूने नहीं अपनाया।

भगवान् के प्रेम और सेवा के अतिरिक्त संसार की अन्य सब वस्तुयें मिथ्या हैं और उनपर गर्व करना अहंकार है।

संसार के प्रति अनासक्ति रखना ही मनुष्य के लिए सब से बड़ा ज्ञान है; इससे वह स्वर्ग-राज्य के निकट पहुँचता है। नाशमान धन-वैभव की खोज करना और उनमें विश्वास रखना अहंकार है।

यश की इच्छा और ऊँची पद-मर्यादा का लोभ भी छूछा है और अहंकार प्रकट करता है।

और हाड़-मांस (शरीर) की वासनाओं का अनुगमन करना तथा ऐसी वस्तुओं की प्राप्ति की चिन्ता, जिनका कुफल आगे भोगना पड़ेगा, भी तो माया और अहंकार है !

दीर्घ जीवन की कामना करना और अच्छे एवं पवित्र जीवन से उदासीन रहना मूर्खता और अहंकार है !

और सिर्फ वर्तमान जीवन पर ध्यान देना और जो-कुछ आगे आने वाला है, उसकी परवा न करना भी मनुष्य का मिथ्या अहंकार है।

और जो वस्तुयें नाशमान हैं तथा जिनका रूप प्रत्येक क्षण तेजी के साथ बदल रहा है उनमें आसक्त रहना तथा अमृत के उस झरने की ओर अग्रसर न होना, जहाँ चिर-आनन्द का निकेत है, मनुष्य का मिथ्या अहंकार है।

इस लोकोक्ति का हमेशा ध्यान रख कि आँख देखने से और कान सुनने से भरे न हों (अर्थात् दृश्य एवं श्रव्य के प्रति आसक्ति न हो)।

इसलिए दृश्यमान् वस्तुओं से हृदय हटाकर अदृश्य में अपने को नियोजित करने का अभ्यास कर ।

जो लोग अपनी कामनाओं के पीछे दौड़ते हैं, अपने अन्तःकरण को मैला और धुँधला कर लेते हैं और ईश्वरीय विभूति से हाथ धो बैठते हैं।

[२]

'स्व' का नम्र ज्ञान

प्रत्येक मनुष्य स्वभावतः ज्ञान प्राप्त करना चाहता है; किन्तु भगवान् के भय एवं दैवी शील से रहित ज्ञान का मूल्य क्या है?

निश्चय ही वह ग़रीब हलवाहा, जो भगवान् की सेवा करता है, उस अभिमानी तत्त्वज्ञानी से कहीं अच्छा है जो अपने निजी जीवन की बुराई-भलाई की ओर से आँखें मींचकर स्वर्ग की खोज और उसके मार्गों की विवेचना में मस्त रहता है।

जो अपने को भली प्रकार जान लेता है अपनी दृष्टि में बहुत तुच्छ जँचता है और मनुष्यों-द्वारा की हुई अपनी प्रशंसा में उसे आनन्द नहीं आता।

यदि मैंने संसार की सम्पूर्ण वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया किन्तु दूसरों के साथ उदार व्यवहार करना न सीखा तो उस ज्ञान से क्या हुआ? ईश्वर के सामने फिर कौन-सी चीज़ मेरी सहायता करेगी? क्या (केवल ज्ञानी होने के कारण) वह मुझे मेरे कर्मों के अनुसार फल न देगा?

तू ज्ञान-संचय की अत्यधिक कामना से बचता रह क्योंकि इससे तू भटक जायगा और आत्म-वंचना के रास्ते पर जा पड़ेगा।

जो ज्ञानी हैं, सहज ही पहचान लिये जाते हैं और दुनिया उन्हें बुद्धिमान कहती है किन्तु दुनिया में ऐसी बहुत-सी चीज़ें हैं जिनकी जानकारी से आत्मा को कुछ लाभ नहीं पहुँचता या पहुँचता भी है तो बहुत थोड़ा। वह निपट मूर्ख है जो अपनी आत्मा के स्वास्थ्य की अपेक्षा दुनिया की और चीज़ों में अधिक समय लगाता है।

आत्मा की प्यास बड़ी-बड़ी बातों से नहीं बुझती, सदाचारमय जीवन से ही मन को शान्ति मिलती है। पवित्र और शुद्ध अन्तःकरण ईश्वर में हमारे विश्वास को दृढ़ करता है।

यदि कर्त्तृत्व शक्ति प्राप्त करने के साथ ही तूने अपना जीवन पवित्र नहीं बनाया तो तू अपने कामों का दायरा जितना बढ़ायेगा और उन्हें जितनी सुघड़ता के साथ करने की चेष्टा करेगा उतना ही अपनी आत्मा को गिरायेगा। इसलिए कौशल या जानकारी के लिए इतना उत्सुक मत बन बल्कि इस प्रकार का जो ज्ञान तुझे मिले उससे सावधान रह।

यदि ऐसा मालूम पड़ता हो कि तुझे बहुत अधिक चीज़ों का ज्ञान है और उनके विषय में तू काफ़ी अनुभव रखता है तो भी तुझे विश्वास रखना चाहिए कि दुनिया में बहुत-सी ऐसी चीज़ें हैं जिनके बारे में तू कुछ नहीं जानता।

अपने को बहुत बड़ा बुद्धिमान न समझ ले बल्कि अपने अज्ञान और अपनी छोटाई को स्वीकार करता रह।

तू दूसरों पर अपने को तरजीह क्यों देता है जब ईश्वरीय ज्ञान में तेरी अपेक्षा ज्यादा जानकार लोग दुनिया में पाये जाते हैं?

यदि तू किसी वस्तु को फायदे के साथ सीखना और जानना चाहता है तो अपने को बहुत छिपाकर रख और अपने को नगण्य समझ।

सब से ऊँचा और लाभदायक ज्ञान यही है, अपने को जानना और अपनी तुच्छता एवं नगण्यता का अनुभव करना। एक मनुष्य के लिए, अपने को महत्व न देकर, सदा दूसरों को अच्छा समझना और उनके कल्याण की चिन्ता करते रहना ही श्रेष्ठ ज्ञान और मानवीय पूर्णता है।

यदि तू किसी को खुल्लम-खुल्ला पाप करते या भयंकर कुकर्मों में लिप्त देखता है तो तू अपने को उससे अच्छा समझकर उनकी हँसी न उड़ा क्योंकि तू नहीं जानता कि कबतक तू सत्कर्मों में अपने को लगाये रख सकेगा।

हम सभी अत्यन्त निर्बल प्राणी हैं किन्तु तू अपने से अधिक निर्बल और किसी को न समझ!

[३]

सत्य-शिक्षण

वह आनन्दमय है जिसे सत्य स्वयं शिक्षा देता है; शब्दों और आँकड़ों-द्वारा नहीं वरन् अपने असली रूप में प्रकट होकर।

हमारी सम्मतियाँ और हमारी भावनायें अक्सर हमें धोखा देती और असलियत को बहुत कम देख पाती हैं।

गुप्त और अन्धकारमय चीज़ों की इतनी खोज किसलिए? यदि हमने उन्हें नहीं भी जाना तो ईश्वर अपने फैसले में इसके लिए हमें दोषी नहीं ठहरावेगा।

हाय, यह कैसा अज्ञान है कि हम, उपयोगी और आवश्यक वस्तुओं की तो परवा नहीं करते पर असाधारण, आश्चर्यजनक और हानिकर चीज़ों पर बहुत ज्यादा ध्यान देते हैं। आँखें होते हुए भी हम देखते नहीं!

जिसे अनन्त शब्द (ईश्वर की वाणी) स्वयं पुकारता है, उसका रास्ता सरल हो जाता है और वह सम्मतियों एवं कामनाओं के जाल से मुक्त हो जाता है। उस एक शब्द से ही सब वस्तुयें प्रकट होती हैं और सब वस्तुयें वह एक ही शब्द बोलती हैं। यही वह सच्चा आरम्भ है जो हमसे बोलता है,

हमें सिखाता है। उसके बिना कोई ठीक-ठीक न तो समझता है, न पवित्रतापूर्ण निर्णय ही कर सकता है।

जिसके लिए सब वस्तुयें एक हैं—समान हैं और जो सब वस्तुओं को एक में ही नियोजित करता है और एक में सबको देखता है, स्थितप्रज्ञ हो सकता है और वह शान्तिपूर्वक ईश्वर में निवास करता है।

हे सत्य के देवता ! चिरन्तन प्रेम के सूत्र से बाँधकर हमें अपने से अभिन्न कर ले !

बहुत-सी बातें सुनते और पढ़ते-पढ़ते मैं ऊब जाता हूँ; हे प्रभु ! जो कुछ मैं चाहता हूँ या जिनकी दृढ़ इच्छा करता हूँ वे सब तो तेरे ही अन्दर विद्यमान हैं।

तेरे समक्ष सब प्रकार के उपदेष्टा शान्त हैं और सब प्रकार के प्राणी मौन। देव ! तू मुझसे एकान्त में बोल !

मनुष्य अन्तर में तुझसे जितना ही अभिन्न हो चुका है उतनी ही अधिक मात्रा में और उतनी ही श्रेष्ठता के साथ वह जगत् की नानाविध वस्तुओं को जानता है क्योंकि वह अपने ज्ञान का प्रकाश ऊपर से पाता है।

एक पवित्र, सरल और स्थिर आत्मा विविध कर्मों के बीच भटक नहीं जाता क्योंकि वह सभी काम ईश्वर के निमित्त करता है और अपने ज्ञान के विषय में की जानेवाली सब प्रकार की पूछताछ के सम्बन्ध में अपने को पूर्ण उदासीन और निश्चल रखने का प्रयत्न करता है।

तेरे असंयमित और बेकाबू मनोविकारों से अधिक तेरी उन्नति में बाधक और तुझे दुःख देनेवाली और कौन चीज है ?

एक अच्छा और धर्मात्मा मनुष्य जिन कामों को बाहर करने की सोचता है उन्हें पहले अन्दर ही साध लेता है। ये सब कर्म उसे दुष्ट प्रवृत्तियों की ओर नहीं ले जा सकते क्योंकि वह विवेकपूर्ण निर्णय के प्रकाश में उन कर्मों को करता है।

अपने मन पर विजय पाने में जो अपनी शक्ति लगाता है उससे अधिक घोर युद्ध किसे करना पड़ता है ? पर हमारा काम यही होना चाहिए कि हम अपने ऊपर विजय पा लें और प्रति दिन अपने मन पर अधिकाधिक अंकुश रखते हुए सत्कर्म की शक्ति प्राप्त करें।

इस संसार की सब प्रकार की पूर्णता के साथ एक प्रकार की अपूर्णता लगी रहती है। और हमारी कल्पनायें किसी न किसी तरफ़ से अन्धकार से आच्छादित हुए बिना नहीं रहतीं।

अपने विषय में नम्र ज्ञान, भगवान् को जितना प्रिय है उतना ज्ञान की गहरी खोज नहीं है।

ज्ञान अथवा वस्तुओं की सीधी-सादी जानकारी निन्दनीय नहीं है क्योंकि वह स्वतः अच्छी चीज है और भगवान्-द्वारा समर्थित भी है किन्तु पवित्र अन्तःकरण और पवित्र जीवन को सदा उस पर तरजीह देनी चाहिए।

चूँकि अधिकांश मनुष्य पवित्र जीवन बिताने के लिए नहीं, ज्ञान प्राप्त करने के लिए अध्ययन और अभ्यास करते हैं इसलिए प्रायः वे ग़लती कर बैठते हैं और उन्हें या तो उस ज्ञान का बिलकुल लाभ नहीं मिलता या मिलता है तो बहुत कम।

ओः ! यदि मनुष्य दुर्गुणों और पापों को उन्मूल करने एवं सद्गुणों और सत्कर्मों को रोपने इतना ध्यान देता जितना

वह बहस-मुबाहिसे और प्रश्नों में देता है तो हम लोगों में इतनी दुष्टता न होती, न मठों एवं मन्दिरों में इतनी सदाचारहीनता दिखाई पड़ती।

निश्चय ही अन्तिम निर्णय के दिन हमसे यह नहीं पूछा जायगा कि हमने क्या पढ़ा है वरन् यह कि हमने क्या किया है ? हमने लोगों से क्या अच्छी बातें कही हैं इसकी पूछ नहीं होगी; पूछ इसकी होगी कि हमने अपना जीवन कितनी पवित्रापूर्वक बिताया है !

तू मुझे बता दे कि वे बड़े-बड़े सरदार और शक्तिमान पुरुष आज कहाँ हैं जिनकी एक दिन तूती बोलती थी ? आज उनकी जगह दूसरे आदमी आ गये हैं और मुझे नहीं मालूम कि वे उन पहले के सत्ताधारियों के विषय में कभी सोचते भी हैं या नहीं ! अपने जीवन-काल में वे किस चहल-पहल के साथ रंग-मंच पर आये; आज यह हाल है कि कोई उनकी चर्चा तक नहीं करता। हे प्रभो ! इस संसार की विभूतियों का कितनी जल्दी अन्त हो जाता है !

भगवन् ! उनका जीवन यदि उनके ज्ञान, के अनुरूप ही उज्ज्वल होता (तो कैसा सुन्दर होता) क्योंकि उन्होंने भलीभांति परिश्रमपूर्वक अध्ययन किया था।

न जाने कितने ऐसे होंगे जो अपने मिथ्याज्ञान और भगवत्सेवा के प्रति अपनी लापरवाही के कारण संसार में नष्ट हो जाते हैं वे नम्र और दीन की अपेक्षा (भौतिक दृष्टि से) शक्तिमान् और महान् होना ही ज्यादा पसन्द करते हैं, इसलिए स्वयं अपने ही विचारों में वे डूब जाते हैं !

निश्चय ही वह व्यक्ति महान् है जो भीतर से अपने को बहुत छोटा और नम्र अनुभव करता है और सब प्रकार के यश की ऊँचाई जिसके लिए निस्सार है। वह अवश्य ही महान् है जिसमें महान् उदारता है। वही सच्चा बुद्धिमान् है जो भगवत्प्राप्ति के लिए सम्पूर्ण सांसारिक वस्तुओं को, बदबूदार गोबर के समान समझकर, छोड़ देता है। और वह निश्चय बहुत बड़ा ज्ञानी है जो अपनी इच्छाओं को त्यागकर भगवान् की इच्छा का अनुसरण करता है।

मानव-कर्म में विवेक

किसी मनुष्य के प्रत्येक शब्द और प्रत्येक प्रेरणा को ठीक समझ लेना भूल है। प्रत्येक बात को ईश्वरीय आज्ञाओं के प्रकाश में, शान्ति एवं स्थिर मन से तौलना चाहिए।

आह, अच्छाई की अपेक्षा दूसरों की बुराई पर हम ज्यादा विश्वास कर लेते हैं; हम कैसे दुर्बल प्राणी हैं !

पर जो विवेकवान हैं वे मनुष्य की कही हुई सब बातों पर इतने हलकेपन से विश्वास नहीं कर लेते; वे जानते हैं कि मनुष्य की दुर्बलता दोषोद्भावना के लिए बहुत जल्द तैयार हो जाती है और उसके शब्द पतनशील होते हैं।

इसी तरह प्रत्येक मनुष्य की बातों पर झट विश्वास न कर लेना चाहिए और न दूसरों से ऐसा कहना चाहिए कि हमने ऐसा सुना है-वैसा सुना है और ऐसा हमारा भी शक है।

अपने मामलों में सदा एक बुद्धिमान् और चरित्रवान मनुष्य से सलाह ले और अपनी कल्पनाओं का अनुगमन करने की अपेक्षा अपने से अच्छे आदमियों से शिक्षा ग्रहण करने की अधिक चिन्ता कर।

पवित्र जीवन भगवान् की निगाह में मनुष्य को ऊँचा उठाता है और बहुत-सी चीज़ों के सम्बन्ध में उसे विशेषज्ञ बनाता है।

मनुष्य जितना ही नम्र होगा और भगवान् के चरणों में जितना ही आत्मसमर्पण करेगा उतना ही वह सब विषयों में धीर और बुद्धिमान् बनता जायगा।

[५]

धर्म-ग्रन्थों का अध्ययन

सत्य की खोज वाग्मिता में नहीं, पवित्र धर्म-ग्रन्थों में करनी चाहिए और प्रत्येक धर्म-ग्रन्थ उसी भाव से पढ़ा जाना चाहिए जिस भाव से वह लिखा गया है।

धर्म-ग्रन्थों में हमें भाषा-सौष्ठव की अपेक्षा कल्याण और लाभ की अधिक खोज करनी चाहिए।

हमें सरल और पवित्र पुस्तकों का पारायण उसी प्रसन्नता से करना चाहिए जैसे उच्चकोटि के ग्रन्थों एवं भावपूर्ण गम्भीर वाक्यों का।

रचनाकार की प्रसिद्धि—अप्रसिद्धि को देखकर ग्रन्थ के विषय में तुझे अपने भाव नहीं बनाने या बदलने चाहिएँ। शुद्ध सत्य-प्रेम या ज्ञानार्जन के भाव से ही तुझे भगवत्प्रेम की ओर आकर्षित होना चाहिए।

यह न पूछ कि इसका कहनेवाला कौन है, इसपर विचार कर कि वह क्या कहता है। मनुष्य का एक दिन अन्त हो जाता है पर ईश्वरीय सत्य चिरन्तन है।

व्यक्तियों के प्रति आग्रह (आसक्ति) छोड़कर देखें तो मालूम होगा कि भगवान् हमसे नानारूपों और विधियों में बोलता है।

धर्मग्रन्थों के अध्ययन में हमारी उत्कण्ठा हमें प्रायः धोका देती है क्योंकि उसके कारण हम आश्चर्यप्रद की खोज में लग जाते हैं जब कि ऐसी बातों की ओर ज्यादा ध्यान न देना चाहिए।

यदि तू अध्ययन से लाभ उठाना चाहता है तो नम्रता, सरलता और सच्चाई के साथ उसे पढ़, लोगों की दृष्टि में ज्ञानी बनकर नाम कमाने के लिए नहीं।

जो पूछ प्रसन्नतापूर्वक पूछ और उत्तर शान्त एवं स्थिर चित्त से सुन।

वृद्धजनों के रूपकों पर क्रोध न कर क्योंकि वे अकारण ही ये उदाहरण नहीं देते।

[६]

अनुचित राग

जब कोई आदमी किसी वस्तु की अनुचित वाञ्छा करता है या उसके प्रति अपवित्र आग्रह रखता है तो उसका हृदय अशांत हो जाता है।

अभिमानी और लोभी को कभी शान्ति नहीं मिलती। दीन और नम्र भावनावाले शान्ति के विशाल क्षेत्र में विचरते हुए आनन्द उठाते हैं।

जिस मनुष्य की वासनायें बिलकुल मर नहीं गई हैं वह प्रलोभनों का शिकार हो जाता है और बहुत छोटी तथा नगण्य वस्तुयें उसपर हावी हो जाती हैं।

जिसका अन्तःकरण दुर्बल है फिर भी जिसमें भोग्य वस्तुओं की ओर शारीरिक झुकाव है वह सरलतापूर्वक सांसारिक वासनाओं से अपने को पूर्णतः मुक्त नहीं कर सकता और जब कभी वह इन वासनाओं से कुछ हटता भी है तो मन ही मन दुखी-सा रहता है और जब कभी उसकी इच्छा-पूर्त्ति के मार्ग में कोई बाधक होता है तो वह उससे घृणा करने लगता है।

यदि वह इच्छित वस्तु पा जाता है तो भी रह-रह कर उसके अन्तःकरण में काँटा-सा खटकता है कि मैंने अपनी उद्दाम

वासनाओं का अनुगमन किया जिससे हमारी उद्दिष्ट शान्ति की प्राप्ति में कुछ सहायता न मिली। इससे सिद्ध होता है कि वासनाओं की विजय से ही हृदय को शान्ति मिलती है, न कि उनके अधीन हो जाने से।

इस वास्ते रूप-लोभी या शरीर-संगी मनुष्य के हृदय में शान्ति नहीं बसती, न उसमें ही शान्ति होती है जो केवल बाह्य एवं स्थूल वस्तुओं में ही निरत रहता है। शान्ति केवल सच्चे आध्यात्मिक मनुष्य को मिलती है।

[७]

झूठी आशा और सुख का त्याग

जो मनुष्यों एवं प्राणियों में अपनी आशा लगाये रहता है, वह भूल करता है।

भगवान् के प्रेम के लिए, दूसरों की सेवा करने एवं संसार के सामने ग़रीब दिखने में शर्मिन्दा न हो। अपने बल पर बहुत अधिक विश्वास न कर, भगवान् में आस्था रख। जो तेरे अन्दर अच्छा बोध होता है उसे कर, ईश्वर तेरी शुभेच्छा के नज़दीक ही है।

अपने ज्ञान या किसी जीवित प्राणी की चतुरता पर बहुत ज्यादा न फूल बल्कि भगवान् में विश्वास रख जो सदा नम्र एवं दीन प्राणियों की सहायता करता है और जो अपने को बहुत बड़ा समझ लेते हैं उनका अहंकार दूर करता है।

यदि तेरे पास सम्पत्ति है तो उस पर न फूल और न अपने शक्तिमान मित्रों के बल पर इतरा। केवल उस भगवान् में विश्वास रख जो सब वस्तुओं का दाता है और इन सब वस्तुओं के साथ अपने को भी दे देने की इच्छा रखता है।

संसार में बड़ाई या यश के लिए चेष्टा न कर और न शरीर की

उस सुन्दरता के लिए पागल हो जो ज़रा-सी बीमारी से भद्दी और नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है।

अपनी योग्यता या चतुराई पर घमण्ड न कर, इससे तू भगवान् को अप्रसन्न करेगा, स्मरण रख कि तेरे अन्दर जो-कुछ अच्छा है, सब भगवान् से ही तुझे मिला है।

दूसरों से अपने को अच्छा मत समझ। कौन जाने भगवान् के सम्मुख तू ही सबसे बुरा निकले क्योंकि वह तो मनुष्य के भीतर की सब बातें जानता है।

सत्कर्मों पर गर्व मत कर। मनुष्य का निर्णय कुछ होता है, ईश्वर का कुछ होता है। अकसर जो बातें हमें प्रिय लगती हैं वही भगवान् को अप्रिय होती हैं।

यदि तुझमें कुछ सद्गुण हैं तो समझ कि दूसरे में तुझसे भी अच्छे गुण हैं। इससे तू अपनी शान्ति और नम्रता को क़ायम रख सकेगा।

यदि तू अपने को सबसे तुच्छ समझेगा तो इसमें तेरी हानि नहीं है और यदि तू अपने को सबसे ऊँचा या आगे समझ लेगा तो इससे तेरी उन्नति में अधिक बाधा पड़ेगी।

स्थायी शान्ति नम्र और दीन मनुष्य की संगिनी है। अभिमानी मनुष्य के हृदय में प्रायः विद्वेष और असन्तोष निवास करते हैं।

[८]

अत्यधिक घनिष्ठता का त्याग

प्रत्येक मनुष्य को अपना हृदय मत दिखा। जो विवेकी है और भगवान् से डरता है उसके सामने अपनी समस्यायें रख।

अपरिचित एवं छोटी आयु के आदमियों के बीच बहुत कम रह।

धनवानों की चापलूसी न कर; बहुत बड़े आदमियों के सामने न जा। नम्र, सरल और दीन मनुष्यों का साथ कर। ऐसी वस्तुओं को व्यवहार में ला जिनसे तेरी नैतिक उन्नति हो।

किसी स्त्री से बहुत ज्यादा घनिष्ठता न रख। सब सुन्नारियों के कल्याण के लिए भगवान् से निवेदन कर।

भगवान् और उसके फरिश्तों से परिचय प्राप्त करने की इच्छा रख और सांसारिक ज्ञान का त्याग कर। सब प्राणियों के प्रति उदार बन पर घनिष्ट बनने की चेष्टा न कर।

कभी-कभी ऐसा होता है कि एक अज्ञान मनुष्य अपने उज्ज्वल यश के कारण चमकता है जिसकी उपस्थिति दर्शकों की आँखों को अन्धा कर देती है। हम एक साथ रहकर अपने सहयोग के भावों से प्राय: दूसरों को खुश रखने की आशा करते हैं किन्तु अपने अन्दर की बुराइयों और अनीश्वरीय कृत्यों एवं प्रवृत्तियों से प्राय: उन्हें नाराज़ कर देते हैं।

[९]

आज्ञा-पालन और अधीनता

मनुष्य के लिए यह एक बहुत अच्छी बात है कि वह एक पथ-प्रदर्शक की आज्ञाकारिता में रहे और उसके आदेशानुसार जीवन बितावे, न कि मनमाना चले। उच्छृङ्खल होने की अपेक्षा अधीनता में रहना कम ख़तरनाक है।

बहुत-से लोग ऐसे हैं जो उदारतापूर्वक अपनी इच्छा से नहीं, वरन् आवश्यकता से विवश होकर अधीनता स्वीकार कर लेते हैं। ऐसे लोग कष्ट पाते हैं, व्यथित होते हैं और शीघ्र ही ऊबकर शिकायत करने लगते हैं। ऐसे लोग तब तक मन की स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त कर सकते जबतक वे सच्चे हृदय से अपनेको सम्पूर्णतः ईश्वरार्पण न कर दें।

यहाँ-वहाँ चाहे जहाँ दौड़, तुझे तबतक हरगिज़ शान्ति न मिलेगी जबतक किसी धर्मात्मा पथ-प्रदर्शक के प्रति नम्र आज्ञाकारिता की प्रवृत्ति को तू नहीं अपनाता। कोरी कल्पना और स्थान-परिवर्तन ने बहुतों को धोखा दिया है।

यह सत्य है कि बुद्धि के अनुसार प्रत्येक मनुष्य उन लोगों की ओर आकर्षित होता है जो उस-जैसे विचार रखते या अनु-

भव करते हैं किन्तु यदि हमारे बीच ईश्वर है तो कभी-कभी हमारे वास्ते ज़रूरी हो जाता है कि शान्ति एवं महत्तर हित के लिए हम अपनी इच्छाओं का त्याग करें।

दुनिया में कौन ऐसा बुद्धिमान है जो सब वस्तुओं को पूरी तरह जानता है? इसलिए तू अपनी अनुभूतियों एवं भावनाओं में बहुत अधिक विश्वास न करले। यदि तेरी भावनायें शुभ हैं और तू ईश्वर के लिए उनका त्याग करके दूसरे की इच्छाओं का अनुसरण करता है तो उससे अन्त में तेरा लाभ ही अधिक होगा।

मैंने अक्सर सुना है कि उपदेश और सलाह देने की अपेक्षा, दूसरों के उपदेश सुनना और सलाह लेना ज्यादा कल्याण-कारी है।

यह तो अच्छा है कि प्रत्येक मनुष्य ऊँची बातों का अनुभव करे और उसके अपने अच्छे विचार हों किन्तु जब विवेक और तथ्य का तकाज़ा हो, किसी मनुष्य का किसी प्रकार भी दूसरों से मत-भेद दूर करने के लिए राज़ी न होना उसके अहंकार और कट्टरता का चिन्ह है।

[१०]

वाणी का दुरुपयोग

शोर-गुल, बक-बक और विवाद को तू जिस सीमा तक छोड़ सके, छोड़ दे। क्योंकि लौकिक कर्मों के बारे में बहुत ज्यादा बात करना, फिर चाहे वह सदिच्छा से ही प्रेरित क्यों न हो, सच्ची उन्नति में बाधक है; इससे हम बहुत जल्द अशुद्ध—अपवित्र होते हैं और अहंकार के मार्ग पर फिसल जाते हैं।

मेरी बहुत बार इच्छा होती है कि आदमियों की भीड़ से दूर चुपचाप एक कोने में पड़ा रहता और अपने हृदय की शान्ति सुरक्षित रखता। पता नहीं कि जब हम प्रायः आत्मिक हानि करके घर लौटते हैं तो इतना आनन्द-विभोर होकर क्यों बोलते हैं।

हम आपस में इतनी बातें इसीलिए करते हैं कि इस प्रकार की बातचीत में हम एक-दूसरे से सान्त्वना एवं सुख पाते हैं और अनेक प्रकार के विचारों एवं भावों से थके हुए हृदय को इससे आराम मिलता है। हम ज्यादातर ऐसी ही चीजों के बारे में बात करते हैं जो हमें प्रिय होती हैं या जिनकी

हम अभिलाषा रखते हैं या जो हमारे विरुद्ध पड़ती हैं किन्तु दुःख है कि ये बातें प्रायः व्यर्थ और अनुपयोगी होती हैं क्योंकि इस प्रकार का बाह्य सुख आन्तरिक और स्वर्गीय शान्ति में बाधक है इसलिए हमें इस मोह-निशा में जागना चाहिए और प्रार्थना करनी चाहिए कि हमारा समय व्यर्थ न बीते।

यदि बोलना उचित और आवश्यक ही मालूम पड़े तो ऐसी चीजों के बारे में बोल जिनसे आत्मा की उन्नति होती है। शब्दों का अपव्यय और आत्म-निरीक्षण का अभाव ही मुख का बुरा उपयोग करना सिखाते हैं। हाँ, आध्यात्मिक सत्संग और चर्चा से आत्मिक उन्नति में बड़ी सहायता मिलती है।

[११]

शान्ति और कल्याण के उपाय

यदि हम दूसरों के उन कर्मों और वचनों की आलोचना के फेर में न पड़ें, जिनका हमारी चिन्ता से कोई सम्बन्ध नहीं है तो हम काफ़ी शान्ति-लाभ कर सकेंगे। जो दूसरों की बातों में दस्तन्दाज़ी करता है, जो बाह्य सुविधाओं के पीछे पागल रहता है और अपने अन्दर की सत्-शक्तियों को एकत्र नहीं करता, वह कितने दिनों तक शान्ति से रह सकता है ?

सरल आदमियों का हृदय आनन्दमय होता है क्योंकि सबसे अधिक शान्ति वही पाते हैं।

कुछ पवित्र एवं धर्मात्मा महापुरुष इतने पूर्ण एवं तत्त्व-निरत क्यों होते हैं ? इसीलिए कि उन्होंने सब प्रकार की सांसारिक कामनाओं से अपने को अलग रखना सीखा। वे अपनी रक्षा स्वयं कर सकते और अन्तःकरण की सम्पूर्ण गहराई से ईश्वर में अपने को निमग्न कर सकते हैं।

किन्तु हम तो अपनी वासनाओं में ही डूब रहे हैं और क्षण-स्थायी वस्तुओं में हमने अपने को बहुत अधिक फँसा लिया है।

यह बात भी है कि बहुत ही कम अवस्थाओं में हम अपने पापों को पूर्णतः कुचलने में समर्थ होते हैं; उस की जड़ भीतर रह जाती है। दिन-दिन नैतिक विकास के पथ पर हम बढ़ने नहीं पाते क्योंकि उसमें हमारा हृदय और उत्साह नहीं रहता और हम जल्द शिथिल पड़ जाते हैं।

यदि हम अपने अन्दर अपने (क्षुद्र 'स्व') को बिलकुल मिटा दें (अर्थात् वासनाओं पर विजय प्राप्त कर लें) और बाह्य-दुनियावी—वस्तुओं के जाल में अपने को बहुत अधिक न फँसा लें तो हम दैवी-सम्पद् का स्वाद ले सकते हैं और ईश्वरीय ध्यान के सम्बन्ध में थोड़ी-बहुत जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

सब से बड़ी बाधा जो हमारे नैतिक उत्थान में पड़ती है, यह है कि हम शारीरिक वासनाओं और दुनियावी प्रलोभनों से मुक्त नहीं होते और न हम सन्तों और पवित्र आत्माओं के मार्ग पर चलने के लिए अपने पर कोई दबाव ही डालना चाहते हैं।

यह बात भी है कि जब हम पर कोई छोटी विपत्ति भी आ जाती है तो हम घबड़ा जाते हैं और ऐसे समय मानवी सुख एवं समवेदना के लिए उद्विग्न हो उठते हैं।

यदि हम जीवन-युद्ध में भलीभांति वीरों एवं शक्तिमानों की तरह दृढ़तापूर्वक खड़े हों तो हम देखेंगे कि स्वर्ग से ईश्वर की सहायता हमें मिल रही है क्योंकि ईश्वर उन सब की सहायता के लिए सदा तैयार रहता है जो उसके लिए लड़ते हैं और उसकी विभूति में जिनका विश्वास है। वह हमें कष्ट

भी इसीलिए देता है कि हमें (बुराइयों और कठिनाइयों से) युद्ध करने का मौक़ा मिले और हम (उन पर) विजय प्राप्त कर सकें।

यदि हम केवल बाहरी बातों और आचारों में धर्म का लाभ उठाते हैं तो हमारी भक्ति का अन्त बहुत जल्द हो जायगा। हमें तो बुराइयों के मूल पर ही कुठाराघात करना चाहिए ताकि अपनी वासनाओं से मुक्त होकर हम मन को शान्ति पाने योग्य बनायें।

यदि हम हर साल केवल एक बुराई को पूरी तरह निर्मूल कर दें तो बहुत शीघ्र हम एक पूर्ण मनुष्य बन जायँ, किन्तु हम प्रायः इसके विरुद्ध ही अनुभव और आचरण करते हैं। जब हम किसी धर्म को कबूल करते हैं तो आरम्भ में जितने सच्चे और पवित्र होते हैं, वर्षों के धर्म-ग्रहण के बाद उतने भी नहीं रह जाते। होना तो यह चाहिए कि हमारे लाभ की पूँजी और उत्साह प्रतिक्षण बढ़े किन्तु आजकल तो यही बहुत मालूम पड़ता है कि आरम्भिक उत्साह का एक अंश भी अन्त तक क़ायम रह जाय।

यदि आरम्भ में हमारे आचरण में हिंसा का थोड़ा-बहुत अंश हो तो बाद में हमें इतना आत्म-विकास कर लेना चाहिए कि प्रत्येक काम को हम बिना किसी उत्तेजना के, सरलता और प्रसन्नता से कर सकें।

हम जिन चीज़ों के अभ्यस्त हो जाते हैं उन्हें छोड़ने में दुःख होता है; अपनी इच्छा के विरुद्ध आचरण करने में तो और भी पीड़ा होती है किन्तु यदि तू छोटी और हलकी चीज़ों

पर विजय नहीं प्राप्त कर सकता तो कठोर और कठिन बातों पर कैसे विजय प्राप्त कर सकेगा ?

अपनी इच्छाओं और कुप्रवृत्तियों का मुक़ाबला कर और कुरीतियों को भूल जा अन्यथा धीरे-धीरे ये तुझे अधिकाधिक कठिनाइयों में फँसा देंगी।

ऐ प्राणी ! यदि तू इतना जानता कि स्वयं तू—अपने आप—कितनी शान्ति प्राप्त कर सकता है और अपना सच्चा कल्याण करके दूसरों को कितना सुख पहुँचा सकता है तो मैं सोचता हूँ कि तू आध्यात्मिक कल्याण और लाभ की ओर अधिक प्रयत्न-शील होता।

[१२]

ग़रीबी के लाभ

यह हमारे लिए लाभदायक है कि कभी-कभी हम पर कष्टों और आपदाओं का बोझ पड़े क्योंकि इनसे प्रायः आदमी को (होश में आने और) आत्म-चिन्तन का मौक़ा मिलता है। ऐसे समय हमें अपनी एकान्तिकता—अकेलेपन—का अनुभव होता है और ज्ञान होता है कि हमें किसी दुनियवी और नाशमान वस्तु में विश्वास करके भूल न जाना चाहिए।

हमारे ही कल्याण के लिए अच्छा है कि कभी-कभी हम पर आपदायें आयें और लोग हमें उस समय भी बुरा, खोटा एवं अपूर्ण समझें जब हम अच्छा काम कर रहे हों और हमारे मन में शुभ आकांक्षा हो।

ऐसी विपत्तियाँ प्रायः नम्र बनाने में हमारी मदद करतीं और झूठे अहंकार एवं दंभ से हमें बचाती हैं क्योंकि जब हम दुनियादार आदमियों-द्वारा उपेक्षित होते हैं, हमारी निन्दा होती है या हमारे काम का मूल्य कम आँका जाता है तो हम दुनिया से आस्था हटाकर अन्तर के साथी परमात्मा को लेकर चलते हैं।

इसलिए सबसे अच्छा तो यह है कि प्रत्येक आदमी ईश्वर में अपनी आस्था दृढ़ करे जिससे उसे किसी बाहरी सान्त्वना की आवश्यकता ही न रह जाय।

जब कोई सद्भावपूर्ण आदमी पीड़ित, प्रलोभन-लुब्ध या बुरे विचारों से उद्विग्न एवं विकल हो जाता है तब उस दुःख की अवस्था में वह ईश्वर को अपने लिए ज्यादा जरूरी समझता है और अनुभव करता है कि उसकी सहायता के बिना मैं कोई अच्छा काम न कर सकूँगा। उस समय वह रोता है, तड़पता एवं दुखित होता है और प्रार्थना एवं विनय करता है पर यह सब इसलिए कि वह उस दुःख की पीड़ा से छूटना चाहता है जिससे ग्रसित होता है। ऐसे समय तो जीना भी उसे भार-रूप मालूम पड़ता है; वह मौत की इच्छा करता है जिससे जीवन के बंधन से छूटकर भगवान् की सत्ता में मिल जाय।

ऐसे ही समय उसे यह ज्ञान भी होता है कि पूर्ण निश्चितता और शान्ति इस दुनिया (सांसारिक विषयों) में नहीं मिल सकती।

[१२]

प्रलोभनों पर विजय

जबतक हम इस दुनिया में हैं तबतक संभव है तूफानों और प्रलोभनों से रहित न हो सकें। जोब (Job) में लिखा भी है—"प्रलोभन पृथ्वी पर मनुष्य का जीवन है।" इसलिए प्रत्येक मनुष्य को अपने प्रलोभनों के सम्बन्ध में सदा सतर्क रहना चाहिए और सतत् भगवत्प्रार्थना में तल्लीन रहना चाहिए। इससे तेरी आत्मिक उन्नति का यह शत्रु तुझे धोका देने का मौक़ा न पा सकेगा क्योंकि वह कभी सोता नहीं वरन् सदा उस व्यक्ति की खोज में लगा रहता है, जिसे निगल जाना चाहता है।

कोई मनुष्य इतना पूर्ण या पवित्र नहीं है कि किसी न किसी समय उसके मन पर प्रलोभनों का अधिकार न हो जाता हो।

फिर भी मानना पड़ेगा कि प्रलोभनों में भले ही बोझ और कष्ट हो पर उनसे प्रायः मनुष्य का हित होता है क्योंकि उनके द्वारा आदमी विनम्र, शुद्ध और अनुभवी बनता है।

सभी सन्तों ने आपदाओं और प्रलोभनों से लाभ उठाया है। जिन्होंने प्रलोभनों का बोझ भली-भाँति नहीं उठाया वे धर्म

मार्ग से च्युत होकर नास्तिक हो गये और अपने लक्ष्य में असफल हुए।

न तो कोई सम्प्रदाय इतना पवित्र है, न कोई स्थान इतना सुरक्षित और गुप्त है कि वहाँ प्रलोभन और आपदायें न हों।

कोई भी आदमी, जबतक वह जीता है, प्रलोभनों से सर्वथा मुक्त होने का दावा नहीं कर सकता क्योंकि जिन सामग्रियों और साधनों से हम प्रलुब्ध होते हैं वे तो हमारे ही अन्दर मौजूद हैं और इसका कारण यही है कि हमारे जन्म के मूल में ही शारीरिक कामनायें होती हैं।

जब एक आपदा या प्रलोभन चला जाता है, दूसरा आता है और सदा हमारे पीछे कुछ-न-कुछ कष्ट लगा रहता है क्योंकि हम लोग आत्मानन्द का महत्त्व भूल गये हैं।

बहुत-से आदमी प्रलोभनों से भागकर उनपर विजय प्राप्त करना चाहते हैं; वे और भी व्यथाजनक रूप में उनके जाल में फँसते हैं। केवल दूर भागने से हम उनपर विजय नहीं प्राप्त कर सकते किन्तु धीरज और विनम्र सहनशीलता-द्वारा हम अपने को सब शत्रुओं से अधिक शक्तिमान बना सकते हैं।

जो केवल बाहर से प्रलोभनों को छोड़ता है, जड़ से उन्हें उखाड़ नहीं फेंकता वह विशेष लाभ नहीं उठा सकता। उलटे बार-बार उसपर प्रलोभन आक्रमण करते हैं और वह दिन-दिन अपने को दुर्बल और खराब होता हुआ पाता है।

कट्टरता और चिड़चिड़ापन की अपेक्षा भगवान् की सहायता, सतत् कष्ट-सहन और धीरज के द्वारा थोड़ा-थोड़ा करके तू उनपर अधिक अच्छी तरह विजय प्राप्त कर सकता है।

किसी को प्रलोभनों से त्रस्त देख तो उसपर निर्दय मत बन; उसके साथ कड़ाई का व्यवहार मत कर वरन् उसको आराम और सान्त्वना दे ।

सभी प्रलोभनों का आरम्भ हृदय की अस्थिरता और भगवान् में श्रद्धा के अभाव से होता है । जैसे कर्णधार के बिना जहाज़ लहरों के साथ इधर-उधर उछलता फिरता है, उसी प्रकार जो मनुष्य अपने आदर्श या लक्ष्य को भूल बैठता है या उसे दृढ़ता के साथ ग्रहण नहीं करता, अनेक प्रकार के प्रलोभनों में लुब्ध होता है ।

आग सोने को खरा कर देती है; उसी प्रकार प्रलोभनों में धर्मात्मा की जाँच हो जाती है ।

प्राय: यह देखने में आता है कि हमारे अन्दर जितनी कार्य-शक्ति छिपी होती है, (साधारण अवस्था में) उसके अनुसार हम काम नहीं करते परन्तु प्रलोभन के समय हमें अपने अस्तित्व और शक्ति का ज्ञान हो जाता है और हम अपनी सुप्त शक्तियों को जाग्रत पाते हैं ।

जो हो, हमें आरम्भ में ही इस ओर ज्यादा ध्यान देना चाहिए क्योंकि उस समय शत्रु (प्रलोभन) आसानी से पराजित और निर्मूल किया जा सकता है । उसे मन के द्वार के भीतर प्रवेश न करने दे, ज्यों ही वह कुण्डी खटखटावे, दरवाज़े पर उसका सामना कर ।

पहले मन में एक ज़रा-सा सरल विचार उठता है, फिर एक दृढ़ कल्पना आती है । उसके बाद सुख का उन्माद और फिसलन, फिर मन की स्वीकृति और समर्थन ! (पतन का यह क्रम है) ।

इसलिए यदि आरम्भ में ही नहीं पराजित कर दिया गया, तो यह चालबाज़ शत्रु धीरे-धीरे भीतर पैठता जाता है, यहाँ तक कि सर्वत्र पूरी तरह छा जाता है और उसका सामना करने में आदमी जितना ही विलम्ब करता है उतना ही वह कमजोर और यह शत्रु शक्तिमान होता जाता है।

कुछ आदमियों को धर्मावलम्बन के आरंभ में और कुछ को अन्त में तीव्र प्रलोभनों का अनुभव करना पड़ता है किन्तु बहुत-से ऐसे भी हैं जिन्हें वह जीवन-भर चैन नहीं लेने देता।

प्रलोभनों के झोकों के बीच हमें निराश न हो जाना चाहिए वरन् भगवान् से और भी अधिक श्रद्धापूर्वक प्रार्थना करनी चाहिए कि वह इस विपद् से उबारे क्योंकि ये विपदायें भी भगवान् हमारे कल्याण के लिए और हमें उज्ज्वलतर बनाने के लिए भेजता है।

इसलिए आओ, विपदाओं और प्रलोभनों में हम अपने हृदय को भगवान् के चरणों में झुकावें। जो हृदय से विनम्र, दीन और श्रद्धालु होंगे उनकी वह अवश्य रक्षा और विकास करेगा।

प्रलोभनों और दुःखों के बीच ही यह सिद्ध होता है कि एक मनुष्य में लाभ उठाने की कितनी शक्ति है। ऐसे ही समय योग्यता और गुणों का सर्वोत्तम प्रकाशन होता है।

किसी आदमी का धार्मिक और उत्साही होना कोई बड़ी बात नहीं है। हाँ, यदि वह विपद्-काल में धीरज और शान्ति के साथ दुःखों को सहन करता है तो उसके कल्याण की विशेष आशा की जा सकती है।

बहुत-से ऐसे आदमी हैं जो बड़े-बड़े प्रलोभनों से बच जाते हैं पर छोटे प्रलोभनों में नित्य पराजित होते रहते हैं। इतना दुर्बल होते हुए उन्हें बड़े-बड़े कार्यों एवं प्रलोभनों के बीच अपना ज्यादा विश्वास न कर लेना चाहिए क्योंकि जो छोटी बातों में प्रलुब्ध हो सकता है उसके लिए बड़ी बातों में भी कोई निश्चय नहीं है।

[१४]

उत्तेजनापूर्ण निर्णय

अपनी आँखें अपनी ओर फेर; दूसरों के कर्मों का निर्णायक—'जज'—मत बन।

दूसरों के बारे में निर्णय देने या रायज़नी करने में मनुष्य व्यर्थ समय और शक्ति खोता है और अक्सर ग़लती करता एवं पाप का भागी होता है किन्तु अपने मन पर ध्यान देने और बार-बार उसकी परीक्षा करते रहने से उसका परिश्रम सफल और कल्याणकारी होता है।

चूँकि हमारे हृदय में पहले से एक विशेष प्रकार के भाव और विचार बने रहते हैं इसलिए दूसरों के बारे में राय देते समय हम अपने असली मत को अपनी पसन्दगी पर बलिदान कर देते हैं (और जैसा हम चाहते हैं वैसा न करने पर लोगों की निन्दा करते हैं)।

यदि हमारी इच्छाओं का लक्ष्य परमात्मा हो अर्थात् सबकुछ हम ईश्वर के लिए करते हों तो दूसरों के अपनी राय न मानने पर हम दुखित भी न हों किन्तु अक्सर कोई चीज़ जो भीतर छिपी होती है, या बाहर से आजाती है हमारे पथ से हमें इधर-उधर कर देती है।

बहुत-से आदमी जिन चीजों पर निर्णय या राय देते हैं उनमें अपना लाभ खोजते हैं किन्तु मज़ा यह है कि वे स्वयं इस बात को नहीं जानते।

जब सब बातें उनके अपने क़ायदे एवं हिसाब से और उनकी इच्छाओं के अनुसार होती जाती हैं तो उन्हें मालूम होता है कि सब-कुछ ठीक हो रहा है किन्तु यदि उनकी इच्छा के अनुकूल न हो तो वे बहुत जल्द उत्तेजित और दुखित हो जाते हैं।

मतभेद और चालाकी के कारण ही प्रायः मित्रों, पड़ोसियों और धर्मशील लोगों के बीच झगड़े खड़े हो जाते हैं।

पुरानी प्रथा को तोड़ना कठिन होता है और जिस मनुष्य को जो मार्ग ठीक मालूम होता है उसके सिवा दूसरे मार्ग पर उसे ले जाना अत्यन्त कठिन होता है।

यदि तू नम्र बनाने वाली भगवान् की श्रद्धा की अपेक्षा अपनी बुद्धि और तर्क पर अधिक निर्भर करता है तो तुझे विवेकवान और आत्म-प्रकाश से परिपूर्ण मनुष्य बनने में देर लगेगी क्योंकि भगवान् चाहता है कि हम सब विषयों का त्याग करके उसकी शरण लें× और वह हमारे प्रेम को पवित्र और प्रकाशमान बनाकर सब प्रकार के तार्किक और बुद्धिमान मनुष्य से ऊँचा उठा दे।

× गीता में भगवान् कहते हैं—

सर्व धर्मान् परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच॥

—गीता

[१५]

उदार कर्म

मनुष्य के प्रेम अथवा इस दुनिया की किसी चीज़ के लिए बुराई नहीं करनी चाहिए। जिन्हें आवश्यकता है, उनके लाभ के लिए कोई अच्छा या दूसरा उत्तमतर काम देना चाहिए क्योंकि इस प्रकार सुकर्म का नाश नहीं होता, केवल उसका रूप बदल जाता है।

उदारता (हृदय की विशालता) के विना कोरे बाहरी दिखाऊ कामों से कोई लाभ नहीं; उदारतापूर्वक छोटा-बड़ा जो कुछ किया जाता है, फलदायी होता है। क्योंकि भगवान् इस बात पर ध्यान नहीं देते कि एक आदमी कितना बड़ा काम करता है वल्कि यह देखते हैं कि कितनी विशालहृदयता से काम करता है।

जो अधिक प्रेम करता है वही अधिक काम करता है और जो काम अच्छी तरह करता है, समझो कि वही अधिक काम करता है (प्रेम करना सब कामों से बढ़कर है और किसी काम को अच्छी तरह करना, मात्रा में अधिक काम करने से अच्छा है)।

जो अपने कल्याण की अपेक्षा सर्व-साधारण की सेवा का ख्याल अधिक रखता है वही अच्छा काम करने वाला है ।

कई बार अनुचित राग भी उदारता के रूप में दिखता है। अनुचित राग की प्रवृत्ति में अपनी इच्छा, पुरस्कार की आशा, लाभ के प्रति आग्रह इत्यादि प्रायः सहायता करने के लिए तैयार रहते हैं ।

जिसमें उदारता और हृदय की विशालता का पूर्ण विकास हो गया है वह अपने लिए किसी वस्तु की इच्छा नहीं रखता वरन् सब पदार्थों में और सबके ऊपर, भगवद्विभूति को देखने की इच्छा रखता है। साथ ही वह किसी व्यक्ति से ईर्ष्या नहीं करता क्योंकि वह चाहता है कि सब चीजें सच्चिदानन्द से ओतप्रोत हों। वह किसी अच्छाई का करने वाला किसी व्यक्ति को नहीं मानता वरन् सब अच्छाइयों का कारण भगवान् को मानता है जिससे मूलतः वे विकसित होती हैं और जिसमें अन्त में मिलकर सब सन्त विश्राम ग्रहण करते हैं ।

आः ! जिन्हें इस सच्ची उदारता का ज्ञान हो गया है वे अनुभव करते हैं कि सब पार्थिव वस्तुयें असार हैं ।

[१६]

पर-छिद्रान्वेषण

ऐसे दोष, जिनको मनुष्य अपने या दूसरों के अन्दर से दूर न कर सकता हो, शान्ति एवं धैर्य के साथ तबतक सहन करने चाहिए जबतक भगवान् उनका संशोधन नहीं करते।

तू इसे मन में गाँठ बाँध ले कि यह तेरी परीक्षा और धैर्य के लिए प्रयोजनीय है क्योंकि इन कठिनाइयों के बिना तेरे सद्-गुणों का मूल्य ही क्या? हाँ, जब ऐसी विघ्न-बाधायें उपस्थित हों तो उन्हें दूर करने तथा उनके सहने की शक्ति प्रदान करने के लिए नम्रता और दीनता-पूर्वक तू भगवान् से प्रार्थना कर।

यदि कोई एक-दो बार चेतावनी देने और समझाने पर भी दोष-त्याग न करे, न अच्छी सलाह पर चलने में सचेष्ट हो तो उसके साथ विवाद न कर, सब-कुछ भगवान् के चरणों में सौंप दे कि उसकी इच्छा और उपासना पूर्ण हो। भगवान् प्राणी के अन्दर बुराई को भलाई में बदल दे सकते हैं।

दूसरों के दोष और कमजोरियों को, चाहे वे किसी प्रकार की हों, सहन करने और निभाने में धीर और सहनशील होने का

अभ्यास कर; कारण तुझमें भी बहुत-सी ऐसी कमजोरियाँ हैं जो दूसरों को सहनी पड़ती हैं। जब तू अपने को ही अपनी इच्छा के अनुकूल बना नहीं पाता है तो दूसरों से अपनी इच्छानुसार बन जाने की आशा कैसे रख सकता है? हम लोग प्रसन्नता और उत्साहपूर्वक दूसरों को पूर्ण बनाने की इच्छा करते हैं किन्तु अपने दोषों को दूर नहीं करते। दूसरों के दोषों पर शासन करना चाहते हैं पर स्वयं शासित होने की बात हमारे मन में नहीं आती। हम दूसरों की दुर्बलता, छूट और अपरिमित स्वाधीन आचरण से असन्तुष्ट और दुःखी होते हैं किन्तु अपने लिए तो हम जो-कुछ चाहते हैं उसमें से किसी बात के लिए इनकार सुनना पसन्द नहीं करते। दूसरों को हम कठिन व्यवस्था के अधीन रखना चाहते हैं किन्तु अपने किसी व्यवस्था के अधीन होना नहीं चाहते। इससे यह देखा जा सकता है कि हम अपने परिचितों और पड़ोसियों को तौलने में कितनी कट्टरता और अनुदारता से काम लेते हैं, जब अपने लिए उस कसौटी को सरल और लचीली कर देते हैं।

यदि सब लोग पूर्ण और निर्दोष ही हो जायँ तो, ईश्वर के नाम पर, दूसरों के लिए कष्ट सहने को हमारे पास क्या रह जायगा? इसीलिए यह विधाता का विधान है कि हम परस्पर एक-दूसरे का बोझ उठाना सीखें क्योंकि जगत् में कोई भी निर्दोष नहीं है, कोई बोझ से मुक्त नहीं है, कोई अपने आप के लिए पर्याप्त (पूर्ण) नहीं है, कोई भी अपने आपको सँभालने योग्य ज्ञानी नहीं है। इसलिए हम को

एक-दूसरे की अपूर्णता सहनी चाहिए, एक-दूसरे को सान्त्वना और सुख देना चाहिए, मिलकर एक-दूसरे की सहायता करनी चाहिए तथा सहयोगपूर्वक परस्पर समझना-समझाना और बुराई से हटाना चाहिए।

मनुष्य वास्तव में क्या है, उसमें कितने सद्गुण हैं, यह विपत्ति में ही ठीक-ठीक प्रकट होता है। कुअवसर और दुःख-विपद् मनुष्य को गिराते नहीं वरन् यह दिखाते हैं कि वह असल में क्या है—कितना दुर्बल है?

[१७]

धार्मिक जीवन

यदि तू दूसरों के साथ सहयोग और शान्ति रखना चाहता है तो तुझे अनेक विषयों में आत्म-दमन का अभ्यास करना चाहिए।

निर्जन अथवा समाज में रहकर निर्दोष भाव से चलना और मृत्युपर्यन्त विश्वस्त बने रहना मामूली बात नहीं है। धन्य हैं वे व्यक्ति जिन्होंने पवित्रतापूर्वक रहकर अपनी जीवन-यात्रा समाप्त कर दी है।

यदि तू सत्य पर दृढ़ रहना और सच्चा लाभ उठाना चाहता है तो अपने को इस दुनिया में विदेशी और निर्वासित पथिक समझ। तेरे लिए भगवान् की भक्ति में निमग्न रहना अच्छा है।

धार्मिक जीवन-यापन के लिए वेश-भूषा का विशेष महत्त्व नहीं है। कुवासनाओं के परित्याग और इन्द्रिय-दमन के द्वारा ही प्रकृत धर्माचरण की साधना होती है।

जो अपनी आत्मा के कल्याण के लिए भगवान् के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु की कामना करता है, वह आपदायें और दुःख

ही उठाता है। जबतक कोई अपने को सब से क्षुद्र और सबका सेवक नहीं समझता तबतक उसको शान्ति स्थायी नहीं हो सकती।

तू इस संसार में शासन नहीं, सेवा करने आया है। इसे याद रख कि यहाँ तू परिश्रम करने और कष्ट भोगने के लिए आया है; आलस्य में समय खोने और बातें बनाने के लिए नहीं।

इस संसार में ऐसे भी मनुष्य हैं जो आग में तप कर सोना सिद्ध हुए हैं। अपना सर्वस्व भगवान् के चरणों में अर्पित करके जो नम्र और दीन नहीं बन गया है वह किसी प्रकार इस संसार (की आग) में खड़ा नहीं रह सकता।

[१८]

पवित्र साधुओं के दृष्टान्त

प्राचीन साधुओं के उज्ज्वल और जीवित दृष्टान्तों पर ध्यान दे जिनसे प्रकृत सिद्धि प्रकाशित हो रही है। तू देखेगा कि उनकी तुलना में हम जो-कुछ करते हैं वह नगण्य है। हाय, हमारा जीवन उनके सामने क्या है ?

सच्चे भगवद्भक्तों ने क्षुधा और तृष्णा में, शीत और वस्त्राभाव में, श्रम और क्लान्ति में, जागरण और उपवास में, प्रार्थना और ध्यान में तथा अनेक प्रकार की ताड़ना और निन्दा के बीच प्रभु की सेवा की है। उन्होंने अपने भौतिक शरीर की उपेक्षा करके अनन्त जीवन की रक्षा की चेष्टा की।

उन सच्चे साधुओं ने किस प्रकार जितेन्द्रिय होकर जीवन-यात्रा पूर्ण की ! न जाने कितनी कठिन और लम्बी परीक्षाओं में उन्हें तपना पड़ा। कितनी ही वार शत्रुओं ने उनपर आक्रमण किया और ऐसे समय कैसी श्रद्धा, दीनता और व्यग्रचित्तता से इन्होंने भगवान् को पुकारा। हम लोगों की—जनसमाज की—आत्मिक उन्नति के लिए उन्होंने कितने कष्ट सहे, कितने उद्योग किये। कुवासनाओं के साथ उन्होंने किस

प्रकार प्राणपण से संग्राम किया। भगवान् के उद्देश्यों की कैसे विशुद्ध और सरल भाव से उन्होंने रक्षा की।

दिन भर वे कठिन श्रम करते और रात को प्रार्थना में लीन रहते। दिन में परिश्रम करते समय भी वे मन ही मन प्रार्थना करना भूलते नहीं थे। वे अपना समय, अपने समय का प्रत्येक घण्टा उत्तम रूप से बिताते थे। भगवत्-ध्यान में अधिक समय भी उन्हें बहुत कम मालूम पड़ता था। उपासना और ध्यान में वे इतनी तन्मयता और मधुरता अनुभव करते कि कई बार शारीरिक क्षुधा-तृष्णा एक दम भूल जाते थे।

उन्होंने धन-वैभव, उच्चपद, मान और बन्धुओं का अकातर भाव से त्याग किया था और जगत् के किसी विषय में वे आसक्त नहीं थे। शरीर-रक्षा के लिए जितना आवश्यक है उतना भी वे कठिनाई से ग्रहण करते थे और इतने में भी उन्हें दुःख होता रहता था कि यह सब अनिवार्य होने के कारण शरीर के लिए करना पड़ रहा है। पार्थिव विषयों में दरिद्र होते हुए भी शील और सदाचरण में वे धनी थे। बाह्य दृष्टि से उनमें अभाव और आवश्यकता थी किन्तु भीतर से वे स्वर्गीय शान्ति एवं तृप्ति से परिपूर्ण थे।

संसार के लिए वे अपरिचित, विदेशी-से थे किन्तु ईश्वर के निकट वे अन्तरंग और सुपरिचित बन्धु की तरह थे। स्वयं अपनी दृष्टि में वे नगण्य एवं इस जगत् की दृष्टि में तुच्छ और उपेक्षणीय थे किन्तु ईश्वर की दृष्टि में वे आदरणीय और प्रिय थे।

उनमें सच्ची नम्रता थी; वे भगवान् के सरल आज्ञापालन

दत्तचित्त रहते थे और सदा उदारता, शान्ति और धीरज के साथ जीवन बिताते थे इसीलिए प्रतिदिन उनकी आत्मिक पवित्रता बढ़ती थी और भगवत्कृपा से उनका सदा कल्याण होता था।

वे धार्मिक जीवन बितानेवालों के लिए आदर्श थे। उनके दृष्टान्तों से हमें शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। जिससे हम शिथिल और उद्योगशून्य लोगों का अनुसरण करना छोड़ सकें और इन साधुओं की भाँति आत्मिक श्रीवृद्धि और आत्मान्वेषण की चेष्टा में प्रवृत्त हों।

[१९]

एक साधु धार्मिक पुरुष की नित्य-साधना

एक उच्च धार्मिक पुरुष का जीवन सब प्रकार के सद्‌गुणों से प्रकाशित होना चाहिए जिससे वह भीतर से भी वैसा ही हो जैसा बाहर से दिखाई पड़ता है। इतना ही नहीं बाहर हमारे जितने सद्‌गुण प्रकाशित हों भीतर उनका उससे अधिक होना आवश्यक है। भगवान् की दृष्टि सदा ही हमारे ऊपर रहती है अतः सब जगह उसका सबसे अधिक मान और भय करके अपने आचरण का देव-तुल्य उज्ज्वल और पवित्र रखना हमारा कर्तव्य है।

जब पहली बार भगवद्भक्ति की भावना मन में जगी थी तब के उत्साह की तरह नित्य मन में अपने लक्ष्य की प्राप्ति का दृढ़ संकल्प करके भगवान् से प्रार्थना कर—"हे प्रभु, हमारे शुभ उद्देश्य में सहायता कर और अपनी सेवा में मुझे नियोजित कर। आज का दिन पूर्णतः सदाचरण में ही व्यतीत हो क्योंकि अभी तक हमने इस ओर कुछ नहीं किया है—अथवा जो कुछ किया है वह नगण्य है।"

हमारे संकल्प की मात्रा के ऊपर ही हमारी आत्मिक उन्नति

निर्भर है। जिसे अधिक उन्नति की इच्छा हो उसे इस विषय में अधिक प्रयत्न करना भी आवश्यक है। जब दृढ़ संकल्प करके भी हम अपने मार्ग से हट जाते हैं तब जो अपने संकल्प में दुर्बल हैं या जो संकल्प ही नहीं करते उनकी क्या अवस्था होगी ?

ऐसा देखा जाता है कि अनेक कारणों से मनुष्य अपने संकल्प को छोड़ देता है किन्तु दैनिक साधनों में थोड़ी त्रुटि होने से आत्मा की भी कुछ-न-कुछ क्षति होती है।

धार्मिक और सात्विक पुरुषों का संकल्प अपने ज्ञान पर उतना निर्भर नहीं करता जितना भगवान् की श्रद्धा पर निर्भर करता है। वह तो प्रत्येक विषय में भगवान् पर ही भरोसा रखता है।

मनुष्य संकल्प अवश्य करता है किन्तु उसकी सिद्धि तो भगवान् के ही हाथ है। मनुष्य की गति स्वयं मनुष्य-द्वारा निर्द्धारित नहीं होती।

किसी सत्कर्म अथवा किसी बन्धु के विशेष उपकार के लिए यदि कभी नित्य साधना का भंग हो जाय तो शीघ्र ही उसकी पूर्ति हो जाती है परन्तु आलस्य या अमनोयोग के कारण साधना का अभ्यास छोड़ देने पर वह एक गंभीर दोष बन जाता है और उससे हमारे समाज की विशेष क्षति होती है। यथासाध्य सत्कर्म करते रहने पर भी अनेक विषयों में हम लोगों को अपनी त्रुटि—कमज़ोरी—का अनुभव होता है।

किसी निश्चित विषय में संकल्प करके चलना हमारे लिए सर्वदा ही

उचित है किन्तु जिन-जिन दोषों में हम सहज ही पतित हो जाते हैं—नीचे गिर पड़ते हैं उन्हें निर्मूल करने की हमें दृढ़ चेष्टा करनी चाहिए।

भीतर-बाहर दोनों की भलिभाँति परीक्षा करके हमें आत्म-शासन करना चाहिए क्योंकि धार्मिक उन्नति के लिए दोनों ही आवश्यक हैं।

यदि तू सर्वदा आत्म-परीक्षा नहीं कर पाता है तो प्रतिदिन एक-बार, प्रातः या सायंकाल में, तो अवश्य ही आत्म-दर्शन में प्रवृत्त हो।

प्रातःकाल सत्संकल्प कर और संध्या समय अपनी परीक्षा करके देख कि दिन भर मन, वचन और कर्म का तूने कैसा उपयोग किया है। तुझे मालूम पड़ेगा कि तूने मनुष्य और ईश्वर दोनों के प्रति अनेक अपराध किये हैं।

शैतान के विकट आक्रमण से अपनी आत्मा की रक्षा करने के लिए वीर की भाँति कमर कसकर खड़ा हो।

स्वाद का त्याग कर; इससे रक्त-मांस (शरीर) की कुप्रवृत्तियों का सहज ही तू शासन कर सकेगा।

कभी बेकार मत बैठ। अध्ययन, लेखन, प्रार्थना, ध्यान या किसी मंगल-कर्म में सदा ही लगा रह।

नित्य के शारीरिक व्यायामादि विवेकपूर्वक कर। क्योंकि सबके लिए एक ही विधि लाभदायक नहीं हो सकती, एक के लिए जो उपयुक्त है वही दूसरे के लिए अनुपयुक्त है।

जीवन की नित्य साधना में जो विषय गुप्त हैं अथवा जो सबके लिए उचित नहीं है, उन्हें प्रकाश्यरूप से न कर क्योंकि गुप्त

साधना निर्जन में ही निर्विघ्न भाव से पूर्ण की जा सकती है।

व्यक्तिगत साधना में इतना निमग्न न हो कि सामान्य सामाजिक कर्तव्य की उपेक्षा होने लगे। भलीभाँति साधारण कर्त्तव्य निबाहने के बाद यदि समय बचे तो रुचि के अनुकूल व्यक्तिगत साधना में उसका उपयोग करे।

एक ही प्रकार की साधना सब के लिए उपयुक्त नहीं हो सकती, भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के लिए साधना की भिन्न-भिन्न विधियाँ आवश्यक हैं।

दैनिक साधना अवस्था--सापेक्ष है; परीक्षा के समय एक प्रकार की, शान्ति के समय दूसरे प्रकार की, प्रलोभन एवं मानसिक दुःख के समय कुछ और तथा अत्यधिक आनन्द के समय कुछ और तरह की साधना की आवश्यकता होती है।

विशेष त्योहारों के समय पवित्र साधनाओं का दृढ़तापूर्वक अभ्यास करना और पवित्र संतों के दृष्टान्तों से उपदेश ग्रहण करना चाहिए।

साधु ल्यूक कहते हैं—"वह जागरूक सेवक धन्य है जिसे आकर प्रभु अपने कर्तव्य–कर्म में लगा हुआ पावेंगे। ऐसे विश्वस्त सेवक को वह अपनी सम्पूर्ण विभूतियाँ सौंप देंगे।"

[२०]

मौनावलम्बन और एकान्त-प्रेम

आत्म-परीक्षा का सुयोग खोज और भगवान् की करुणा का बारम्बार स्मरण कर।

कुतूहलोत्पादक वस्तुओं का परित्याग कर; तेरे पठन-पाठन का उद्देश्य समय काटना न हो; उससे तेरे हृदय में अपनी गिरी दशा पर अनुताप जन्मे।

यदि तू व्यर्थ विवाद, निरर्थक भ्रमण और नई-नई बातों एवं जनरव में रस लेने से अपने को निवृत्त करले तो तुझे मधुर ध्यान के लिए पर्याप्त और उचित सुयोग मिलेगा।

उच्चकोटि के साधकगण यथासंभव मानवी संसर्ग का त्याग कर निर्जन में भगवान् के साथ आलाप करते और उसमें तल्लीनता प्राप्त करते हैं।

एक साधक ने कहा है--"जितनी बार मैं मनुष्यों में शामिल हुआ उतनी बार पहले से हीन मनुष्य के रूप में (अर्थात् कम पवित्र होकर) लौटा।" लम्बे वाद-विवाद में इसका अनुभव सहज ही हो जाता है।

बातचीत आरम्भ होने पर शब्दों के अपव्यय को रोकने की

अपेक्षा मनुष्य के लिए एकदम मौन रहना सदा ही अधिक सरल है। बाहर प्रलोभनों से अपनी रक्षा करने की अपेक्षा घर में एकान्त-सेवन करना अधिक सरल है।

इसलिए जो आत्मिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के अभिलाषी हैं उनका जन-समाज से दूर रहना आवश्यक है।

जिन्हें निर्जन में सन्तुष्ट रहने का अभ्यास नहीं है, जन-समाज में उनका जाना निरापद नहीं है।

जिसे मौनावलम्बन में आनन्द का अनुभव होता है, सतर्कभाव से बातचीत भी वही कर सकता है।

जो व्यक्ति अधीन रहना नहीं जानता, वह भलीभांति शासन भी नहीं कर सकता।

जिसने प्रसन्नतापूर्वक आज्ञापालन करना नहीं सीखा वह योग्यता-पूर्वक दूसरों पर शासन भी नहीं कर सकता।

जिसका अन्तःकरण शुद्ध और पवित्र नहीं है वह किसी प्रकार विमल आनन्द का अधिकारी नहीं हो सकता।

साधुपुरुष (यद्यपि निर्भीक होते हैं फिर भी वे) भगवान् से भय रखते हैं। यही उनकी रक्षा का कवच है। वे अनेक सद्-गुणों से विभूषित होकर भी हृदय से नम्र एवं चिन्तनशील होते हैं।

किन्तु दुष्टों की निर्भीकता अहंकार और दुःसाहस से उत्पन्न होती है और अन्त में प्रवञ्चना में परिणत हो जाती है।

धार्मिक जीवन में बहुत ऊँचा उठकर और एक उच्च निर्जन साधक होकर भी इस जगत् में तू अपने जीवन को निरापद न समझ। जन-समाज में जिनका विशेष आदर होता है

उनका प्रायः अत्यधिक आत्म-निर्भरता के कारण भयानक पतन भी होता है।

साधक अतिसाहसी, अहंकारी या सुखाभिलाषी न हो जायँ इसलिए उनका परीक्षा और विपत्ति में पड़ना प्रायः हितकारी होता है। इससे मन में यह बात भी आती है कि प्रलोभनों से सर्वथा मुक्त हो जाने की अपेक्षा प्रलोभनों से आक्रान्त होते रहना और उनपर विजय प्राप्त करते रहना अधिक लाभकारी है।

अहा, जो नाशमान और अस्थायी सुखों के पीछे नहीं पड़ते और संसार के मोहजाल में नहीं बँधते, उनका अन्तःकरण कैसा निर्मल होता है !

जो असार भावनाओं से निवृत्त होकर केवल ईश्वरीय और आत्मोपयोगी विषयों में निरत रहते हैं और भगवान् पर पूरी तरह भरोसा रखते हैं वे इस जगत् में शान्त और निरुद्वेग जीवन व्यतीत करते हैं।

जिसे सच्चा अनुताप नहीं होता, वह स्वर्गीय सान्त्वना के योग्य नहीं है। यदि तू अपने पतन पर हृदय से दुःख का अनुभव करना चाहता है तो अपने एकान्त अन्तरागार में प्रवेश कर और जगत् के सब प्रकार के शोर-गुल से पृथक् हो जा। बाहर जो-कुछ तू प्रायः खो देता है भीतर वही तुझे मिलेगा।

तू जितना ही अपने अन्तरागार में प्रवेश करेगा, उतना ही अधिक उसे प्यार करना सीखेगा; वहाँ जितना ही कम प्रवेश करेगा उतना ही वह तेरे लिए विरक्तिजनक होता जायगा। भक्ति-साधना के आरम्भ में ही यदि तू सन्तोषपूर्वक अपनी

कुटी या अन्तरागार में स्थिर बैठने का अभ्यास करेगा तो वही तेरे लिए परमबन्धु के समान हो उठेगा।

ईश्वर-परायण व्यक्ति मौनावलम्बन-द्वारा धार्मिक साधना में अग्रसर होते और धर्मशास्त्र के निगूढ़ तत्त्वों का अनुशीलन करते हैं। वे अपनी एकान्त कुटिया के अन्दर प्रति रात्रि को अनुताप के आँसुओं से अपने हृदय के मल और कलुष को धोते हैं और इस प्रकार वे ज्यों-ज्यों जगत् के कोलाहल से दूर हटते हैं त्यों-त्यों अपने स्रष्टा के अधिकाधिक समीप पहुँचते हैं।

इस प्रकार जो अपने मित्रों एवं परिचितों से अलग होकर भगवान् का ध्यान करते हैं, भगवान् अपने पवित्र दूतों के साथ उनके निकट वास करते हैं।

आत्मा की उन्नति पर ध्यान न देकर संसार में आश्चर्यजनक कर्म करने की अपेक्षा आत्मोन्नति का यत्न करते हुए चुपचाप अलग पड़े रहना कहीं अच्छा है।

निर्जन साधक के लिए जन-समागम त्याज्य है। वह लोगों की दृष्टि के जितना ही बाहर रहेगा और आदमियों को देखने की लालसा से दूर हटेगा उतना ही उसके लिए कल्याणकारी होगा। जिसको प्राप्त करना तेरे लिए उचित नहीं है उसे तू क्यों देखना चाहता है?

कभी-कभी इन्द्रिय-रंजन के लिए हम बाहर भ्रमण करने को निकलते हैं और प्रायः उद्विग्न-से मन पर बोझ लिये हुए घर लौट आते हैं।

सानन्द बाहर जाने पर भी कभी-कभी दुःख के साथ घर लौटना

पड़ता है। सन्ध्याकाल के आमोद के बाद कई बार प्रातः काल दुःख का संदेश लिये हुए आता है। शारीरिक सुख का यही हाल है; वह मृदु हँसी हँसते-हँसते आता है किन्तु अन्त में अपने तीव्र दंशन से डँसता और मार डालता है।

यहाँ जो-कुछ देखने को नहीं मिलता, ऐसी कौन वस्तु दूसरी जगह देखने को मिलेगी ? देख, जिससे सब वस्तुओं की सृष्टि हुई है, वह आकाश और पृथिवी एवं समस्त मूल तत्त्व तो यहाँ भी उपस्थित हैं।

सूर्य के नीचे और कौन-सी स्थायी वस्तु दूसरी जगह दिखाई देगी? मन की परीक्षा करके देख; तू दर्शन से तृप्त होना चाहता है किन्तु भली-भाँति गाँठ बाँध ले कि वह तृप्ति तुझे कभी न मिलेगी।

यदि तू ने संसार की सब वस्तुओं को देख लिया तो भी वह दर्शन असार के सिवा और क्या है ? सब से ऊँचे बैठे हुए भगवान् की ओर आँख उठाकर देख और प्रार्थना कर कि वह तेरे पापों और त्रुटियों को क्षमा करें। असार वस्तुओं को लेकर असार लोगों को व्यस्त रहने दे; तुझे भगवान् ने जो आज्ञा दी है उसी पर ध्यान दे।

द्वार रुद्ध कर और प्रियतम को पुकार। उसी के साथ निर्जन में वास कर; अन्य किसी स्थान में तुझे वैसी शान्ति नहीं मिलेगी।

यदि जन-समाज में मिल कर तू व्यर्थ समय न खोता तो निश्चय ही तेरे मन को अधिक शान्ति मिलती किन्तु कभी-कभी बाहरी दुनिया की नई-नई बातों को सुनने की तुझे जो उत्कण्ठा होती है उसी से तुझे यह मनस्ताप भोगना पड़ता है।

हार्दिक अनुताप

यदि तू नैतिक जीवन में उन्नति करना चाहता है तो ईश्वर-भीति के साथ संसार में चल और अधिक स्वाधीनता की आंकाक्षा न कर ! सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में रख और निरर्थक आमोद में अपने को बहा न दे।

सच्चे हृदय से अपने दुर्गुणों के लिए अनुताप कर; इससे भक्ति की वृद्धि होगी। अनुताप से अनेक कल्याण होते हैं पर मन की चंचलता शीघ्र ही उन्हें नष्ट कर देती है।

मनुष्य यदि इस संसार के बंधनों एवं आत्मा के संकटों का भलीप्रकार विचार करे तो इस जीवन में इस प्रकार के तुच्छ आमोद पर उसे स्वयं आश्चर्य होगा। मन की लघुता और अपने दोषों के प्रति उदासीनता रखने के कारण हम अन्तःकरण को पहुँचने वाली हानि एवं शोक का अनुभव नहीं कर पाते इसलिए जब हमें रोना चाहिए तब हम व्यर्थ हर्ष मनाते हैं।

निर्मल अन्तःकरण से ईश्वर को भय करना ही प्रकृत स्वाधीनता और यथार्थ सुख है। जो मनुष्य उद्वेगजनक और अन्यमनस्कता-सूचक समस्त बाधाओं को दूर करके अनुतापपूर्ण अन्तःकरण के साथ भगवान् के ध्यान में रम गया है वह धन्य है ! धन्य है वह जिसने उन सब वस्तुओं का त्याग कर दिया है जो उसके अन्तःकरण को धुँधला बनाती और दुःख देती हैं।

मर्द की तरह पाप से युद्ध कर; एक अभ्यास-द्वारा ही दूसरा कद-भ्यास पराजित होता है ।

यदि तू जन-संसर्ग का त्याग करेगा तो अन्य लोग भी तेरे कार्य में बाधा देने नहीं आवेंगे ।

तू दूसरों की बातों में हाथ मत डाल और महापुरुषों के कार्यों में अपने को लिप्त न कर। तू सब से पहले अपनी ओर देख और जिनको तू सबसे अधिक स्नेह करता है उनके सम्मुख अपने दोषों को स्वीकार कर एवं पश्चात्ताप कर ।

मनुष्यों का अनुग्रह प्राप्त न होने के कारण तू दुखी न हो। तुझे दुखी तो यह सोचकर होना चाहिए कि तू अपने को उतना पवित्र और निर्मल नहीं रख पाता है जितना एक भगवद्भक्त साधु पुरुष को होना चाहिए।

इस जीवन में बहुत अधिक सुख—विशेषतः इन्द्रिय-सुख का न पाना कई बार मनुष्य के लिए अधिक रक्षाजनक और कल्याणकर होता है।

हम लोगों को जो स्वर्गीय शान्ति नहीं मिलती या मिलती है तो बहुत थोड़ी मात्रा में, यह हमारा ही दोष है; हम लोग सच्चे अनुताप—दग्ध हृदय से उसे नहीं खोजते और असार एवं बाह्य मोह-माया का त्याग नहीं करते ।

तू मन में यही सोच कि "मैं स्वर्गीय सान्त्वना का अधिकारी नहीं हूँ वरन् संताप का पात्र हूँ ।"

मनुष्य जब अधिक दुःख और अनुताप में होता है तो सारा संसार उसे कडुआ और क्लेशकर प्रतीत होता है।

सत्पुरुष सदा ही अपने जीवन में अनुताप करने और रोने के

यथेष्ट कारण देखते हैं। जब वह अपनी या अन्य मनुष्यों की अवस्था पर विचार करता है तो उसे यह जानने में देर नहीं लगती कि संसार में किसी का जीवन दुःख-रहित नहीं है और ज्यों-ज्यों वह अपनी नैतिक अपूर्णता का ध्यान करता है त्यों-त्यों उसका हृदय अधिकाधिक अनुताप से व्यथित होता है।

जिन समस्त पापों में मग्न रहकर हम आत्मिक विषयों का चिंतन नहीं करते उन सब पापों के लिए अनुताप और विलाप करना हमारा कर्तव्य है।

तू यदि अपनी आयु बढ़ाने के बदले अपनी मृत्यु के बारे में अधिक चिन्ता करता तो इससे आत्म-शोध के लिए अधिक प्रयत्न-शील होता और यदि तू नरक के कष्टों एवं व्यथाओं पर ध्यान देता तो इस जीवन के कष्ट, दुःख और श्रम को प्रसन्नता-पूर्वक अंगीकार करने में तू पीछे न हटता किन्तु इन सब बातों पर ध्यान न देने से और जिन वस्तुओं से आमोद-प्रमोद किया जा सकता है केवल उन्हीं में अनुरक्त रहने से हम धार्मिक और नैतिक विषयों में अत्यन्त शिथिल और निस्तेज हो जाते हैं।

आध्यात्मिक भावों के अभाव के कारण ही हमारा यह अभागा शरीर बात-बात पर असंतुष्ट हो उठता है इसलिए भगवान् के निकट नम्रतापूर्वक प्रार्थना कर कि वह तुझमें सच्चा अनुताप उत्पन्न करें और पैग़म्बर की तरह भगवान् से कह कि "प्रभो! मुझे आँसुओं का भोजन दे और अधिक मात्रा में अश्रु-जल देकर मेरी प्यास बुझा।"

[२२]

मनुष्य के दुःख पर विचार

चाहे तू किसी स्थान पर रहे या किसी भी दिशा में भ्रमण करे, तू हतभाग्य है यदि तूने भगवान् की ओर ध्यान नहीं लगाया।

सब वस्तुओं के विषय में जैसा तू चाहता है वैसा न होने पर तू कातर क्यों होता है? जगत् में ऐसा कौन है जिसे सम्पूर्ण इच्छित वस्तुएँ मिल गई हों? हम हों या तुम या कोई दूसरा हो कोई भी अपनी आकांक्षा की सारी चीजें नहीं पा सकता। चाहे राजा हो या धर्माचार्य इस संसार में दुःख-रहित कोई नहीं है।

तब सब से भाग्यवान् कौन है? जो ईश्वर के लिए दुःख भोग सकता है, वही।

हे प्रभु, दुनिया में ऐसे दुर्बल लोग कितने ही हैं जो कहते हैं—"देख, वह आदमी कितना सुखी है, उसके पास कितना धन है, वह कितना बड़ा आदमी है, उसकी कितनी प्रतिष्ठा है!" किन्तु स्वर्गीय वैभव (नैतिक धन) की ओर दृष्टि उठाकर देख तो तुझे दिखाई देगा कि यह सब संसारिक धन-मान असार और अस्थायी है तथा सुख की अपेक्षा उससे दुःख ही अधिक मिलता है। उनपर अधिकार होने पर प्रायः भय और स्वार्थ से मन अस्थिर और अशान्त रहता है।

ऐहिक सम्पत्ति की अधिकता से मनुष्य सुखी नहीं होता, उसके, लिए साधारण अवस्था ही श्रेष्ठ है। निश्चय ही पार्थिव जीवन

नितान्त दुःख-जनक है। मनुष्य में आत्मिक उन्नति की जितनी ही तीव्र अभिलाषा होती है, यह मर्त्य जीवन उसको उतना ही कडुआ और निस्सार प्रतीत होता है क्योंकि उस समय वह मानव-स्वभाव के दोषों और अपूर्णताओं को उतना ही स्पष्ट अनुभव करता है।

भोजन, पान, शयन, जागरण, श्रम एवं विश्राम इत्यादि प्राकृतिक कर्म धार्मिक लोगों को क्लेश-जनक प्रतीत होते हैं क्योंकि वे अपनी मुक्ति की आकांक्षा करते हैं और समग्र पापों से अपना उद्धार चाहते हैं।

हम जबतक इस संसार में रहते हैं तबतक हमारा अन्तःपुरुष हमारी शारीरिक अभिलाषाओं के बोझ से दबा रहता है।

इसी कारण उससे मुक्त होने के लिए पैग़म्बर विनयपूर्वक प्रार्थना करते हैं—"हे प्रभु, संसार की सम्पूर्ण आवश्यकताओं से हमें मुक्त कर।"

किन्तु जो अपनी दुरावस्था नहीं जानते वे बड़े सन्ताप के पात्र हैं और जो इस दुःख-संकुल एवं नश्वर जीवन को प्रेम करते हैं उनके सन्ताप का ठिकाना नहीं होता। कोई कोई तो इस नश्वर जीवन को इतनी दृढ़ता से पकड़ते हैं कि परिश्रम क्या भिक्षा-द्वारा बड़े कष्ट के साथ अन्न-वस्त्र जुटाने पर भी वे सदा इसी जगत् में रहने की इच्छा करते हैं और स्वर्ग-राज्य के विषय में कुछ चिन्ता नहीं करते।

हाय, जो पार्थिव विषयों में आसक्त हैं और सच्चे धर्म-पथ को छोड़ केवल भौतिक सुखों में अनुरक्त हैं वे कैसे अबोध और अविश्वासी हैं! किन्तु ये अभागे अन्त में अनुभव करेंगे कि

जिन वस्तुओं के मोह में लिप्त रहे हैं वे कैसी असार हैं। उस समय के उनके दुःख-भोग का अनुमान कौन करेगा ?

परन्तु ईश्वरभक्त साधु गण शारीरिक सुखजनक ऐहिक और अस्थायी विषयों के मोह में नहीं पड़ते वरन् केवल नित्य-स्थायी वस्तुओं पर भरोसा रखते और एकाग्रचित्त से उनकी खोज करते हैं।

वे जानते हैं कि दृश्य वस्तुओं के मोह में पड़कर अधम विषयों में पतित होने का भय रहता है, इसलिए वे अदृश्य और अक्षय विषयों से ही लौ लगाते हैं।

हे भाई, 'आध्यात्मिक वस्तुओं-द्वारा कल्याण होता है' इस विश्वास को न खो। अब भी समय और सुयोग है; अपना संकल्प कल पर क्यों छोड़ता है ? कमर बाँधकर उठ खड़ा हो और कह—"बस यही काम करने का समय है, यही निर्मल होने का समय है,यही आत्म-संशोधन के लिए उपयुक्त समय है।"

जब विपदा के बादल छा रहे हों तो कह—"यही परीक्षा का समय है।" प्रकृत सुख पाने के पहले तुझे आग और पानी के बीच से चलना ही पड़ेगा।

जबतक तू यत्नपूर्वक आत्म-दमन न करेगा तबतक कभी पाप को पराजित नहीं कर सकेगा।

जबतक हमारा यह नश्वर और दुर्बल शरीर है तबतक हम पाप या दुःख से सर्वथा मुक्त नहीं हो सकते।

हम सब दुःखों से मुक्त होकर शान्ति पाने की इच्छा तो करते हैं किन्तु पापों में लिप्त होकर हम अपने निर्दोष भावों को खो देते हैं अतः उन्हीं के साथ सच्चा सुख भी नष्ट हो जाता है,

अतएव जबतक इस पाप-वृत्ति का नाश नहीं होता और जीवन इस नश्वरता को निगल नहीं जाता तबतक धीरज रखना और भगवान् की कृपा पर भरोसा करना ही हमारे लिए उचित है।

हाय, मनुष्य कितना दुर्बल है ? वह सदा पाप की ओर प्रयाण करने को तैयार रहता है ! आज तू अपने जिस पाप पर पश्चात्ताप करता है कल फिर वही करने को तैयार हो जाता है। अभी तू आत्म-शोधन का संकल्प करता है किन्तु दो ही घण्टे के अन्दर ऐसे कर्म करने लगता है जिन्हें देखकर अनुमान भी नहीं किया जा सकता कि कभी ऐसा संकल्प किया होगा। जब हम इतने दुर्बल और अस्थिर हैं तब अपने अन्दर किसी महानता का अनुभव न करके नम्र और निरहंकार होना ही हमारे लिए उचित है।

जिसे ईश्वर की कृपा से हम बड़े कष्ट से पाते हैं उसे भी लापरवाही से खो बैठते हैं।

जब हम आरंभ में ही इतने मन्द हैं तो अन्त में हमारी क्या गति होगी ?

हमें धिक् है ! आचार-विचार में सच्ची पवित्रता का नामोनिशान न होने पर भी हम अपने को सुखी और निरापद समझकर अपने को भुलाये रखते हैं !

नवीन शिष्यों की तरह, पवित्र जीवन बिताने की विधि के बारे में बिलकुल शुरू से शिक्षा लेना हमारे लिए आवश्यक हो उठा है; संभव है इससे हमारे आचार-विचार में संशोधन हो और आध्यात्मिक विषयों में हम उन्नति कर सकें।

[२३]

मृत्यु-चिन्ता

आज मनुष्य है, कल नहीं है। शीघ्र ही तेरी भी यही अवस्था होगी। सोचकर देख क्या तू इसे अन्यथा कर सकता है?

आँख से दूर होने पर कुछ दिनों बाद मनुष्य स्मृति-पट से भी लुप्त हो जाता है।

हाय, मनुष्य का मन कैसा अबोध और कठिन है! वह भविष्य के विषय में कुछ नहीं सोचता, केवल वर्तमान को ही लेकर मस्त रहता है! शीघ्र ही मृत्यु होनेवाली है, इसका ध्यान करके हमें प्रत्येक क्षण सदाचरण में लगाना चाहिए।

यदि तेरा अन्तःकरण शुद्ध और पवित्र होता तो तुझे मृत्यु इतना भयभीत न कर सकती।

मृत्यु से भागने की अपेक्षा पाप से भागना कहीं अच्छा है। तू यदि आजतक तैयार नहीं हुआ तो कल कैसे तैयार हो सकेगा? और कल तक तू जीवित ही रहेगा, इसका निश्चय क्या है? ×

× काल करे सो आज कर, आज करे सो अब
पल में परलै होयगी, बहुरि करेगा कब॥

—कबीर।

आत्म-संशोधन नहीं हुआ तो अधिक दिन तक जीने का फल ही क्या ? दीर्घ आयु से अपने जीवन और चरित्र की उन्नति न करके प्रायः मनुष्य पाप की वृद्धि करता है। हाय, यदि इस जगत् में हमारा एक दिन भी उत्तम रूप से बीतता !

बहुत-से लोग भक्ति-मार्ग ग्रहण करने के दिनों की गणना करते हैं किन्तु बहुत दिन बीतने पर भी उनका नैतिक उत्थान बहुत ही थोड़ा हो पाता है। प्राण-त्याग करना यदि भयावह मालूम पड़ता है तो बहुत दिनों तक प्राण-धारण करना और भी विपज्जनक है। धन्य है वह जो सदा मृत्यु को सामने मानकर सदाचरण में लिप्त है और सदा मृत्यु के लिए तैयार रहता है।

यदि तूने कभी किसी को मरते देखा है तो सोच ले कि तुझे भी उसी तरह मरना होगा।

प्रातःकाल स्मरण कर कि संध्या के पहले ही मेरी मृत्यु हो सकती है और संध्या-काल आने पर सोच कि पता नहीं प्रातःकाल देखने पाऊँगा या नहीं।

सर्वदा तैयार रह; जिससे मृत्यु तुझे असावधान अवस्था में न पकड़ ले; इस प्रकार अपना समय सत्कर्म में लगा। कितने ही लोगों की मृत्यु अकस्मात् हो जाती है; उन्हें कुछ सोचने का अवसर ही नहीं मिलता।

अन्तिम समय उपस्थित होने पर तेरे आमोद-प्रमोद का सब भाव बदल जायगा और तुझे इस बात पर अत्यधिक दुःख का अनुभव होगा कि मैंने अपने जीवन को इस बुरी तरह बिताया।

जो अपने को मृत्यु और जीवन में सम-भाव से देखने की इच्छा

करते हैं और सारा जीवन सत्कर्मों में लगाते हैं वे धन्य हैं!

यदि तू सुख और शान्ति से मरना चाहता है तो संसार के प्रति पूर्ण उदासीनता, सत्कर्म में अनुरक्ति, नियम-पालन, हार्दिक अनुताप, आज्ञापालन, आत्म-दमन तथा भगवान् की इच्छा समझकर सब प्रकार के कष्ट-सहन के भाव धारण कर।

जबतक तू सुस्थ है तबतक परोपकार के अनेक कार्य कर सकता है किन्तु पीड़ित होने पर क्या कर सकेगा? पीड़ा-द्वारा बहुत ही थोड़े लोग पहले से अच्छे हो पाते हैं। जैसे वे लोग जो सदा तीर्थ-यात्रा किया करते हैं प्रायः पवित्र नहीं हो पाते।

बन्धु-बान्धवों पर निर्भर करके अपनी आत्मिक उन्नति में देर न कर; जितना तू समझता है उससे जल्द ही मनुष्य तुझे भूल जायँगे। दूसरों की सहायता पर भरोसा रखने की अपेक्षा अभी उत्साहपूर्वक सत्कर्म में लग जाना तेरे लिए अच्छा है।

यदि तू आज अपने विषय में चिन्ता नहीं करता है तो दूसरा कौन तेरे लिए चिन्ता करेगा?

यही समय उत्तम और बहुमूल्य है किन्तु दुःख का विषय है कि नित्य जीवन-धन का अनुसंधान न करके तू आलस्य में अपना समय खो रहा है।

एक ऐसा समय आवेगा जब तू अपना सुधार करने के लिए एक दिन या एक घण्टे का समय चाहेगा किन्तु नहीं कह सकते कि वह भी तुझे मिलेगा या नहीं।

ओ मेरे प्यारे मित्र, यदि तू सदा मृत्यु की चिन्ता करे तो न जाने कितने भय और संकटों से अपनी रक्षा कर सकता है।

इस प्रकार जीवन बिताने की चेष्टा कर कि मृत्यु के समय भय की जगह तुझे आनन्द हो। सांसारिक वस्तुओं को मृत और असार समझने का अभ्यास कर और भगवान् का सानिद्धय-लाभ कर; अस्थायी वस्तुओं की ओर उदासीन हो जा जिससे मुक्त होकर तू भगवान् के समीप जा सके। तपस्या-द्वारा शरीर का दमन कर जिससे तुझमें आत्म-विश्वास उत्पन्न हो।

रे अबोध, जब इसी का निश्चय नहीं है कि तू एक दिन भी बचेगा या नहीं तब दीर्घ आयु की प्रतीक्षा तू क्यों करता है ?

न जाने कितने इस प्रकार की भूल में पड़कर हठात् प्राण-त्याग करते हैं। कितनी बार सुना जाता है—"अमुक व्यक्ति तलवार से कटकर मर गया, अमुक डूब गया, अमुक किसी ऊँचे स्थान से गिरकर मर गया, अमुक खाते-खाते मर गया, अमुक का खेलते-खेलते प्राण निकल गया। कोई आग में जलकर, कोई कटकर, कोई महामारी में और कोई चोरों के आघात से मर गया !"

इस प्रकार सबका ही परिणाम मृत्यु है और मानव-जीवन छाया की तरह शीघ्र नष्ट हो जाता है।

मरने के बाद कौन तुझे स्मरण करेगा और कौन तेरे लिए प्रार्थना करेगा ? अतः हे प्रिय बन्धु, इस समय जो-कुछ करते बने कर ले; पता नहीं किस समय मृत्यु हो जायगी और मृत्यु के बाद तेरा क्या परिणाम होगा ?

जबतक समय है, स्थायी विभूतियों का संचय करले। केवल अपने आत्मिक स्वास्थ्य की चिंता कर। आत्म-चिंतन में रत रह।

महापुरुषों और हरिजनों की संगत कर और उनके कार्यों का अनुगमन कर जिससे इस अस्थायी जीवन का अन्त होने पर वे तुझे नित्य-स्थायी आवास में ग्रहण करें।

अपने को पृथ्वी पर एक यात्री और अभ्यागत समझ जिसे दुनिया के कार्यों से कोई मतलब नहीं।

अपने हृदय को उठाकर ईश्वर में लगा क्योंकि यहाँ तेरा कोई स्थायी आवास नहीं है। प्रतिदिन तू अपनी प्रार्थना, उच्छ्वास और अश्रु को भगवान् के उद्देश्यों की ओर प्रेरित कर जिससे मृत्यु के बाद तेरी आत्मा अनन्त आनन्द के साथ प्रभु के समीप जाय।

[२४]

पापी का विचार और दण्ड

सब बातों में परिणाम का विचार कर। इसे याद रख कि जिस अन्तर्यामी से कुछ छिपा नहीं है उन्हीं के सामने न्याय के लिए तुझे खड़ा होना होगा। वे कुछ उज्र-आपत्ति नहीं सुनेंगे, न रिश्वत से उन्हें प्रसन्न किया जा सकेगा, वे तो जो-कुछ तूने किया है, उसी का यथार्थ विचार करेंगे।

ऐ अभागे अबोध पापी! जब तू साधारण प्रतिष्ठित मनुष्यों की दृष्टि से डरता है तो जो तेरी सब बुराइयों को जानते हैं उनके सामने तू क्या उत्तर देगा?

जिस महाविचार के दिन सबको अपनी सफ़ाई देनी होगी और जिस समय एक का जवाब दूसरा न दे सकेगा, उस दिन के लिए तू अपने को क्यों तैयार नहीं करता?

इस समय अपने परिश्रम का फल तू पा सकता है, इस समय तेरा रोदन भगवान् सुनेंगे, तेरे पश्चात्ताप को स्वीकार करेंगे, इस समय संताप तेरे लिए संतोष-जनक और आत्मशोधकारी होगा। सच्चे धैर्यशील मनुष्य आत्म-निरीक्षण और आत्म-संशोधन का सुयोग ढूँढते हैं; वे अपनी हानि

की अपेक्षा हानि करनेवाले के कुस्वभाव के लिए अधिक दुःख अनुभव करते हैं; वे अपने विरोधियों का अपराध हृदय से क्षमा करते और उनके लिए भगवान् से प्रार्थना करते हैं; किसी के निकट दोषी होने पर वे क्षमा माँगने में विलम्ब नहीं करते; क्रोध की अपेक्षा दया करने में वे अधिक तत्पर दिखाई देते हैं; वे आत्म-दमन करते और अपने शरीर को आत्मा के अधीन रखने में सदा यत्नवान रहते हैं।

आगे पाप का फल भोगने की अपेक्षा इसी समय पाप और बुरी अभिलाषाओं को नष्ट कर डालना उचित है।

शरीर के प्रति अतिशय ममता के वशीभूत हो हम आत्म-वंचना करते हैं। हे पापी, तेरे पाप नरक की अग्नि को प्रज्वलित करने के लिए लकड़ी का काम देंगे। तू इस समय जितना ही सुखप्रिय होगा और शारीरिक सुख की अभिलाषा करेगा परलोक में अनुताप की अग्नि उत्तप्त होकर तुझे उतनी ही यन्त्रणा देगी।

जिस मनुष्य ने जिस-जिस विषय में पाप किया है उसे उन्हीं विषयों में घोर दण्ड प्राप्त होगा।

वहाँ आलसी तप्त शूलों से वेधे जायँगे और पेटू घोर क्षुधा और तृष्णा से पीड़ित होंगे; विलासी और रस-रंगप्रिय लोग जलते हुए लोहों और खौलते हुए गंधक से जलाये जायँगे; ईर्ष्यालु पागल कुत्तों की भाँति शोक से चिल्लायँगे और यद्यपि वहाँ भयजनक कोई वस्तु नहीं होगी फिर भी वे अपने आप दुःख से विकल एवं विदग्ध होंगे। अभिमानी लज्जा और दीनता से दब जायँगे और लोभी अपनी तुच्छ आवश्यकताओं की

पूर्ति न होने के कारण अत्यन्त कष्ट पावेंगे। वहाँ प्रत्येक पाप का उपयुक्त दण्ड मिलेगा। यहाँ के हजारों वर्ष के कष्ट की अपेक्षा वहाँ एक घड़ी की यंत्रणा और कठोर होगी।

वहाँ दण्डित पापियों को जरा भी विश्राम न मिलेगा; यहाँ तो कभी-कभी परिश्रम से छुट्टी मिल जाती है और मित्रों की सहानुभूति और सान्त्वना भी प्राप्त होती है।

इसलिए यहाँ अपने पापों के लिए पश्चात्ताप कर जिससे इस न्याय-दिवस को तुझे भगवद्भक्तों के बीच स्थान मिले।

वहाँ साधु और सत्कर्मी जन दुःख देने वालों के विरुद्ध खड़े होंगे। जिन्हें आज मनुष्य की निन्दा सहन करनी पड़ती है, उस समय वे ही उनका न्याय करेंगे। उस समय दीन-दरिद्र और नम्र अत्यधिक आत्म-विश्वास का अनुभव करेंगे और अहंकारी चारों ओर से भय-ग्रस्त होंगे।

उस समय प्रकट होगा कि जो साधु पुरुष इस संसार में भगवान् की भक्ति में पागल थे, वे ही सच्चे ज्ञानी हैं। उस समय दुष्टता का मुँह बन्द हो जायगा और भगवत् इच्छा के लिए कष्ट भोगने वालों का हृदय आनन्द से भर जायगा। उस समय भक्त सुखी होंगे और अधार्मिक विलाप करेंगे।

उस समय विलासी लोगों की अपेक्षा जितेन्द्रिय और कष्ट-सहिष्णु लोग अधिक सुखी होंगे।

उस समय साधारण वस्त्र तेजोमय हो जायगा और बहुमूल्य वस्त्र तुच्छ मालूम पड़ेगा।

उस समय दरिद्र की कुटी स्वर्णमण्डित राजमहल से अधिक आदर पायेगी।

उस समय संसार के सम्पूर्ण पराक्रम की अपेक्षा धैर्य हमारे लिए अधिक उपकारी और सहायक होगा।

उस समय सम्पूर्ण सांसारिक ज्ञान की अपेक्षा नम्र आज्ञाकारिता अधिक ऊँचा स्थान पायगी।

उस समय गम्भीर दर्शन-विद्या की अपेक्षा सरल और निर्दोष अन्तःकरण अधिक सुखदायक होगा।

उस समय संसार के सम्पूर्ण धन-वैभव की अपेक्षा धन के प्रति उपेक्षा ही अधिक आदरणीय होगी।

उस समय मृदु एवं सुस्वादु भोजन की अपेक्षा एकाग्र प्रार्थना से तुझे अधिक तृप्ति होगी।

उस समय 'बहुत बोला हूँ', सोचकर नहीं वरन् समुचित मौनावलम्बन किया है, यही याद कर शान्ति मिलेगी।

उस समय मधुर शब्दों की अपेक्षा सत्कर्म ही अधिक उपयोगी सिद्ध होंगे।

उस समय सम्पूर्ण पार्थिव आमोद-प्रमोद की अपेक्षा सरल एवं निर्दोष जीवन तथा कठोर तपश्चर्या से अधिक सन्तोष प्राप्त होगा।

इस समय थोड़ा कष्ट-सहन करना सीख ताकि आगे अधिक दुस्सह यंत्रणाओं से तुझे मुक्ति मिले।

यहाँ यदि थोड़ा दुःख तू सहन नहीं कर सकता तो नरक की भयानक यंत्रणा कैसे सहन करेगा ?

यदि तुझे ज़रा-सी वासना असन्तुष्ट कर देती है तब नरक में तेरी क्या गति होगी ?

अरे, इसे गाँठ बाँध ले कि तू दोनों प्रकार का आनन्द नहीं पा

सकता; यदि तू इस संसार का सुख भोगना चाहे और सच्चिदानन्द में मिलकर स्वर्ग का भी राज्य भोगना चाहे तो ये दोनों बातें एक साथ संभव नहीं हैं।

तू आजतक सांसारिक प्रतिष्ठा और भोग-विलास का जीवन बिताता रहा पर यदि आज ही तेरी मृत्यु हो जाय तो ये तेरे किस काम आवेंगे ?

अतएव भगवान् की भक्ति और सेवा को छोड़ सब बातें व्यर्थ हैं क्योंकि जो अपने हृदय की सारी शक्ति से भगवान् की भक्ति करता है वह मृत्यु, दण्ड, दुःख, यंत्रणा, नरक किसी से नहीं डरता; उसका परिपूर्ण प्रेम उसके लिए भगवान् तक पहुँचने का मार्ग सरल और सुरक्षित कर देता है।

जो पाप में सुख मानता है वह मृत्यु और अपने कर्मफल से डरे, यह आश्चर्य की बात नहीं है।

यदि प्रेम तुझे पाप से निवृत्त न कर सके, तो भय से भय तो कर। जो मनुष्य ईश्वर के भय को छोड़ देता है वह अधिक दिनों तक सन्मार्ग पर चलने में समर्थ नहीं हो सकता और शीघ्र ही शैतान के फन्दे में पड़ जाता है!

[२५]

जीवन-संशोधन

भगवान् की सेवा में सदा जागरूक और यत्नवान रह और बार-बार इसे स्मरण कर कि ईश्वरीय उद्देश्यों की सिद्धि और आध्यात्मिक जीवन-यापन के लिए ही तूने सांसारिक जीवन का त्याग किया है।

अतएव सदा ऊँचा उठने का यत्न कर; शीघ्र ही तुझे परिश्रम का फल मिलेगा, तब कोई भय या दुःख तेरे पास नहीं ठहर सकेगा।

इस समय थोड़ा परिश्रम कर; पीछे तुझे विश्राम और नित्यानन्द लाभ होगा। यदि तू श्रद्धा-पूर्वक सत्कर्म में लग जायगा तो निश्चय ही भगवान् उदारतापूर्वक तुझे उसका फल देंगे।

जय पाने की उच्च आशा हृदय में रखना उचित है किन्तु कभी लापरवाह न हो क्योंकि इससे आदमी शीघ्र शिथिल और अभिमानी हो जाता है।

एक समय की बात है कि एक साधक भय और आशा के बीच डाँवाडोल हो रहा था। एकबार शोक के भार से दबा हुआ वह प्रभु की वेदी के सम्मुख लेट गया और मन में सोचा—"मैं प्रभु के पथ में स्थिर रह सकूँगा, यदि इसे जान पाता तो बड़ा

ही अच्छा होता।" उसने अपने हृदय के अन्दर ही उत्तर में यह देववाणी सुनी—"इसे जानने पर तू क्या करता ? जो उस अवस्था में करता, वही इस समय कर; निर्भय रहेगा।" इससे उस व्यक्ति को सान्त्वना और शक्ति मिली और उसने अपने को भगवान् के चरणों में समर्पित कर दिया। उसके मन की अस्थिरता दूर हो गई। भविष्य में क्या होगा, इसकी चिन्ता न करके वह सम्पूर्ण सत्कर्मों को ग्रहण करके भगवान् की इच्छा पूर्ण करने में लग गया।

महापुरुष ने कहा है—"भगवान् में विश्वास करके सत्कर्म कर और शान्तिपूर्वक अपने यहाँ निवास कर। इससे तुझे अच्छा फल मिलेगा।"

युद्ध में जो परिश्रम और क्लेश होता है उसके भय से बहुत से लोग सत्कर्म से वंचित रह जाते हैं; जो लोग वीर की भाँति सम्पूर्ण बाधाओं को कुचलकर आगे बढ़ने का साहस रखते हैं वे ही धर्म-पथ पर अग्रसर होते हैं। मनुष्य जितना ही आत्मदमन करके पाप के लिए मृत हो जाता है आत्मिक विषयों में उतना ही ऊँचा उठता है और भगवान् का कृपा-पात्र होता है।

सबकी आन्तरिक कठिनाइयाँ अधिक नहीं होतीं और न सबके आन्तरिक शत्रु समान रूप से प्रबल ही होते हैं। जो सच्चे प्रेमी और उद्योगी हैं, वे वासनाओं को अधिक प्रबल होने पर भी विजय कर लेते हैं और उनकी आत्मिक उन्नति शीघ्र होती है। जो प्रयत्नशील नहीं हैं, परिमिताभिलाषी होने पर भी वे उतनी उन्नति नहीं कर पाते।

आत्म—संशोधन में दो बातें विशेष रूप से सहायक होती हैं। एक यह कि जिस विषय में हम स्वभावतः कमज़ोर हों उससे मन को बलात् हटाकर दूसरे कार्य में लगाये रखना और दूसरी यह कि जिस गुण का विशेष अभाव हो उसकी मात्रा बढ़ाने की अधिकाधिक चेष्टा करना।

दूसरों के आचरण और व्यवहार में जिन बातों को देखकर तुझे असन्तोष होता है उनसे पहले स्वयं छूटने का यत्न कर।

तू जहाँ रहे वहीं आत्मा के उत्थान की चेष्टा कर; यदि कोई अच्छा उदाहरण सामने आवे तो उसका अनुकरण करने की चेष्टा कर। किसी दूषित कर्म का अनुकरण न कर और यदि भूल से ऐसा हो जाय तो शीघ्र ही उससे छूटने का यत्न कर। तू जिस प्रकार दूसरों के दोषों पर विशेष ध्यान रखता है, वैसे ही दूसरे लोग भी तेरे दोषों पर विशेष दृष्टि रखते हैं।

भगवद्भक्तों को उद्योगी, श्रद्धालु, सदाचारी और संयमी देखकर चित्त को शान्ति और सुख मिलता है; उन्हें आलसी, असंयमी और शिथिल देखकर बड़ा दुःख होता है।

भगवद्भक्त और धार्मिक जन जब अपनी मर्यादा त्याग कर असंगत विषयों में व्यस्त होते हैं तब उनकी बड़ी हानि होती है। तूने जिस धर्म को स्वीकार किया है उसको सदा मन में रख और तुझे दुःख से छुड़ाने के लिए जिस महात्मा (ईसा) ने सूली ग्रहण की उसका सदा स्मरण कर। ईसा के उच्च जीवन को देखकर तुझे अपने आचरणों पर शर्म आनी चाहिए क्योंकि उसके मार्ग का अनुसरण करके भी उसके समान बनने की तू ने बहुत ही कम चेष्टा की है।

अहा, यदि सूली पर जगत् के लिए अपनी बलि देने वाले महापुरुष (ईसा) का हम हृदय से अनुकरण करते तो कितनी जल्दी सत्य का ज्ञान हमें प्राप्त होता।

सच्चे धार्मिक व्यक्ति ईश्वर की समस्त आज्ञाओं को स्वेच्छापूर्वक शिरोधार्य करते हैं। धर्म में शिथिल व्यक्ति अनेक प्रकार के कष्ट और दुःख पाते हैं। क्योंकि उनके मन में शान्ति नहीं होती।

जो लोग असार स्वाधीनता का सुख भोगना चाहते हैं वे सर्वदा ही अस्थिर रहते हैं क्योंकि कोई न कोई विषय उन्हें उद्विग्न किये रहता है।

अहा, मुँह और हृदय से भगवान् का स्मरण करने के अतिरिक्त यदि और कोई काम न होता! यदि भगवान् की सेवा करने के अलावा हम लोगों को दूसरा काम न होता!

अहा, यदि खाना-पीना और नींद की आवश्यकता न होती तो कितने सुख-पूर्वक ईश्वर की स्तुति और आध्यात्मिक अभ्यास में लीन रहने का समय मिलता।

इन्हीं शारीरिक आवश्यकताओं के कारण हमें आध्यात्मिक विषयों में मधुरता का अनुभव करने का बहुत कम अवकाश मिलता है।

मनुष्य जब किसी संसारिक वस्तु में सुख की खोज नहीं करता, असल में तभी वह ईश्वरीय सुख का अनुभव करना आरम्भ करता है। उस समय वह चाहे जिस अवस्था में रहे, उसी में सन्तुष्ट रहता है।

तब वह किसी महान् वस्तु को पाकर हर्ष नहीं करता, न क्षुद्र को

पाकर कातर होता है। वह ईश्वर को सब-कुछ मानकर उसी के चरणों में अपने को पूरी तरह समर्पित कर देता है क्योंकि सम्पूर्ण वस्तुओं का अस्तित्व उसी के लिए है और सब उसी की इच्छा की पूर्ति करती हैं।

अपने अंत समय का स्मरण कर। याद रख जो समय नष्ट हो रहा है वह कभी लौटकर नहीं आवेगा।

बिना यत्न और उद्योग किये तू कभी आध्यात्मिक उन्नति नहीं कर सकता। यदि तू शिथिल हो रहा है तो समझ कि तेरा पतन आरम्भ हो गया है किन्तु यदि हृदय से उद्योग करेगा तो भगवान् की कृपा से तुझे बड़ी शान्ति मिलेगी। उद्योगी मनुष्य सभी प्रकार की कठिनाइयों के लिए सदा तैयार रहता है। शारीरिक परिश्रम की अपेक्षा बुरी आदतों और आन्तरिक दोषों को दूर करना और कठिन होता है।

जो व्यक्ति मामूली दोषों को नहीं छोड़ता वह धीरे-धीरे बड़े दोषों के जाल में फँस जाता है।

तू यदि अच्छी तरह दिन बितायेगा तो तेरी संध्या शान्ति और सुख से बीतेगी।

अपने विषय में सावधान हो, अपने को जगा, अपने को चैतन्य कर। और चाहे तू जो कर पर आत्म-निरीक्षण को कभी न भूल।

अपने पाप-स्वभाव को दबाकर तू जितना ही पवित्र बल दिखायेगा उतनी ही तेरी आध्यात्मिक उन्नति होगी।

द्वितीय खण्ड

आन्तरिक जीवन-सम्बन्धी शिक्षा

[१]

आन्तरिक जीवन

प्रभु ने कहा है कि 'स्वर्ग तुम्हारे ही अन्दर है।' अपने सम्पूर्ण अन्तःकरण से तू भगवान् की ओर प्रवृत्त हो और इस दुःखमय जगत् से ऊपर उठ; तुझे शान्ति मिलेगी।

बाह्य और असार वस्तुओं को तुच्छ समझकर आन्तरिक विषयों में ध्यान लगा, तब तू देखेगा कि तेरे हृदय में ही स्वर्ग उतर आया है क्योंकि ईश्वर का राज्य पवित्रात्मा की शांति और आनन्द में है, जिसे अपवित्र जन नहीं पा सकते।

यदि तू भगवान् के लिए अपने हृदय में उपयुक्त स्थान तैयार कर लेगा तो वह स्वयं ही उसमें प्रकट होकर तुझे सान्त्वना और शान्ति देंगे। प्रभु की सम्पूर्ण महिमा और सौन्दर्य (पवित्र) हृदय में ही प्रकट होता है और उसी में रह कर वे आनन्द की सृष्टि करते हैं।

जिसका अन्तःकरण निर्मल है उसे प्रायः उनका दर्शन होता है और ऐसी आत्माओं के साथ वे मधुर आलाप करते एवं शान्ति प्रदान करते तथा घनिष्ठ परिचय रखते हैं।

हे विश्वासी आत्मन, अपने प्राणाधार के लिए अपना हृदय प्रस्तुत कर जिससे वह आकर उसमें आनन्दपूर्वक निवास करे।

उसका वचन है—"जो मुझे प्रेम करता है वह मेरे आदेश का पालन करता है। उसके अन्तर में मैं प्रकट होता और निवास करता हूँ।"

प्रभु को पाकर ही तू सच्चा धनवान् बन सकता है। वह सभी विषयों में तेरे विश्वस्त सहायक होंगे और मनुष्य के ऊपर निर्भर करने की तुझे आवश्यकता न पड़ेगी। मनुष्य का क्या ठिकाना ? वह जो आज है, कल न रहेगा; आज ऊँचाई पर है कल ज़मीन पर लोटता होगा। भगवान् का अवलम्ब तो स्थायी है। वह जीवन के अन्त तक हमारे पास अटल भाव से वर्तमान रहते हैं।

पतनशील और क्षणभंगुर मनुष्य पर, उपकारी और प्रिय होते हुए भी अधिक भरोसा नहीं किया जा सकता और यदि वह कभी तेरे विरुद्ध भी हो जाय तो इसके लिए कातर होने की आवश्यकता नहीं है। जो आज तेरे पक्ष में है वही कल विरुद्ध होगा। मनुष्य तो प्रायः वायु के समान अस्थिर गति-वाला होता है।

अपनी सारी आशा और भरोसा ईश्वर में ही रख। उसी से भय कर, उसी को प्रेम कर। वह तेरी जवाबदारी लेगा और जिसमें तेरा कल्याण होगा वही करेगा।

यह दुनिया तेरा स्थायी निवास नहीं है; चाहे तू कहीं हो, इस पृथ्वी पर तू प्रवासी, यात्री है; प्रभु के साथ सान्निध्य-लाभ किये बिना तुझे कभी विश्राम नहीं मिलेगा।

तू, इस दुनिया में, चकित होकर क्यों इधर-उधर देखता है; यह तो तेरा विश्राम-भवन नहीं है। स्वर्ग ही तेरा सच्चा विश्रामस्थल

है; दुनिया की ये पार्थिव चीजें तो क्षणस्थायी हैं। वे नष्ट होने वाली हैं; उनके साथ तू भी नष्ट हो जायगा। सावधान, उनमें आसक्त न हो जाना अन्यथा लिप्त होकर उनके साथ तू भी विनष्ट होगा। जो प्रभु इन सब वस्तुओं से ऊँचा है उसमें ध्यान लगा।

यदि तू भगवान् का ध्यान करेगा तो कष्ट और दुःख के समय तुझे अपार सान्त्वना मिलेगी और मनुष्यों-द्वारा होने वाले अपमान-अवज्ञा तथा निन्दा के बीच भी तू अविचलित रहेगा।

यदि जीवन में तुझे दुःख और कष्ट नहीं झेलने पड़े तो तेरे धैर्य का तुझे पुरस्कार ही क्या मिला?

यदि कष्ट उठाने में तू घबड़ाता है। तो प्रभु से तेरी मैत्री कैसे निभेगी?

जिसने प्रभु के निगूढ़ प्रेममय जीवन का रसास्वादन कर लिया है वह अपने सुखासुख का विचार नहीं करता। निन्दा के बीच भी उसे आनन्द का अनुभव होता है क्योंकि वह अपने शरीर की अपेक्षा भगवान् के प्रेम की ही अधिक परवा करता है।

जो सच्चे भक्तिभाव से प्रभु एवं सत्य को प्रेम करता है और अस्वाभविक वासनाओं से निवृत्त हो जाता है वह अबाधगति से ईश्वर की ओर अग्रसर होता और सच्ची शान्ति एवं आनन्द का उपभोग करता है।

जो मनुष्य की बातों एवं विवेचनाओं के अनुसार नहीं वरन् सम्पूर्ण विषयों की प्रकृत अवस्था पर विचार करते हैं वही

सच्चे ज्ञानी हैं। उनकी शिक्षा मनुष्य-द्वारा नहीं वरन् ईश्वरीय प्रेरणा से होती है।

जो सांसारिक विषयों को तुच्छ समझकर आन्तरिक जीवन का निर्माण करने में लगे हुए हैं वे आध्यात्मिक साधना के लिए स्थान या समय-विशेष की अपेक्षा नहीं करते। आत्मार्थी व्यक्ति शीघ्र ही सच्ची चेतना को प्राप्त होते हैं क्योंकि वे कभी अपने को सांसारिक विषयों के अधीन नहीं होने देते। सामयिक परिश्रम अथवा किसी अन्य आवश्यक कार्य के कारण उनकी साधना में विघ्न नहीं पड़ता। जब जैसी ज़रूरत होती है विचार करके वे अपना कर्तव्य निश्चित कर लेते हैं।

जिनका अन्तःकरण संयत और नियंत्रित है वे मनुष्यों के दुष्ट व्यवहार से कातर नहीं होते। जितना ही मनुष्य बाह्य विषयों को मन में प्रवेश करने देता है, उतना ही अपनी कठिनाइयाँ बढ़ाता और कातर होता है।

यदि तू पाप से ऊँचा उठकर उत्तम अवस्था को प्राप्त करले तो दुनिया की सभी चीजें तेरे कल्याण और उन्नति का साधन बन जायँगी किन्तु बात यह है कि अनेक विषय तेरे सामने आ-आकर तुझे व्यस्त और असन्तुष्ट किये रहते हैं क्योंकि तू अभी तक सांसारिक विषयों से अपने चित्त को पूर्णतः हटाने में समर्थ नहीं हुआ है।

दुनिया की वस्तुओं के प्रति अस्वाभाविक अनुराग से बढ़कर मनुष्य के मन के लिए अनिष्टकारी दूसरी बात नहीं है।

यदि तू बाह्य स्वच्छन्दता को छोड़ दे तो स्वर्गीय विषयों की आलोचना करके असीम आत्मिक सुख प्राप्त कर सकता है।

[२]

नम्र भक्ति

कौन तेरे पक्ष में है, कौन विपक्ष में है इसकी चिन्ता मत कर। प्रत्येक कार्य करते समय यह सोच कि भगवान् की कृपा कैसे होगी।

प्रत्येक कार्य करते समय अन्तःकरण को शुद्ध रख; भगवान् तेरी रक्षा करेंगे। जिसकी रक्षा भगवान् करते हैं, मनुष्य का विरोध उसका कुछ विगाड़ नहीं सकता।

यदि तू शान्त और मौन रहकर दुःखों को सहन करेगा तो निश्चय ही भगवान् तेरी सहायता करेंगे। तेरे उद्धार का उपयुक्त समय और उपाय वही जानते हैं इसलिए उनके चरणों में पूर्णतः आत्मसमर्पण करना ही तेरे लिए उचित है।

तेरी सहायता करना और सब प्रकार के भ्रम एवं अज्ञान से तेरा उद्धार करना भगवान् का कार्य है।

दूसरों-द्वारा की जाने वाली निन्दा कई बार हमें नम्र बनाती और हमारे उद्धार में सहायक होती है।

जो अपने दोष को जानकर नम्र और दीन बन जाता है वह अनायास ही दूसरों के विरोध को शान्त कर देता है और जो विरोधी

रहते हैं उन्हें भी अपनी नम्रता-द्वारा अनुकूल बना लेता है।

ईश्वर नम्र व्यक्ति की रक्षा और उद्धार करता है; नम्र को ही वह प्रेम करता और सान्त्वना देता है; नम्र व्यक्ति के सामने वह प्रकट होता एवं उसे ही अपना ओज प्रदान करता है और पतित अवस्था से उठाकर उसे महिमा प्रदान करता है। नम्र लोगों के ही हृदय में वह अपने गुप्त रहस्य को प्रकाशित करता है। और प्रेमपूर्वक उसे अपने समीप खींच लेता है।

विपत्ति और लज्जा में पड़ने पर भी, नम्र व्यक्ति, अपने हृदय में यथेष्ट शान्ति का अनुभव करता है क्योंकि वह संसार पर निर्भर नहीं करता, ईश्वर पर ही भरोसा रखता है।

जब तक तू अपने को सब से तुच्छ नहीं समझता, कल्याण-मार्ग पर अग्रसर नहीं हो सकता।

शान्तिप्रिय सज्जन

पहले तू स्वयं शान्ति प्राप्त करले, तभी तू दूसरों को शान्ति प्रदान कर सकता है।

शान्तिप्रिय व्यक्ति, विद्वान की अपेक्षा अधिक उपकारी होता है।

रागी मनुष्य के हाथ पड़कर भलाई भी बुराई हो जाती है; वह शीघ्र बुराइयों में विश्वास कर लेता है पर शान्तिप्रिय व्यक्ति सबको उत्तम बनाने की चेष्टा करता है।

जिसने सच्ची शान्ति प्राप्त करली है वह किसी पर सन्देह नहीं करता; जो अतृप्त और चंचल है वह नाना प्रकार के सन्देहों से सदा दुखित और उत्पीड़ित रहता है। वह न स्वयं स्थिर रहता है, न दूसरों को स्थिर रहने देता है। वह दूसरे लोगों के कर्तव्य के बारे में बड़ी-बड़ी बातें करता है पर अपने कर्तव्यों का पालन करने में सदा असावधान रहता है।

इसलिए सबसे पहले आत्म-संशोधन में चित्त लगा; दूसरों को ऊँचा उठाने की चेष्टा पीछे करना।

तू अपने दोषों के लिए विलक्षण बहाने बनाना जानता है किन्तु दूसरों की बात सुनने के लिए तैयार नहीं होता। अधिक कल्याणकर मार्ग तो यह है कि तू अपने दोषों पर ज्यादा ध्यान दे और अन्य बन्धुओं के दोषों को उदारता की दृष्टि से देख।

यदि तू दूसरों से सहिष्णुता चाहता है तो तुझे भी दूसरों के प्रति सहिष्णुता रखनी चाहिए।

यदि तू जानता कि प्रकृत उदारता और नम्रता से तू कितनी दूर है तो दूसरों पर क्रोध करने की अपेक्षा अपने पर ही तुझे क्रोध होता।

साधु और नम्रजनों का सत्संग कोई बड़ी बात नहीं है क्योंकि प्रत्येक मनुष्य समान विचारवालों के साथ रहने में सदा ही सुख का अनुभव करता है।

किन्तु कठिनमना और विरुद्धाचारी लोगों के साथ निर्विरोध वास करना उच्चता का लक्षण है और प्रशंसनीय कार्य तथा पुरुषार्थ है।

ऐसे पुरुष थोड़े हैं जो स्वयं शान्ति का अनुभव करते हैं और दूसरों के साथ भी शान्तिपूर्वक रहते हैं। बहुत-से ऐसे हैं जो न स्वयं शान्ति पाते हैं न दूसरों को पाने देते हैं। वे दूसरों के लिए कष्टकर होतें हैं पर सब से ज्यादा कष्टकर अपने ही लिए होते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो अपने हृदय की शांति को सुरक्षित रखते हैं और दूसरों में भी शान्ति की स्थापना करने में सचेष्ट रहते हैं।

इसे याद रख कि इस दुःखमय जीवन में जो शान्ति हमें मिल सकती है वह नम्र कष्ट-सहन से ही मिल सकती है; क्लेश के बिना शान्ति नहीं।

जो अविचलित भाव से कष्टों को सहन करता है वही सर्वाधिक शान्ति प्राप्त करता है। वह आत्म-विजयी, जगदीश, प्रभु का मित्र तथा स्वर्ग का उत्तराधिकारी है।

[४]

पवित्र और सरल इच्छा

पार्थिव वस्तुओं से ऊपर उठने के लिए सरलता और पवित्रता, इन दो गुणों की अत्यन्त आवश्यकता होती है। इच्छा में सरलता और प्रेम में पवित्रता होनी चाहिए। सरलता के द्वारा भगवान् का मार्ग प्रकाशित होता है और पवित्रता के के द्वारा हम उसे प्राप्त करते और उसका आस्वादन करते हैं।

यदि तू अपने हृदय को असंयत अभिलाषाओं से मुक्त कर लेगा तो कोई कर्म तेरे मार्ग में वाधक नहीं होगा।

यदि तू केवल भगवान् की इच्छा-पूर्ति और पड़ोसियों के कल्याण की चेष्टा करने में लग जाय तो निश्चय ही तू आन्तरिक स्वाधीनता प्राप्त करने में समर्थ होगा। यदि तेरा हृदय सरल एवं पवित्र हो तो संसार का प्रत्येक प्राणी तेरे लिए जीवन का दर्पण और पवित्र ग्रन्थ के सदृश अनुभव होगा। संसार की कोई वस्तु इतनी क्षुद्र और अपदार्थ नहीं है कि उसमें भगवान् की विभूति वर्तमान न हो।

[५]

आत्म-चिन्ता

हमें अपने ऊपर बहुत अधिक विश्वास न स्थापित कर लेना चाहिए क्योंकि हम प्रायः अपने में ईश्वरीय प्रसाद और ज्ञान का अभाव अनुभव करते हैं। हमारे अन्तर में बहुत थोड़ा प्रकाश है; उसे भी प्रायः हम आलस्य के कारण खो देते हैं। भीतर से हम कितने अंधे हैं, इसे कई बार हम अनुभव नहीं करते।

अनेक बार हम अनुचित कार्य कर बैठते हैं और फिर उस अनुचित कार्य के समर्थन में उससे भी अनुचित बहाने ढूँढ़ते हैं।

कभी-कभी जब हम क्रोध या आवेश में होते हैं तो उसे उत्साह समझने की भूल कर बैठते हैं।

हम दूसरों के नगण्य दोषों की प्रायः आलोचना करते हैं पर अपने बड़े-बड़े दोषों की ओर ध्यान नहीं देते।

जब हमें दूसरों के कारण कुछ दुःख होता है तो हम उसका बहुत अधिक बोझ अनुभव करते हैं पर इस बात पर कभी ध्यान नहीं देते कि दूसरे हमारे लिए कितना सहन करते हैं।

जो लोग अपने कर्तव्य-कर्म पर ठीक विचार करते हैं उनके पास दूसरों के विषय में कठोर विचार करने का बहुत कम कारण रह जाता है। मुमुक्षु लोग दूसरों के सम्बन्ध में

यदि तेरा हृदय शुद्ध और पवित्र हो तो तू संसार की सम्पूर्ण वस्तुओं में भलाई देखेगा और उनको ठीक-ठीक समझ सकेगा।

पवित्र हृदय स्वर्ग और नरक को भेद सकता है।

मनुष्य भीतर से जैसा होता है बाहर उसका वैसा ही निर्णय होता है।

संसार में यदि कहीं कुछ आनन्द है तो निर्मलचित्त व्यक्ति अवश्य ही उसके अधिकारी हैं और यदि संसार में कहीं ज्वाला-यंत्रणा है तो दुष्टात्मा उसे विशेष रूप से अनुभव करते हैं।

जिस प्रकार अग्नि में पड़ कर लोहा अपनी मलिनता छोड़ चमकदार हो जाता है उसी प्रकार जो अपने को सम्पूर्णतः भगवान् के चरणों में सौंप देता है उसकी सम्पूर्ण मलिनता नष्ट हो जाती है और वह बिलकुल नवीन मनुष्य बन जाता है।

भीरु आदमी थोड़ा काम देखकर भी घबड़ा जाता है और सान्त्वना के लिए इधर-उधर देखता है किन्तु यदि उसने अपने पर पूर्ण अधिकार कर लिया है और साहसपूर्वक भगवत्-मार्ग पर चल रहा है तो पहले उसे जो बड़ा बोझ का काम प्रतीत होता था वही अब उसको बहुत छोटा और सरल मालूम पड़ता है।

आत्म-चिन्ता

हमें अपने ऊपर बहुत अधिक विश्वास न स्थापित कर लेना चाहिए क्योंकि हम प्रायः अपने में ईश्वरीय प्रसाद और ज्ञान का अभाव अनुभव करते हैं। हमारे अन्तर में बहुत थोड़ा प्रकाश है; उसे भी प्रायः हम आलस्य के कारण खो देते हैं। भीतर से हम कितने अंधे हैं, इसे कई बार हम अनुभव नहीं करते।

अनेक बार हम अनुचित कार्य कर बैठते हैं और फिर उस अनुचित कार्य के समर्थन में उससे भी अनुचित बहाने ढूँढ़ते हैं।

कभी-कभी जब हम क्रोध या आवेश में होते हैं तो उसे उत्साह समझने की भूल कर बैठते हैं।

हम दूसरों के नगण्य दोषों की प्रायः आलोचना करते हैं पर अपने बड़े-बड़े दोषों की ओर ध्यान नहीं देते।

जब हमें दूसरों के कारण कुछ दुःख होता है तो हम उसका बहुत अधिक बोझ अनुभव करते हैं पर इस बात पर कभी ध्यान नहीं देते कि दूसरे हमारे लिए कितना सहन करते हैं।

जो लोग अपने कर्तव्य-कर्म पर ठीक विचार करते हैं उनके पास दूसरों के विषय में कठोर विचार करने का बहुत कम कारण रह जाता है। मुमुक्षु लोग दूसरों के सम्बन्ध में विचार

करने की अपेक्षा सदा आत्म निरीक्षण की ओर ही ज्यादा ध्यान देते हैं और जो अपनी कमज़ोरियों के सम्बन्ध में ज्यादा सतर्क रहता है वह सहज ही दूसरों के दोषों के विषय में मौन रह सकता है। तू यदि दूसरों के विषय में मौन रह कर आत्म-चिन्तन में समय और शक्ति नहीं लगाता तो कभी आत्मवान् और भक्तिशील नहीं हो सकता।

तू यदि आत्म-चिन्तन और भगवद्भक्ति में मनोयोग करे तो जो कुछ बाह्य जगत् में तू देखता है उसके कारण कभी विचलित नहीं होगा।

जब तू अपने साथ नहीं रहता तो कहाँ रहता है, इसका विचार कर देख। यदि तू संसार की सब वस्तुओं में दौड़ता फिरता है किन्तु स्वयं अपनी संभाल नहीं करता तो इससे क्या लाभ?

यदि तू मानसिक शान्ति और ईश्वर के साथ सानिद्धय चाहता है तो दूसरे सब विषयों से चित्त हटाकर अपने अन्तर की ओर दृष्टि फेर। यदि तू पार्थिव भावनाओं से निवृत्त हो जाय तो उससे तेरा बड़ा कल्याण होगा।

ईश्वर और ईश्वर-सम्बन्धी जो कुछ है, उसके अतिरिक्त कुछ उच्च महत्, मनोहर और ग्राह्य नहीं है। सांसरिक वस्तुओं से जो सान्त्वना मिलती है वह असार है।

जो ईश्वर को प्रेम करता है उसे संसार की सभी वस्तुयें तुच्छ प्रतीत होती हैं।

ईश्वर नित्य और असीम है; केवल वही प्राणी को तृप्त कर सकता है। वही आत्मा की सान्त्वना और सच्चे हार्दिक आनन्द का विधाता है।

[६]

निर्मल अन्तःकरण का आनन्द

निर्मल अन्तःकरण के दर्शन में ही सत्पुरुष का आनन्द है।
अन्तःकरण निर्मल और पवित्र रख, तू सदा आनन्द का अनुभव करेगा।

पवित्र अन्तःकरण अनेक आपदाओं को सहन कर सकता है और कष्टों के बीच भी प्रसन्न रहता है। मलिन अन्तःकरण सदा भयाकुल और शान्तिहीन रहता है।

तेरा हृदय यदि तुझे दोषी न कहे तो तू सदा सुखपूर्वक विश्राम पायेगा। सत्कार्य के अतिरिक्त और किसी कार्य में आनन्द न मान।

पापी को न कभी सच्चा आनन्द मिलता है, न सच्ची शान्ति मिलती है। प्रभु ने कहा है—"दुष्टों के लिए शान्ति नहीं है।" यदि ऐसे लोग कहें भी, कि हम शान्तिपूर्वक हैं और हमारा कुछ अमंगल न होगा, तो उनपर विश्वास न कर। ईश्वर का क्रोध हठात उठकर उनके सारे कार्यों और कामनाओं को भस्म कर देगा।

प्रेम-परायण व्यक्ति अनायास ही कष्ट भोगने में प्रसन्नता का अनुभव करता है क्योंकि वह इसमें प्रभु की विभूति देखता है।

जो वैभव एवं गौरव मनुष्य से मिलता और छीन लिया जाता है वह अल्पकालिक है। संसार-द्वारा मिलनेवाले गौरव के पीछे दुःख छिपा रहता है।

सज्जनों की विभूति उनके अन्तःकरण में निहित है; वे मानवी प्रशंसा और गौरव के भूखे नहीं होते।

सत्पुरुषों का आनन्द ईश्वरजात है और ईश्वर ही उनके आनन्द का निकेत है; उनका आनन्द सत्य पर अवलम्बित है।

जो सत्य एवं नित्य विभूतियों की आकाँक्षा रखते हैं वे ऐहिक गौरव को तुच्छ समझते हैं और जो ऐहिक गौरव के आकांक्षी नही वरन् उसे घृणा करते हैं वे निश्चय ही ईश्वरीय विभूति को प्रेम करते हैं। जो मानवी निन्दा-यश से विचलित नहीं होते वे हृदय में असीम शान्ति अनुभव करते हैं।

जिसका अन्तःकरण निर्मल है वह सहज ही सन्तुष्ट एवं शान्त रहता है। दूसरे प्रशंसा करते हैं इसलिए तू पवित्र नहीं हो सकता और दूसरे निन्दा करते हैं इसलिए तू पतित है, ऐसा भी नहीं है। तू जैसा है वैसा ही रहता है। भगवान् की दृष्टि में तू जैसा है वह मानवो निन्दा-यश से बदल नहीं सकता। वह संसार की निन्दा और यश को कसौटी बनाकर तेरी परीक्षा नहीं करेंगे।

यदि तू अपने अन्तःकरण पर ध्यान रक्खेगा तो दूसरे तेरे विषय में क्या कहते हैं, इस तरफ़ तेरा ध्यान नहीं जायगा। मनुष्य तो केवल बाहरी बातों को देखता है किन्तु भगवान् हृदय

देखते हैं। मनुष्य कर्म देखकर निर्णय करता है और भगवान् अभिप्राय देखकर तौलते हैं।

सर्वदा सत्कर्म में लगा रहना और अपने को तुच्छ अनुभव करना ही नम्र आत्मा का लक्षण है।

किसी प्राणी से सान्त्वना की आकांक्षा न रखना ही पवित्रता और आत्म-विश्वास का चिन्ह है।

जो अपने लिए कोई बाहरी साक्ष्य नहीं चाहता, उसने भगवान् के चरणों में पूर्णतः आत्म-समर्पण कर दिया है, ऐसा समझना चाहिए। जो अपनी प्रशंसा करता है वह कसौटी पर खरा नहीं उतरता। प्रभु जिसकी प्रशंसा करते हैं, वही परीक्षा में उत्तीर्ण होता है।

आत्मानुभवी सदा भगवान् में ही विचरण करता है और संसार के मायामोह में नहीं पड़ता।

[७]

प्रभु के प्रति एकान्त प्रेम

जो प्रभु के प्रेम में मग्न हैं और उसके लिए अपनी परवा नहीं करते, वे धन्य हैं।

उस प्रियतम के लिए सम्पूर्ण काम्य वस्तुओं का त्याग करना उचित है। अन्यप्राणियों का प्रेम चंचल और अस्थायी होता है किन्तु प्रभु का प्रेम स्थायी एवं कल्याणकर होता है।

जो पार्थिव वस्तुओं में आसक्त होता है वह उन्हीं के साथ पतित होता है किन्तु जो प्रभु का अलिंगन करता है वह चिरकाल तक अटल रहता है।

जब संसार की सम्पूर्ण वस्तुयें तुझे त्याग देती हैं तब भी जो तेरे साथ बना रहता है और तुझे नष्ट नहीं होने देता उस प्रभु को सदा प्रेम कर और उसे ही अपना जीवन-बंधु बना।

चाहे तेरी इच्छा हो या न हो किसी न किसी समय तुझे सम्पूर्ण पार्थिव वस्तुओं से अलग होना ही पड़ेगा। जीवन-मरण में भगवान् के चरणों में अपने को छोड़ दे क्योंकि जब सब असमर्थ होंगे तब वही प्रभु तेरी रक्षा करेगा।

तेरा प्रियतम तेरे हृदय पर एकछत्र अधिकार चाहता है। वहाँ वह केवल अपना सिंहासन लगायेगा।

सम्पूर्ण पार्थिव वस्तुओं का मोह दूर हो जाने पर ही भगवान् तेरे हृदय में निवास करेंगे।

भगवान् को छोड़ अन्य प्राणियों से तू जो आशा रखता है वह एक दिन नष्ट होनेवाली है। वायु-कम्पित तृण के सदृश क्षण-भंगुर मनुष्य पर निर्भर न कर। शरीरी-मात्र तृणवत् हैं एवं उनका समस्त गौरव एक दिन कुम्हलाकर गिर जानेवाले वन-कुसुम के समान है।

यदि तू मनुष्यों के रूप-रंग को देखता है तो शीघ्र धोखा खायगा। यदि तू दूसरों से सान्त्वना चाहता और उपकार की आशा रखता है तो प्रायः तुझे कठिनाइयों और निराशाओं का सामना करना पड़ेगा।

सम्पूर्ण वस्तुओं में प्रभु की खोज करने से निश्चय ही तू उसे पायेगा। किन्तु यदि तू अपनी खोज करेगा तो अपने सर्वनाश का पथ उन्मुक्त करेगा।

[८]

प्रभु के साथ घनिष्ठ मैत्री

भगवान् के सानिद्धय से सभी कुछ उत्तम और सरल हो जाता है पर प्रभु की अनुपस्थिति में सभी बातें कठिन मालूम होती हैं।

जबतक प्रभु हमारे अन्तर में नहीं बोलते, तबतक सम्पूर्ण सान्त्वना असार प्रतीत होती है। जहाँ भगवान् का एक शब्द सुनाई पड़ता है वहाँ हमें असीम आनन्द अनुभव होता है।

सच्चे सुख का समय वही है जब प्रभु हमारी आँखें पोंछकर आध्यात्मिक सुख प्रदान करने के लिए आह्वान करते हैं।

प्रभु के बिना यह जीवन कितना नीरस और कठोर है! उन्हें छोड़ यदि हम दूसरी तुच्छ वस्तुओं में फँस जायँ तो यह कैसी मूर्खता की बात होगी।

भगवान् की कृपा के बिना यह सारा जगत तेरा क्या कल्याण कर सकेगा? भगवान् के बिना यह जगत् नरक-तुल्य है; भगवान् से सानिद्धय-लाभ करना ही आनन्दमय स्वर्ग है।

भगवान् की छाया में रहने पर प्रबलतम शत्रु भी तेरा कुछ न बिगाड़ सकेगा।

जो प्रभु को प्राप्त कर लेता है वह संसार का सर्वोत्कृष्ट धन और वैभव प्राप्त कर लेता है और जो प्रभु को खो देता है वह सभी कुछ खो देता है।

जो प्रभु से हीन है वही दरिद्र है और जो उसके साथ सदा आलाप करता है वही सच्चा धनी है।

किस प्रकार प्रभु से बातचीत की जाती है, इसे जानना ही विज्ञता है और किस प्रकार प्रभु को हृदय में प्रत्यक्ष करना, यह जानना ही परमज्ञान का विषय है।

नम्र और शान्तमना हो, प्रभु तेरे साथ रहेंगे; निरीह और श्रद्धालु हो प्रभु तेरे हृदय में वास करेंगे। यदि तू बाह्य विषयों में आसक्त है तो प्रभु की कृपा से तेरी आसक्ति छूट जायगी। प्रभु को छोड़ और तू किसकी शरण लेगा? और किसे अपना बंधु बनावेगा? जीवन-बंधु बिना तू कभी सुखपूर्वक जीवन नहीं बिता सकेगा। इसलिए यदि प्रभु को तूने अपना परमप्रिय बन्धु नहीं बनाया तो तू बहुत दुखी और दीन-हीन बना रहेगा। दूसरे किसी प्राणी पर भरोसा रखने से तू अबोध की भाँति कार्य करेगा। अतः प्रभु का अप्रीतिभाजन होने की अपेक्षा समस्त जगत् का विरोध सिर पर उठा लेना ज्यादा अच्छा है।

इसलिए तेरे जितने प्रिय लोग हों उन सबसे प्रभु को अधिक प्रिय बना। प्रभु को ही अपना अन्तरंग मित्र और प्रियतम समझ।

सब को प्रभु के लिए, और प्रभु को अपने लिए प्रेम कर।

प्रभु के लिए शत्रु-मित्र सभी को तू अपना प्रिय समझ और सब के लिए भगवान् से प्रार्थना कर कि वह उनके हृदय

में प्रेम उत्पन्न करे और समुचित मार्ग पर चलावे।
लोग तुझे प्रेम करें वा तेरी प्रशंसा करें, ऐसी इच्छा कभी न कर; ये दोनों चीजें तो ईश्वर की प्राप्य हैं (उसे ही मिलनी चाहिएँ।)
ऐसी इच्छा न कर कि किसी का मन तेरे प्रेम में आसक्त हो और तू भी किसी के प्रेम में आसक्त न हो। अपने हृदय को विशुद्ध और उन्मुक्त रख ।
ईश्वर के सामने अपने हृदय को सदा अनावृत (खुला) और पवित्र रख अन्यथा तू प्रभु के प्रसाद और माधुर्य का स्वाद कभी न पा सकेगा। जबतक तू उनके प्रसाद में आकृष्ट न होगा तबतक कभी इस ऊँची अवस्था तक नहीं पहुँच सकेगा और न कभी सर्वस्व-त्याग करके उसका सानिद्धय ही लाभ कर सकेगा।
जिसे भगवद्विभूति प्राप्त है वही अपनी शक्ति से सब कुछ कर सकता है और जब वह विभूति चली जाती है तो मनुष्य नितान्त दीन-हीन और दुर्बल हो जाता है और उस समय दुःख एवं पोड़ा भोगने के लाय.. ही रह जाता है।
कष्टों से पराजित और निराश न हो वरन् भगवान् की इच्छा पर अपने को सम्पूर्णतः छोड़ दे। जो भी कष्ट-दुःख आ पड़े उसे प्रभु की महिमा के लिए चुपचाप सहन कर। यह याद रख कि शिशिर के बाद वसन्त, रात के बाद दिन और तूफान के बाद शान्ति का आगमन होता है।

[६]

सान्त्वना का अभाव

जब हमें ईश्वरीय सान्त्वना प्राप्त होती है तो मनुष्य-द्वारा मिलने-वाली सान्त्वना हमें अपने आप तुच्छ मालूम पड़ती है। पर मानवीय और ईश्वरीय दोनों प्रकार की सान्त्वना का अभाव सहन कर भगवान् की महिमा के लिए प्रसन्नचित्त से दुःखों को स्वीकार करना और स्वार्थ-परता तथा आत्मश्लाघा का पूर्ण त्याग करना अत्यन्त कठिन कार्य है।

जब जीवन में भगवान् का प्रसाद (Grace) उपस्थित हो तो सुखी और भक्ति-परायण होना कौन बड़ी प्रशंसा की बात है? इतना तो सभी करते हैं। जिसके जीवन में ईश्वर का प्रसाद प्रकाशित होता है वह धीरे-धीरे धर्म-मार्ग पर अग्रसर होता ही है।

सर्वशक्तिमान प्रभु जिसे धारण करते हैं और सर्वश्रेष्ठ पथ-प्रदर्शक जिसका संचालन करता है वह अपने बोझ को बोझ नहीं समझता, इसमें आश्चर्य क्या है?

हम सदा ही सुख और सान्त्वना की खोज में रहते हैं अतः पूर्ण-आत्मत्यागी होना हमारे लिए बड़ा ही कठिन है।

जिन्होंने धर्मार्थ प्राण दिया है उन्हीं साधुओं ने जगत् पर विजय प्राप्त की है और जगत् में जो कुछ सुख-जनक समझा जाता

है उसको उन्होंने तुच्छ समझकर त्याग दिया है। भगवद्भक्ति के लिए उन्होंने प्रियजनों का विछोह भी सहन किया है। उन्होंने ईश्वर-प्रेम के द्वारा मानव-प्रेम को पराजित किया है। और मनुष्य द्वारा मिलनेवाली सान्त्वना की इच्छा करने को अपेक्षा ईश्वर की इच्छा पालन करने को श्रेयस्कर समझा है।

इसलिए भगवद्भक्ति के लिए अपने ऐसे प्रियजनों के प्रेम का भी त्याग कर जो तुझे अपने जीवन के लिए आवश्यक मालूम पड़ते हैं। यदि कोई प्रिय बन्धु तुझे त्याग दे तो दुःखी मत हो। एक दिन तो सब का बिछोह होना ही है।

कोई यदि अपने ऊपर विजय प्राप्त करके अपने को पूर्णतः ईश्वरार्पण कना चाहे तो उसे अनेक आन्तरिक युद्धों में प्रवृत्त होना पड़ेगा।

जब मनुष्य अपनी निजी शक्ति का गर्व करके कोई काम करना चाहता है तो वह मानवीय सान्त्वना का आश्रय ग्रहण करने को बाध्य होता है। प्रभु का सच्चा भक्त ऐसी सान्त्वना की इच्छा नहीं करता, न इन्द्रियलब्ध माधुर्य से प्रलुब्ध होता है वरन् धर्म-पथ की कठिन परीक्षाओं एवं कष्टों को धीरतापूर्वक सहन करता है।

यदि भगवान् तुझे आध्यात्मिक शान्ति प्रदान करें तो कृतज्ञतापूर्वक उसे ग्रहण कर। यह मत सोच कि यह तेरे किसी गुण का फल है वरन् सदा ऐसा मान कि यह भगवान् की कृपा का फल है। इसके लिए अभिमान मत कर वरन् और भी अधिक दीनता एवं नम्रता के साथ अपने कार्यों के सम्बन्ध में

सतर्क होजा क्योंकि शीघ्र ही यह समय बीत जायगा और प्रलोभनों का आक्रमण होगा।

यदि सान्त्वना तुमसे कभी छिन जाय तो निराश न हो; नम्रता-पूर्वक भगवत्कृपा की प्रतीक्षा कर। भगवान् अवश्य तेरी आशा पूरी करेंगे।

जिन्होंने ईश्वरीय पथ का परिचय पा लिया है उन्हें ऐसी घटनायें आश्चर्यजनक या असाधारण नहीं बोध होतीं क्योंकि अनेक साधुओं के जीवन में वे चरितार्थ हुई हैं। एक सन्त ने कहा है—"अपने सुख की अवस्था में मैंने गर्व करके कहा था कि मैं कभी विचलित नहीं होऊँगा।" पर भगवद्विभूति का अभाव होने पर मुझे विनय करनी पड़ी—'हे प्रभु, तुम अपना मुख छिपा लेते हो तो मैं व्याकुल हो जाता हूँ। अब मैं सदा तुम्हे पुकारूँगा, हे मेरे स्वामी, मुझे भुला मत देना।" पीछे अपनी निरंतर प्रार्थना का फल पाकर उन्हीं सन्त ने कहा है—"प्रभु ने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर मुझपर दया की और मेरे सहायक हुए।" प्रभु ने उनकी सहायता कैसे की? साधु स्वयं कह गये हैं—"तू ने मेरे दुःख को आनन्द में बदल दिया है, तूने मुझे आनन्द से वेष्टित कर रक्खा है।"

जब जगत् के बड़े-बड़े साधु इस प्रकार के प्रलोभनों और परीक्षाओं में पड़ चुके हैं तब हमारे-जैसे दीन-दुर्बल मनुष्य कभी उत्तप्त और कभी शांत हो जाते हैं, इसमें आश्चर्य क्या है?

प्रभु की महत् दया और विभूति को छोड़ हम और किस पर भरोसा करें?

है उसको उन्होंने तुच्छ समझकर त्याग दिया है। भगवद्भक्ति के लिए उन्होंने प्रियजनों का विछोह भी सहन किया है। उन्होंने ईश्वर-प्रेम के द्वारा मानव-प्रेम को पराजित किया है। और मनुष्य द्वारा मिलनेवाली सान्त्वना की इच्छा करने की अपेक्षा ईश्वर की इच्छा पालन करने को श्रेयस्कर समझा है।

इसलिए भगवद्भक्ति के लिए अपने ऐसे प्रियजनों के प्रेम का भी त्याग कर जो तुझे अपने जीवन के लिए आवश्यक मालूम पड़ते हैं। यदि कोई प्रिय बन्धु तुझे त्याग दे तो दुःखी मत हो। एक दिन तो सब का विछोह होना ही है।

कोई यदि अपने ऊपर विजय प्राप्त करके अपने को पूर्णतः ईश्वरार्पण कना चाहे तो उसे अनेक आन्तरिक युद्धों में प्रवृत्त होना पड़ेगा।

जब मनुष्य अपनी निजी शक्ति का गर्व करके कोई काम करना चाहता है तो वह मानवीय सान्त्वना का आश्रय ग्रहण करने को बाध्य होता है। प्रभु का सच्चा भक्त ऐसी सान्त्वना की इच्छा नहीं करता, न इन्द्रियलब्ध माधुर्य से प्रलुब्ध होता है वरन् धर्म-पथ की कठिन परीक्षाओं एवं कष्टों को धीरतापूर्वक सहन करता है।

यदि भगवान् तुझे आध्यात्मिक शान्ति प्रदान करें तो कृतज्ञतापूर्वक उसे ग्रहण कर। यह मत सोच कि यह तेरे किसी गुण का फल है वरन् सदा ऐसा मान कि यह भगवान् की कृपा का फल है। इसके लिए अभिमान मत कर वरन् और भी अधिक दीनता एवं नम्रता के साथ अपने कार्यों के सम्बन्ध में

सतर्क होजा क्योंकि शीघ्र ही यह समय बीत जायगा और प्रलोभनों का आक्रमण होगा।

यदि सान्त्वना तुझसे कभी छिन जाय तो निराश न हो; नम्रतापूर्वक भगवत्कृपा की प्रतीक्षा कर। भगवान् अवश्य तेरी आशा पूरी करेंगे।

जिन्होंने ईश्वरीय पथ का परिचय पा लिया है उन्हें ऐसी घटनायें आश्चर्यजनक या असाधारण नहीं बोध होतीं क्योंकि अनेक साधुओं के जीवन में वे चरितार्थ हुई हैं। एक सन्त ने कहा है—"अपने सुख की अवस्था में मैंने गर्व करके कहा था कि मैं कभी विचलित नहीं होऊँगा।" पर भगवद्विभूति का अभाव होने पर मुझे विनय करनी पड़ी—'हे प्रभु, तुम अपना मुख छिपा लेते हो तो मैं व्याकुल हो जाता हूँ। अब मैं सदा तुझे पुकारूँगा, हे मेरे स्वामी, मुझे भुला मत देना।" पीछे अपनी निरंतर प्रार्थना का फल पाकर उन्हीं सन्त ने कहा है—"प्रभु ने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर मुझपर दया की और मेरे सहायक हुए।" प्रभु ने उनकी सहायता कैसे की? साधु स्वयं कह गये हैं—"तू ने मेरे दुःख को आनन्द में बदल दिया है, तूने मुझे आनन्द से वेष्टित कर रक्खा है।"

जब जगत् के बड़े-बड़े साधु इस प्रकार के प्रलोभनों और परीक्षाओं में पड़ चुके हैं तब हमारे-जैसे दीन-दुर्बल मनुष्य कभी उत्तप्त और कभी शांत हो जाते हैं, इसमें आश्चर्य क्या है?

प्रभु की महत् दया और विभूति को छोड़ हम और किस पर भरोसा करें?

सज्जनों, धर्मबन्धुओं और विश्वस्त मित्रों का सत्संग हो, धार्मिक ग्रन्थों का सुन्दर संग्रह हो, मधुर भजन सुनने को मिलें पर यदि भगवान् की कृपा न हो तो इनसे बहुत ही थोड़ा लाभ होता है।

ऐसे समय धैर्य रखने और भगवान् की इच्छा का अनुसरण करने के सिवा कल्याण का दूसरा उपाय नहीं है।

मैंने जीवन में ऐसा कोई भक्त नहीं देखा जिसका उत्साह कभी कम न हो और जिसकी शांति एवं सान्त्वना कभी कम न हुई हो। ऐसा कोई महान् साधु या संत नहीं है जो कभी प्रलोभनों एवं परीक्षाओं में न पड़ा हो।

जिसने ईश्वर के लिए कष्ट नहीं भोगा है वह ईश्वर-दर्शन के योग्य नहीं है।

जीवन में यदि कभी प्रलाभन, परीक्षायें और कठिनाइयाँ आवें तो याद रख कि इनकी समाप्ति के बाद तुमपर भगवान् की कृपा अवश्य होगी। जो कष्टों में तपकर खरे निकलते हैं उन्हें ही स्वर्गीय शान्ति मिलती है। प्रभु ने कहा है—"जो पार्थिव विषयों पर विजय प्राप्त कर लेता है उसे ही मैं जीवन-वृक्ष का फल खाने को देता हूँ।" भगवान् का आश्वासन हमें इसीलिए मिलता है कि हम दुःख और कष्ट सहने में अधिक समर्थ हों। उसके बाद प्रलोभन भी आते हैं जिससे मनुष्य को अपनी विभूति पर अहंकार न हो; शैतान कभी सोता नहीं और शारीरिक वासनायें एकदम मर नहीं जातीं अतः युद्ध के लिए अपने को सदा प्रस्तुत रख। तेरे चारों ओर सदा ही शत्रु लगे रहते हैं।

[१०]

भगवत्कृपा के लिए कृतज्ञता

जब तेरा जन्म परिश्रम करने के लिए हुआ है तब तू विश्राम का आकांक्षा क्यों करता है ? सान्त्वना की अपेक्षा धैर्य और सुख की अपेक्षा दुःख सहने के लिए अपने को तैयार कर।

यदि सदा आध्यात्मिक आनन्द और सान्त्वना मिल सकती तो कौन ऐसा है जो उसे न चाहता ? क्योंकि आत्मिक शान्ति सांसारिक और शारीरिक सम्पूर्ण उल्लासों से श्रेष्ठ है।

सम्पूर्ण सांसारिक आमोद असार और एकाङ्गी है; आध्यात्मिक आनन्द ही सुन्दर और निर्मल है; भगवान् की कृपा से पवित्र हृदय में उसका प्रवेश होता है।

किन्तु कोई इस दिव्य आध्यात्मिक आनन्द को अपनी इच्छानुसार जब चाहे तब भोग नहीं सकता। क्योंकि एक न एक प्रलोभन लगे ही रहते हैं।

मन की मिथ्या स्वाधीनता और (मिथ्या) आत्म-निर्भरता ईश्वर-दर्शन के प्रतिकूल हैं।

भगवान् सान्त्वना देकर हमारा मंगल साधन करते हैं परन्तु कृतज्ञता पूर्वक अपना सर्वस्व उनके चरणों में समर्पण न करके हम बड़ी भूल करते हैं। इसीलिए भगवत्कृपा और

विभूति का स्रोत हमारे अन्दर अबाध रूप से प्रवाहित नहीं होने पाता।

जो कृतज्ञता स्वीकार करते हैं उन्हीं को ईश्वरीय प्रसाद मिलता है। अभिमानी उससे वंचित रहते हैं और नम्र व्यक्ति उसके अधिकारी होते हैं।

जिस सान्त्वना से भूलों के प्रति अनुताप नष्ट हो जाय और जिस ध्यान से मन में अहंकार जन्मे उसे मैं नहीं चाहता। क्योंकि सभी उच्च वस्तुयें पवित्र नहीं होतीं, सभी मधुर पदार्थ उत्तम नहीं होते एवं सभी वासनायें शुद्ध नहीं होतीं और हमको प्रिय लगनेवाली सभी वस्तुयें, ईश्वर को स्वीकृत नहीं होतीं।

जिस प्रसाद (Grace) द्वारा हम अधिकाधिक नम्र, पवित्र, और आत्म-विस्मरणशील बनें, उसे ही हम प्रसन्न मन से ग्रहण करेंगे।

जो मनुष्य ईश्वर-द्वारा प्रसाद मिलने से बुद्धिमान और उसके लौटा लिये जाने से ज्ञानी हुआ है वह आत्म-श्लाघा के फंदे में कभी नहीं पड़ता वरन् अपने को दीन-हीन मानने में ही उसे आनन्द मिलता है।

जो भगवान् का है वह भगवान् को दे; जो तेरा है वह तू ले। भगवान् की कृपा के लिए उसे धन्यवाद दे और अपने दोषों के लिए पश्चात्ताप कर।

तू सब से निम्न स्थान पर बैठ, तुझे सर्वोच्च स्थान मिलेगा। याद रख छोटों को छोड़कर बड़े खड़े नहीं रह सकते।

जो ईश्वरीय दृष्टि से सर्वप्रधान साधु हैं वे अपने विचार से अपने

को सर्वापेक्षा क्षुद्र समझते हैं। वे जितने महान होते हैं, उतने ही नम्र होते हैं।

जो सत्य और स्वर्गीय महिमा से पूर्ण हैं, वे असार महिमा की इच्छा नहीं करते।

जो ईश्वर में बद्धमूल और संसक्त हैं वे आत्म-श्लाघा नहीं जानते।

जो ईश्वर को ही एकमात्र मंगलदाता समझते हैं वे मनुष्य की प्रशंसा की इच्छा नहीं करते; वे केवल भगवद्विभूति की इच्छा रखते हैं। वे चाहते हैं कि साधुओं में ईश्वरत्व की प्रतिष्ठा हो और इसके कारण ईश्वर की महिमा का प्रकाश बढ़े।

क्षुद्रतम दान के लिए भी कृतज्ञ हो, इसके कारण तू उससे अधिक बड़ा दान पाने के उपयुक्त होगा। क्षुद्रतम दान भी तेरी दृष्टि में महत्वपूर्ण हो।

यदि तू दाता के गुणों का स्मरण करेगा तो उसका कोई भी दान तुझे क्षुद्र या तुच्छ नहीं बोध होगा। ईश्वर जो देता है वह कभी क्षुद्र नहीं होता।

कष्टों के लिए भी हमें भगवान् का कृतज्ञ होना चाहिए क्योंकि वे जो कुछ करते हैं, हमारे हित के लिए ही करते हैं।

तृतीय खण्ड

आन्तरिक सान्त्वना

प्रभु का मधुर आलाप

हे स्वामी, तुम जो कहोगे, उसे ही मैं सुनूँगा।

जो प्राणी अपने अन्तःकरण में प्रभु की वाणी सुनते हैं और सान्त्वना पाते हैं, वे धन्य हैं।

जो कान आनन्दपूर्वक दिव्य मधुर रव सुनते हैं और इस संसार के नाना प्रकार के शब्दों को अपने तक नहीं पहुँचने देते वे धन्य हैं।

जो आँखें वाह्य विषयों से हटकर चिरन्तन और चिरानन्दमय में लग जाती हैं वे धन्य हैं।

जो जगत् की सम्पूर्ण वाधाओं को लाँघकर ईश्वरीय कार्य के लिए अपनेको आनन्द-पूर्वक निर्लिप्त रखता है वही धन्य है।

हे प्राणी, इन सब बातों की विवेचना कर और शारीरिक वासना का द्वार बन्द कर जिससे भगवान् की जो वाणी तेरे अन्तर में ध्वनित हो, उसे तू सुन सके।

हमारे प्रियतम कहते हैं कि 'मैं ही तुम्हारा त्राता हूँ, मैं ही तेरी शान्ति हूँ, मैं ही तेरा जीवन हूँ। मेरा सानिद्धय लाभ कर, इससे तुझे शान्ति मिलेगी।'

सम्पूर्ण अस्थायी विषयों का त्याग करके जो नित्यस्थायी है, उसका अन्वेषण कर।

सम्पूर्ण पार्थिव जगत् मायामय है। यदि प्रभु तुझे छोड़ दें तो उस अवस्था में संसार के प्राणी तेरा क्या हित कर लेंगे?

इसलिए सांसारिक विषयों से विदा ले और सच्चिदानन्द को प्राप्त करने की चेष्टा कर; इसी मार्ग में तू सच्चे सुख को पा सकेगा।

जगत् अस्थायी एवं तुच्छ वस्तुओं के प्रलोभनों के व्यापार में व्यस्त है; मनुष्य उन्हें ही पाने के लिए पागल हो उठता है; मैं सर्वोच्च एवं चिरस्थायी वस्तुओं का दान कर रहा हूँ फिर भी इस ओर से मनुष्य का मन अचेत है।

जगत् और जगत् में प्रभु-रूप में विख्यात मनुष्यों की सेवा में मनुष्य जितनी तन्मयता दिखाता है उतनी तन्मयता के साथ मेरी आज्ञा का पालन करने वाला कौन दिखाई देता है ?

आश्चर्य है कि थोड़ी आय के लिए मनुष्य दूर देशों की यात्रा करता है किन्तु अनन्त जीवन के लिए एक पग आगे धरने में भी उसे बड़ा कष्ट अनुभव होता है।

एक रुपये के लिए मनुष्य अनेक बार कितने ही लज्जास्पद काम करता है; चाँदी के तुच्छ टुकड़ों के लिए मनुष्य मनुष्य का गला घोंटने के लिए तैयार हो जाता है। असार पदार्थों की प्राप्ति के लिए वह रात-दिन ज़मीन-आसमान के कुलावे मिलाता है।

किन्तु नित्यस्थायी कल्याण के लिए, अमूल्य पुरस्कार के लिए, सर्वोच्च वैभव के लिए तथा अशेष महिमा के लिए वह ज़रा भी कष्ट स्वीकार नहीं करना चाहता।

अतः हे मेरे आलसी और असन्तुष्ट भक्त, तू लज्जित और सावधान हो। विनाश की ओर लोग जितने प्रयत्नशील दिखाई पड़ते हैं, उतना जीवन की ओर नहीं।

तू सत्य में रस और आनन्द का जितना अनुभव करता है, असारता में उससे कहीं अधिक रस लेता है॥

जगत् अस्थायी एवं तुच्छ वस्तुओं के प्रलोभनों के व्यापार में व्यस्त है; मनुष्य उन्हें ही पाने के लिए पागल हो उठता है; मैं सर्वोच्च एवं चिरस्थायी वस्तुओं का दान कर रहा हूँ फिर भी इस ओर से मनुष्य का मन अचेत है।

जगत् और जगत् में प्रभु-रूप में विख्यात मनुष्यों की सेवा में मनुष्य जितनी तन्मयता दिखाता है उतनी तन्मयता के साथ मेरी आज्ञा का पालन करने वाला कौन दिखाई देता है?

आश्चर्य है कि थोड़ी आय के लिए मनुष्य दूर देशों की यात्रा करता है किन्तु अनन्त जीवन के लिए एक पग आगे धरने में भी उसे बड़ा कष्ट अनुभव होता है।

एक रुपये के लिए मनुष्य अनेक बार कितने ही लज्जास्पद काम करता है; चाँदी के तुच्छ टुकड़ों के लिए मनुष्य मनुष्य का गला घोंटने के लिए तैयार हो जाता है। असार पदार्थों की प्राप्ति के लिए वह रात-दिन जमीन-आसमान के कुलावे मिलाता है।

किन्तु नित्यस्थायी कल्याण के लिए, अमूल्य पुरस्कार के लिए, सर्वोच्च वैभव के लिए तथा अशेष महिमा के लिए वह जरा भी कष्ट स्वीकार नहीं करना चाहता।

अतः हे मेरे आलसी और असन्तुष्ट भक्त, तू लज्जित और सावधान हो। विनाश की ओर लोग जितने प्रयत्नशील दिखाई पड़ते हैं, उतना जीवन की ओर नहीं।

तू सत्य में रस और आनन्द का जितना अनुभव करता है, असारता में उससे कहीं अधिक रस लेता है॥

[२]

श्रद्धापूर्वक भगवद्वाणी का ग्रहण

वत्स, मेरी बात सुन। मेरे वाक्य इस जगत् के दार्शनिकों एवं ज्ञानी लोगों के सम्पूर्ण ज्ञान से अतीत एवं अति मधुर हैं। मेरा वचन आत्मिक और जीवन-रूप है और मानवी बुद्धि उसका पार नहीं पा सकती।

इन्हें कोरे आमोद के लिए मत सुन; ये नीरव होकर श्रद्धा और नम्रतापूर्वक सुनने के लिए हैं।

मैं बोला—"हे प्रभु, जिसे तुम अपने नियम से शिक्षा और उपदेश देते हो, वह धन्य है। दुष्काल में उसी को शान्ति मिलेगी और इस संसार में कभी वह अपने को परित्यक्त और अनाथ नहीं अनुभव करेगा।"

प्रभु बोले–"अनादि काल से मैं महापुरुषों एवं पैग़म्बरों को सन्देश एवं उपदेश देता आ रहा हूँ। आजतक सब के लिए मेरी वाणी उन्मुक्त होकर प्रवाहित होती रही है किन्तु दुनिया में कितने ही ऐसे हैं जिन्होंने दिल का दरवाजा बन्द रक्खा है और कान से बहरे बने हुए हैं। अधिकांश भगवद्वाणी की अपेक्षा संसार की बातों में ज्यादा रस लेते हैं और मेरी इच्छा के लिए आत्मार्पण करने की अपेक्षा अपनी शारीरिक अभिलाषा की पूर्ति में अधिक पागल दिखाई पड़ते हैं।

जगत् अस्थायी एवं तुच्छ वस्तुओं के प्रलोभनों के व्यापार में व्यस्त है; मनुष्य उन्हें ही पाने के लिए पागल हो उठता है; मैं सर्वोच्च एवं चिरस्थायी वस्तुओं का दान कर रहा हूँ फिर भी इस ओर से मनुष्य का मन अचेत है।

जगत् और जगत् में प्रभु-रूप में विख्यात मनुष्यों की सेवा में मनुष्य जितनी तन्मयता दिखाता है उतनी तन्मयता के साथ मेरी आज्ञा का पालन करने वाला कौन दिखाई देता है ?

आश्चर्य है कि थोड़ी आय के लिए मनुष्य दूर देशों की यात्रा करता है किन्तु अनन्त जीवन के लिए एक पग आगे धरने में भी उसे बड़ा कष्ट अनुभव होता है।

एक रुपये के लिए मनुष्य अनेक बार कितने ही लज्जास्पद काम करता है; चाँदी के तुच्छ टुकड़ों के लिए मनुष्य मनुष्य का गला घोंटने के लिए तैयार हो जाता है। असार पदार्थों की प्राप्ति के लिए वह रात-दिन जमीन-आसमान के कुलावे मिलाता है।

किन्तु नित्यस्थायी कल्याण के लिए, अमूल्य पुरस्कार के लिए, सर्वोच्च वैभव के लिए तथा अशेष महिमा के लिए वह जरा भी कष्ट स्वीकार नहीं करना चाहता।

अतः हे मेरे आलसी और असन्तुष्ट भक्त, तू लज्जित और सावधान हो। विनाश की ओर लोग जितने प्रयत्नशील दिखाई पड़ते हैं, उतना जीवन की ओर नहीं।

तू सत्य में रस और आनन्द का जितना अनुभव करता है, असारता में उससे कहीं अधिक रस लेता है।

कभी-कभी आशा मनुष्य को धोका देती है किन्तु मेरी प्रतिज्ञा किसी को धोका नहीं देती। जो मुझे आत्मार्पण करता और मुझ पर पूर्णतः निर्भर करता है उसे कभी खाली हाथ नहीं लौटना पड़ता।

यदि कोई अन्त तक मेरे प्रेम में स्थिर रहे तो मैं जो कुछ उसे कह चुका हूँ वह अवश्य दूँगा।

मैं साधुजनों का त्राता और भक्तों का रक्षक हूँ। मेरे शब्दों को अपने अन्तःकरण पर लिख ले और सदा उनका ध्यान रख। कष्ट के समय वे तेरे लिए प्रयोजनीय सिद्ध होंगे। जिस बात को तू आज नहीं समझ पाता वे मेरी प्रत्यक्ष अनुभूति होने पर अपने आप तेरी समझ में आ जायँगी।

मैं अपने चुने हुए बच्चों के द्वारा दो स्वतन्त्र मार्गों से चराचर से साक्षात् करता हूँ। एक परीक्षा (प्रलोभन) और दूसरा सान्त्वना।

मैं सदा उन्हें दो बातों की शिक्षा देता हूँ। अपने पापों के लिए अनुताप करो और नित्यस्थायी वैभव को प्राप्त करने में प्रयत्नशील हो।

[३]

भक्ति की वृद्धि के लिए प्रार्थना

हे मेरे प्रभु, मेरे लिए तुम सम्पूर्ण उत्तमता की खान हो। और तुम्हारे साथ बोलने का साहस करने वाला मैं? मैं तेरा सबसे क्षुद्र और अकिंचन दास हूँ। मेरी क्षुद्रता का क्या ठिकाना?

मैं कुछ नहीं हूँ, मेरा अपना कुछ नहीं है और कुछ करने की भी मुझ में शक्ति नहीं है किन्तु हे प्रभु, तुम्हें मेरी याद नहीं भूलती।

इन सब असार वस्तुओं के बीच केवल तुम्हीं उत्तम, महान और पवित्र हो; तुम सभी कुछ करने में समर्थ हो, तुम सभी कुछ देते हो, तुम सभी में परिपूर्ण हो रहे हो किन्तु जो पापी है वह तेरे प्रसाद से अपने को वंचित कर लेता है।

हे स्वामी, मुझ पर कृपा कर और अपनी विभूतियों से मेरा अन्तःकरण भर दे।

यदि तू अपनी कृपा और प्रसाद से मुझे सबल नहीं बनायेगा तो यह दुःखपूर्ण जीवन मैं किस प्रकार बिताऊँगा?

हे स्वामी, तू अपना मुँह मुझसे मत छिपा; दर्शन के बिना प्राण व्याकुल हैं, दर्शन देने में अब विलम्ब मत कर! अपनी सान्त्वना से मुझे वंचित मत कर अन्यथा मेरी

कभी-कभी आशा मनुष्य को धोका देती है किन्तु मेरी प्रतिज्ञा किसी को धोका नहीं देती। जो मुझे आत्मार्पण करता और मुझ पर पूर्णतः निर्भर करता है उसे कभी खाली हाथ नहीं लौटना पड़ता।

यदि कोई अन्त तक मेरे प्रेम में स्थिर रहे तो मैं जो कुछ उसे कह चुका हूँ वह अवश्य दूँगा।

मैं साधुजनों का त्राता और भक्तों का रक्षक हूँ। मेरे शब्दों को अपने अन्तःकरण पर लिख ले और सदा उनका ध्यान रख। कष्ट के समय वे तेरे लिए प्रयोजनीय सिद्ध होंगे। जिस बात को तू आज नहीं समझ पाता वे मेरी प्रत्यक्ष अनुभूति होने पर अपने आप तेरी समझ में आ जायँगी।

मैं अपने चुने हुए बच्चों के द्वारा दो स्वतन्त्र मार्गों से चराचर से साक्षात् करता हूँ। एक परीक्षा (प्रलोभन) और दूसरा सान्त्वना।

मैं सदा उन्हें दो बातों की शिक्षा देता हूँ। अपने पापों के लिए अनुताप करो और नित्यस्थायी वैभव को प्राप्त करने में प्रयत्नशील हो।

[३]

भक्ति की वृद्धि के लिए प्रार्थना

हे मेरे प्रभु, मेरे लिए तुम सम्पूर्ण उत्तमता की खान हो । और तुम्हारे साथ बोलने का साहस करने वाला मैं ? मैं तेरा सबसे क्षुद्र और अकिंचन दास हूँ । मेरी क्षुद्रता का क्या ठिकाना?

मैं कुछ नहीं हूँ, मेरा अपना कुछ नहीं है और कुछ करने की भी मुझ में शक्ति नहीं है किन्तु हे प्रभु, तुम्हें मेरी याद नहीं भूलती ।

इन सब असार वस्तुओं के बीच केवल तुम्हीं उत्तम, सत् और पवित्र हो; तुम सभी कुछ करने में समर्थ हो, तुम सभी कुछ देते हो,तुम सभी में परिपूर्ण हो रहे हो किन्तु जो पापी है वह तेरे अमृत से अपने को वंचित कर लेता है ।

हे स्वामी, मुझ पर कृपा कर और अपनी विभूतियों से मेरा अन्तःकरण भर दे ।

यदि तू अपनी कृपा और प्रसाद से मुझे सबल नहीं बनायेगा तो यह दुःखार्त्त जीवन मैं किस प्रकार बिताऊँगा ?

हे स्वामी, तू अपना मुँह मुझसे मत छिपा; दर्शन के बिना आँखें व्याकुल हैं, दर्शन देने में अब विलम्ब मत कर ! अपनी सान्त्वना से मुझे वंचित मत कर अन्यथा मेरी

आत्मा जलशून्य प्यासी मरुभूमि की तरह तड़पती रहेगी।

हे प्रभु, मैं तेरी इच्छा का अनुसरण कर सकूँ, ऐसी शक्ति दे।

तेरी दृष्टि में जो उपयुक्त और नम्र जीवन है, मैं अपना वैसा जीवन बना सकूँ, ऐसी बुद्धि दे। तू ही मेरा ज्ञान है, तू ही मुझ को सब से अधिक जानता है, जगत् में मेरा जन्म होने के पहले एवं जगत की सृष्टि होने के पूर्व भी तू मुझे जानता रहा है।

हे जीवन-स्वामी, तेरे चरणों में मैं आत्म-समर्पण करता हूँ।

[४]

ईश्वर-साक्षात् में सत्य और नम्रता का आचरण

हे वत्स, मेरे सामने सत्य में विचरण कर, और अपने हृदय की सरलता में नित्य मेरा अन्वेषण कर।

जो कोई मेरे सामने सत्य में विचरण करता है वह दुःखद वासनाओं के आक्रमण से रक्षित रहता है और सत्य स्वयं प्रवञ्चकों से तथा निन्दकों के असार शब्दों से उसकी रक्षा करता है।

सत्य यदि तुझे स्वाधीन करेगा, तब तू सचमुच ही स्वतंत्र होगा और मनुष्य के असार वाक्यों पर ध्यान न देगा।

प्रभु, मुझे अनुभव होता है कि तू बोल रहा है। तू जो कुछ कहता है वह सब मैं ग्रहण करने योग्य बनूँ। तेरा सत्य मुझे ऊँचा उठाये, मेरी रक्षा करे और मेरे परिणाम को स्वस्थ एवं मधुर बनाये।

हे स्वामी, तेरा सत्य मुझे सम्पूर्ण मन्द अभिलाषाओं एवं अविहित प्रेम से मुझे मुक्त करे। ऐसा होने पर मैं मुक्त अन्तःकरण से तेरे साथ विचरण करूँगा।

सत्य कहता है कि मेरी दृष्टि से जो न्याय्य और कल्याणकारी है उसकी ही शिक्षा मैं तुझे दूँगा।

अपने पापों के लिए दुःखपूर्वक अनुताप कर। यह अहंकार कभी न कर कि अच्छे कामों का कर्त्ता मैं हूँ। यह समझ कि मैं एक महापापी हूँ। तू अनेक शत्रुओं के वश में है, उनके बोझ से दबा हुआ है और आत्म-तत्त्व को भूलकर असार वस्तुओं की ओर जा रहा है। इसी से तू शीघ्र गिर जाता है, शीघ्र पराजित हो जाता है, शीघ्र व्याकुल हो जाता है और शीघ्र ही द्रवीभूत होकर विलीन हो जाता है।

तेरे पास कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिस पर तू अभिमान कर सके। हाँ ऐसी बातें बहुत हैं जिनके कारण तुझे अपने से ही घृणा होनी चाहिए। हे प्राणी, तू अत्यन्त दुर्बल है। इसलिए तू जो कर उसके लिए मन में न फूल, वह तेरे लिए कोई श्लाघा की बात नहीं है।

जो चिरस्थायी—सदा रहने वाला—है उसके अतिरिक्त और कुछ तेरे लिए महत्वपूर्ण न हो, कुछ भी बहुमूल्य और आश्चर्य-जनक न हो, कुछ भी गिनती के लायक़ न हो कुछ भी उच्च न हो, कुछ भी प्रशंसनीय और अभिलषित न हो।

नित्यस्थायी सत्य ही तेरे लिए सब से अधिक सन्तोषजनक है। अपनी अयोग्यता से तुझे सदा असन्तोष रहना चाहिए।

तेरे अन्दर भी दूसरों की भाँति दोष, पाप और कमज़ोरियाँ हैं—बल्कि दूसरों से ज्यादा हैं। दूसरों के प्रति तुझे जो असन्तोष है, उसकी अपेक्षा अपनी कमज़ोरियों से तुझे ज्यादा असंतोष होना चाहिए।

किसी वस्तु से, निन्दा से भी, न डर, पर पाप से डर। संसार के

द्वारा तेरी उतनी हानि कभी न होगी, जितनी स्वयं तेरे पापों के द्वारा होगी।

बहुत से लोग मेरे समक्ष सरल श्रद्धालु हृदय लेकर नहीं आते; वे नाना प्रकार की उत्कण्ठा और अज्ञान को लेकर आते हैं; वे मेरा रहस्य जानने तथा ब्रह्म-तत्त्व की छानबीन करने के लिए आते हैं। इन शुष्क तार्किक उत्कण्ठाओं के बीच वे स्वयं अपने (कल्याण) को भूल जाते हैं और अपनी आत्मा का स्वास्थ्य खो बैठते हैं।

अहंकार और उत्कण्ठा के चक्र में पड़कर वे प्रायः अनेक प्रलोभनों में पतित होते हैं।

तू सर्वशक्तिमान भगवान् के न्याय से भय कर।

सर्वात्मा के कार्यों की समीक्षा और उन पर तर्क-वितर्क करने में समय न खो; अपनी बुराइयों, ग़लतियों और पापों का अनुसन्धान कर। देख, तूने कितनी बातों में अनधिकार-चेष्टा और दोष किये हैं और अपनी असावधानी से कितने सत्कार्यों की अवहेलना की है।

किसी की भक्ति दर्शन तक सीमित है, कुछ की चित्रों, मूर्तियों में समाधान पा जाती है। कोई-कोई मुझे मुख में रखता है किन्तु अन्तःकरण में स्थान देने के लिए वह भी प्रायः तैयार नहीं होता।

कोई-कोई ज्ञान से अलोकित एवं प्रेम से परिष्कृत होकर नित्य-स्थायी विषयों की आकांक्षा करते हैं। वे सांसारिक विषयों में रस नहीं लेते। सत्य की भावना उनके अन्तर में जो-कुछ बोलती है उसे वे समझने में समर्थ होते हैं।

[५]

भगवद्भक्ति का आश्चर्यजनक फल

हे परमपिता, मैं तेरा धन्यवाद करता हूँ। मेरे-समान नितान्त दरिद्र जीव को भी तूने अपनी कृपा-कोर से बाँध लिया है।

हे करुणा के सरोवर, हे सम्पूर्ण सान्त्वना के आधार, तेरी जय हो। तेरी कृपा और सान्त्वना के योग्य न होने पर भी तूने समय पड़ने पर मेरी सुधि ली है।

हे मेरे सर्वस्व, हे मेरे प्रियतम, जब तू मेरे अन्तर में प्रकट होगा तो मेरा सम्पूर्ण अन्तःकरण आनन्द से उत्फुल्ल हो उठेगा। तू ही मेरा गौरव है, तू ही मेरे हृदय का परम आनन्द है। तू ही मेरी आशा है और तू ही विपदा में मेरा आश्रय है। अन्यथा मैं तो प्रेम में कच्चा और धर्म में अपूर्ण हूँ और इसीलिए मुझे तेरी सहायता और शान्ति की अतीव आवश्यकता है।

हे स्वामी, तू मुझे सदा दर्शन दे और पवित्र यम-नियम द्वारा मेरे चञ्चल मन को शासित कर। बुरी वासनाओं से मुझे मुक्त कर, सब प्रकार के अनुचित मोह से मेरे हृदय को सुस्थ कर जिससे मैं हृदय से नीरोग एवं पाप से पूर्णरूपेण परिष्कृत होकर प्रेम में उन्नत, दुःख भोगने में साहसी और तेरे मार्ग पर आगे बढ़ने में स्थिरचित्त हो सकूँ।

प्रेम एक महान् और मंगलजनक वस्तु है; केवल प्रेम ही वह पदार्थ है जो प्रत्येक भारी चीज को हलका कर देता है और जो असह्य है उसे सहने की शक्ति अनायास हमारे अन्दर पैदा करता है । प्रेम जो बोझ उठाता है, वह बोझ ही नहीं मालूम पड़ता, वह प्रत्येक कड़वी वस्तु को मधुर और सुस्वादु बना देता है ।

प्रेम सदा बहुत ऊँचाई पर रहना चाहता है और किसी नीच एवं तुच्छ वस्तु में बँधकर रहना नहीं चाहता । जिससे प्रेम के अन्तर--दर्शन में बाधा न पड़े और प्रेमी किसी पार्थिव उन्नति से गर्वित या किसी दुःख से पराजित न हो जाय इसलिए प्रेम स्वाधीन एवं जगत् के सम्पूर्ण बंधनों से पृथक् रहना चाहता है ।

प्रेम से अधिक मधुर, शक्तिमान, ऊँची, प्रशस्त, मनोहर, उत्कृष्ट और पूर्ण कोई वस्तु स्वर्ग और पृथ्वी में नहीं है । प्रेम ईश्वर से उत्पन्न है और समस्त सृष्ट वस्तुओं से ऊँचा उठकर ईश्वर में ही स्थिर होता है ।

जिनके हृदय में प्रेम वास करता है वे ईश्वरीय बल से उड़ते हैं, दौड़ते हैंऔर उल्लसित होते हैं । वे अनुरागपूर्ण और स्वाधीन हैं । प्रेम अपना सर्वस्व सबको दे देता है और उसे सभी वस्तुओं में सम्पूर्ण की प्राप्ति हो जाती है क्योंकि सब वस्तुओं से ऊपर सर्वमंगलकर में उसका आश्रय है और उसी से सब प्रकार की भलाइयों का उदय होता है । प्रेम का कोई परिमाण नहीं; वह सब परिमाणों से परे है ।

प्रेम किसी भार को भार नहीं समझता । किसी कष्ट को कष्ट

नहीं समझता। जो कुछ वह प्राप्त कर सकता है उससे अधिक पाना चाहता है। अपने लिए किसी वस्तु को वह असंभव और असाध्य नहीं समझता। वह अपने को सब पदार्थों से अधिक शक्तिमान अनुभव करता है और सभी बातों को अपने लिए उचित और प्राप्य मानता है। इसलिए प्रेम सभी विषयों में बलवान है। प्रेमशून्य व्यक्ति जिस कार्य में निराश हो जाता है, प्रेमी उसे पूरा करने में तल्लीन दिखाई देता है।

प्रेम जाग्रत रहता है; अपने निद्राकाल में भी वह सोता नहीं। श्रान्त होने पर भी प्रेम कभी क्लान्त नहीं होता; चोटीला होकर भी घायल नहीं होता; भयग्रस्त होने पर भी हतबुद्धि नहीं होता। प्रेम जलती हुई दीप-शिखा या मशाल की तरह मस्तक के ऊपर उठकर, सतेज, सम्पूर्ण बाधाओं के बीच निर्विघ्न गमन करता है।

जो प्रेम करता है वही (आत्मा की) इस आवाज़ को पहचान सकता है! आत्मा का ज्वलन्त और आकुल प्रेम कहता है—"हे मेरे ईश्वर, हे मेरे प्रियतम, तू केवल मेरा है और मैं तेरा हूँ।" जब प्रेमी ऐसा अनुभव करता है तभी वह प्रेम का तात्पर्य समझता है और तभी उसके शब्द प्रियतम के कानों तक पहुँचते हैं।

प्रेम में ही मुझे विस्तार पाने दो जिससे मैं अपने हृदय के मुख से स्वाद लेकर अनुभव कर सकूँ कि प्रेम करना कितना मधुर है। ऐसी शक्ति दे कि मैं प्रेम में द्रवीभूत हो सकूँ और अपने को तेरे प्रेम में निमग्न कर देने में समर्थ हो सकूँ।

मुझे प्रेम में विलीन होने दे और श्रद्धा-पूर्वक मुझको मुझ से ऊपर उठा।

मुझे एक प्रेम-गान गाने दे। हे मेरे प्रियतम, उच्च, अति उच्च उठाकर, मुझे अपना अनुगमन करना सिखा। अपने गुण-गान में मेरी आत्मा को आनन्द एवं प्रेम से उल्लसित होने दे।

मैं अपने से तुझे अधिक प्रेम करूँ और अपने को भी तेरे ही लिए प्रेम करूँ। जो तेरे प्रेम में रमे हुए हैं उन्हें भी मैं प्रेम करना सीखूँ।

प्रेम तीव्र, विशुद्ध, पवित्र, कोमल, आनन्दमय, शक्तिमान, मधुर, विश्वस्त, ज्ञानमय, स्थायी, साहसी और स्वार्थहीन होता है। जब किसी में स्वार्थपरता आ जाती है तो वह प्रेम से स्खलित हो जाता है।

प्रेम पूर्णद्रष्टा, नम्र और सत् है, कमजोर और हलका नहीं। वह लघु भावों एवं सुखेच्छाओं से पराजित नहीं होता। प्रेम विनीत, विशुद्ध, स्थिर, अविवादी तथा ऊँचा उठानेवाला होता है।

प्रेमी श्रेष्ठतर लोगों के निकट वशीभूत एवं आज्ञाकारी, अपने निकट तुच्छ, ईश्वर के निकट भक्त एवं कृतज्ञ रहता है। जब ईश्वर उसे मधुरता के दान से वंचित रखता है तब भी वह उसके प्रति सर्वदा निर्भय रहता है और आशा नहीं छोड़ता क्योंकि विना आपदा उठाये कोई प्रेम को जीवन में धारण नहीं कर सकता।

जो कोई सब बातें सहन करने एवं प्रियतम की इच्छा के अनु-

सार पूर्णतः चलने (पूरी तरह आत्म-समर्पण करने) को तैयार नहीं है, वह प्रेमी नाम से पुकारे जाने के योग्य नहीं है। प्रेमी होने के लिए प्रियतम की ख़ातिर, सब प्रकार की कठिनाइयों, आपदाओं और कष्टों का सहना आवश्यक है और किसी दुःखजनक घटना के हो जाने से उससे विमुख होना अनुचित है।

[६]

सच्चे प्रेमी के लक्षण

वत्स, तू अभी तक साहसी और विवेकवान। प्रेमी नहीं हो पाया है।

प्रभु आप ऐसा क्यों कहते हैं ?

इसलिए कि ज़रा-सी बाधाओं से ही तू अपने आरम्भ किये काम को छोड़ देता है और व्यग्रतापूर्वक इधर-उधर सान्त्वना खोजता फिरता है। साहसी प्रेमी परीक्षाओं एवं प्रलोभनों के बीच दृढ़तापूर्वक खड़ा होता है। जैसे सुख के दिनों में मैं उसे सन्तुष्ट रखता हूँ वैसे ही दुःख के दिनों में भी मैं उसके लिए असन्तोषजनक नहीं हो उठता।

विवेकवान प्रेमी दाता के प्रेम को उसके दान की अपेक्षा ज्यादा क़ीमती समझता है। दान के मूल्य से वह उसके पीछे छिपी मंगल इच्छा को अधिक अच्छा जानकर चलता है और जिसे वह प्रेम करता है, सब प्रकार के दान एवं विभूतियों को उससे तुच्छ समझता है।

वह उत्तम मधुर प्रीति, जिसका अनुभव तूने इस जीवन में कभी-कभी किया है, मेरी ही विभूति का परिणाम है और उस स्वर्गीय आवास एवं आनन्द का आभास है।

मन की सम्पूर्ण कुवासनाओं और शैतान की मंत्रणाओं का अवज्ञापूर्वक दमन करना ही धर्म का प्रकृत लक्षण है। इसलिए मन में कोई दुष्ट अभिलाषा उपस्थित होने पर, उसके कारण, व्याकुल नहीं होना चाहिए। ऐसे समय भगवान् में बुद्धि को स्थिर रखकर साहसपूर्वक अपने संकल्प की रक्षा कर।

यह भी मिथ्या नहीं है कि कभी-कभी तू हठात् क्षणिक भक्ति के आवेश से अभिभूत हो उठता है किन्तु दूसरे ही क्षण फिर आन्तरिक असारताओं में तू इच्छापूर्वक प्रवृत्त नहीं होता; प्रायः इच्छा के विरुद्ध ही तुझसे वैसे काम हो जाते हैं किन्तु जब तक तू अपनी ग़लतियों को समझ कर उनके लिए अनुताप करता रहेगा और उनके निराकरण में प्रयत्नशील रहेगा तबतक इसका तेरे लिए अच्छा ही फल होगा।

इसे गाँठ बाँध ले कि तेरा अन्तःशत्रु तेरी सब प्रकार की मंगल-इच्छाओं में बाधा देने और धर्माभ्यास से तुझे च्युत करने की चेष्टा करेगा। वह तेरे मन में नाना प्रकार की दुश्चिन्तायें पैदा करके समय-समय पर तुझे भय-भीत करेगा और प्रार्थना एवं उपासना से तुझे विरत करेगा।

कभी उसका विश्वास न करना और तुझे बन्धन में डालने के लिए प्रलोभनों के जो जाल वह बिछायेगा उससे बचे रहना। जब वह अपवित्र चिन्ताओं एवं प्रलोभनों में डालने की चेष्टा करे तो आत्मविश्वासपूर्वक उसे ललकार कर कह—

"ऐ अपवित्र भाव, दूर हो! ऐ दुर्दान्त, लज्जित हो। तू सब से अपवित्र है, इसीलिए तो मेरे कानों में ऐसी बातें

ला-लाकर डालता है। ऐ दुष्ट प्रवञ्चक, मेरे सामने से दूर हो; यहाँ तेरी दाल न गलेगी। तेरे जाल में फँसने की अपेक्षा तो यन्त्रणा-भोग और मृत्यु मेरे लिए श्रेयस्कर है। ऐ शैतान, बस मत बोल, चुप हो। चाहे मुझे कितना ही दुःख भोगना पड़े पर अब मैं तेरी बात नहीं सुनूँगा। भगवान् मेरे आलोक और आश्रय हैं। फिर मैं किसी से डरूँगा क्यों? यदि संसार की सारी शक्तियाँ मेरे विरुद्ध खड़ी हों तो भी मैं भयभीत होनेवाला नहीं क्योंकि मेरे त्राता और आश्रय भगवान् हैं।"

हे वत्स, वीर सैनिक की तरह दुर्बलताओं से युद्ध कर, इससे यदि कभी तू पतित भी हो जायगा तो मेरी कृपा से पहले से अधिक आशा और उत्साह लेकर ऊपर उठेगा। हाँ, अपने अहंभाव से सदा सावधान रह। भ्रमवश मनुष्य अहंकार के कारण पतित होता है और फिर उसके उन्माद में अंधा ही हो जाता है। अहंकारी प्रायः आत्म-श्लाघा के नशे में गोता खाते हैं। इसलिए तू स्थायी नम्रता और चेतना को हृदय में स्थान दे।

[७]

नम्र वाणी

हे प्रभु ! अति तुच्छ होकर भी, मैं तुझसे बोलने का साहस कर रहा हूँ ।

यदि मैं अहंकार-वश अपने को बड़ा समझने लगूँ तो मेरी दुर्बलतायें तुझे धोका न दे सकेंगी और तू उनकी साक्षी होगा ।

पर यदि मैं आत्म-शासन द्वारा सब प्रकार की यश-लिप्सा से अपने को हटा लूँ और अपने को एक रजकण बना लूँ तो निश्चय ही मुझपर तेरी कृपा होगी, मेरे हृदय में तेरा प्रकाश उदय होगा और सब प्रकार का अहंकार सदा के लिए शून्य के गर्भ में विलीन हो जायगा ।

ऐसा होने पर ही तू यह ज्ञान देता है कि मैं क्या हूँ, क्या था, और कहाँ से आया ? तेरी कृपा के बिना मैं तो बड़ा ही दुर्बल हूँ । जब तू सहारा देता है तो मुझमें शक्ति आ जाती है और मैं एक नवीन आनन्द से भर जाता हूँ । आश्चर्य-चकित हो मैं देखता हूँ कि मैं कितनी शीघ्रता से इतने ऊँचे आ गया और तेरे सानिद्धय का अनुभव कर सका ।

तेरा प्रेम आवश्यकताओं और खतरों के बीच मेरे लिए अन्धे की लाठी है । वह अनेक बुराइयों से मेरी रक्षा करता है ।

अनुचित राग में पड़कर मैंने तुझे और अपने—दोनों—को खो दिया और तेरी खोज करने एवं केवल मुझे प्रेम करने में फिर अपने को और तुझे पाया।

हे मेरे प्रभु! तेरी जय हो। मैं दीन तेरी कृपा के कितना अयोग्य हूँ किन्तु फिर भी तू अपनी असीम दया और करुणा से मुझे सींचता है।

हे प्रभु! सदा के लिए मेरे अहंकार का नाश कर मुझे नम्र बना और चरणों में मुझे स्थान दे। तू ही मेरी सहाय, मेरा सत् और मेरी शान्ति है।

[८]

सबका अन्तिम कारण और आश्रय

हे वत्स, यदि तू आनन्द-मय होना चाहता है तो मुझे अपना लक्ष्य और आश्रय बना। तेरे इस विश्वास और दृढ़ता से ही तेरा स्नेह पवित्र और परिष्कृत होगा।

मेरा आदेश है कि तू सब विषयों में मुझे आत्मार्पण कर। जिसने तुझे सब कुछ दिया है, मैं वही हूँ।

इसे समझ कि जो सर्वस्थ और सर्वोपरि है उसी मंगलमय से सम्पूर्ण विषय तेरे पास आते हैं, इसीलिए सब विषयों का आदि कारण मानकर मुझे आत्मार्पण करना तेरा कर्त्तव्य है। मेरे ही अन्दर समाकर क्षुद्र और महान्, दरिद्र और धनवान सब जीवन-कूप से जल ग्रहण करते हैं और जो स्वस्थ मन से स्वेच्छापूर्वक हमारी सेवा करते हैं वे सदा मेरी कृपा का अनुभव करते हैं। किन्तु जो मुझे त्याग कर अन्य किसी विषय की श्लाघा करते हैं किंवा अपने मंगल का कर्त्ता अपने को मानकर गर्व से फूलते हैं, वे कभी सच्चे आनन्द को नहीं पाते, न हृदय की विशालता लाभ करते हैं वरन् अनेक विषयों में भारग्रस्त और संकुचित हो जाते हैं।

इसलिए 'मेरे द्वारा कुछ मंगल साधित हुआ है या अन्य किसी मनुष्य में उत्तमता है', ऐसा कहना तेरे लिए उचित नहीं है। यही कहना ठीक है कि सब कुछ मुझ (ईश्वर) से ही हुआ है क्योंकि मेरे अतिरिक्त मनुष्य में सत् और है ही क्या ?

जो ईश्वरीय सत्य है, उसी के द्वारा असार श्लाघा दूर होती है। यदि स्वर्गीय प्रसाद एवं सत्य-प्रेम तेरे हृदय में प्रवेश करेगा तो तुझमें ईर्ष्या या अन्तःकरण की संकीर्णता न रह जायगी।

स्वर्गीय प्रेम सहज ही सब विषयों को पराजित करता है और आत्मिक क्षमता और सम्पूर्णता की वृद्धि करता है।

वत्स, यदि तू विज्ञ है तो तू केवल मुझमें ही रम जायगा और केवल मुझमें ही आशा रक्खेगा। मेरे अतिरिक्त और कुछ सत् नहीं है।

[९]

भगवत्सेवा

हे प्रभु, मैं पुनः श्रीचरणों में कुछ निवेदन करूँगा। तुम मेरे ईश्वर हो, मेरे राजा हो, तुम सर्वोच्च हो। मैं तुम्हीं से बात करूँगा।

हे प्रभु, जो तुझ से प्रेम करते हैं, उनके लिए तेरे माधुर्य का विस्तार कितना अधिक है? फिर अपने प्रेमियों के प्रति तेरे प्रेम का क्या पूछना? तेरा ध्यान करने से जो सुख होता है वह अनिर्वचनीय है। इस सुख को तेरे प्रेमी ही जान सकते हैं।

जब मेरी कोई सत्ता नहीं थी, तू ने मेरा निर्माण किया। जब मैं प्रमाद-वश भटककर तुझ से दूर हट गया तो तू ने फिर कृपा कर के मुझे अपने पास लौटा लिया कि मैं तेरी सेवा कर सकूँ और तेरे मधुर प्रेम का सुख लूटूँ।

हे अनन्त प्रेम के स्रोत! तेरे विषय में मैं क्या कह सकता हूँ! नितान्त मलिन होकर जब मैं विनाश के पथ पर दौड़ता हूँ तो भी तू कृपापूर्वक मुझे स्मरण करता है। हे स्वामी, मैं तेरे इस असीम प्रेम को कैसे भूल सकता हूँ? तू ने अपने दास के प्रति आशातीत दया और अनुपम अनुग्रह एवं प्रेम दिखाया है।

तेरे इस महान् अनुग्रह के बदले में मैं तुझे क्या दे सकता हूँ ?
सर्वस्व समर्पण करके, जगत् को त्याग कर, संन्यासी-जीवन बिताने की क्षमता तो सब में होती नहीं।
सम्पूर्ण सृष्टि ही तेरी सेवा करने को बाध्य है, फिर तेरी सेवा करना क्या मेरे लिए कोई बड़ा काम होगा ?
मेरे लिए तो तेरी सेवा करना कोई बड़ाई की बात नहीं है किन्तु तू ने जो मुझ-जैसे दरिद्र और अयोग्य एक जन को अपनी सेवा में ग्रहण किया और मुझे अपने प्रिय भक्तों की श्रेणी में रखने की इच्छा की, यही आश्चर्य का विषय है।
हे स्वामी, मेरा अपना जो-कुछ है और जिसके द्वारा मैं तेरी सेवा करता हूँ वह सब तो तेरा ही है। मैं तेरी जितनी सेवा करता हूँ, उससे अधिक तो तू ही मेरी परिचर्या करता है। तू ने अनुग्रह करके स्वयं मनुष्य की सेवा एवं उसके परित्राण के लिए अपने को उत्सर्ग कर दिया है।
इन सब उपकारों के लिए मैं तुझे क्या दे सकता हूँ ? यह सारा जीवन मैं तेरी सेवा में लगा दूँ, यही मेरी अभिलाषा है। अहा, यदि एक दिन भी मैं भलीभाँति तेरी सेवा कर सकता तो अपने को धन्य मानता।
तू मेरा स्वामी है, मैं तेरा दीन-हीन अनुचर हूँ। सम्पूर्ण शक्ति से तेरी सेवा करना मेरा कर्त्तव्य है। उसमें त्रुटि करना मेरे लिए उचित नहीं।
मैं तेरे गुण-गान और भजन में रम जाना चाहता हूँ। यही मेरी आकांक्षा है। मुझ में जो अभाव है, उसे तू कृपा करके दूर कर दे।

तेरी सेवा करना एवं तेरे सामने सम्पूर्ण वस्तुओं को तुच्छ मानना मेरे लिए गौरव का विषय हो।

जो स्वेच्छापूर्वक तेरे प्रेम एवं भक्ति में आत्मार्पण करते हैं, वे ही तेरी महान् कृपा के भागी होते हैं।

जो तेरे प्रेम के लिए सम्पूर्ण सांसारिक आनन्द का त्याग करते हैं वे ही पवित्र आत्मा की मधुरतम सांत्वना के भागी होते हैं।

जिन्होंने तेरे लिए सम्पूर्ण सांसारिक चिन्ताओं का परित्याग किया है, उन्हें ही आन्तरिक स्वाधीनता प्राप्त होती है।

अहा, तेरी सेवा कैसी मधुर और आनन्ददायक है! उसके द्वारा यथार्थ ही मनुष्य स्वाधीन और पवित्र होता है।

तेरी मधुर और चिरकांक्षित सेवा में नियुक्त होकर मैं अनन्त आनन्द का अनुभव करूँगा।

[१०]

अन्तर-वासना की परीक्षा एवं संयम

वत्स, अब भी तू अच्छी तरह से सम्पूर्ण विषयों को समझ नहीं पाया है। अब भी ऐसी अनेक बातें हैं जिनका ज्ञान तेरे लिए आवश्यक है।

हे प्रभु, वे कौनसी बातें हैं ?

वत्स, तू अपनी इच्छाओं को मेरी इच्छाओं पर समर्पित करना सीख और आत्म-प्रेमी न होकर मेरी इच्छाओं का अनुगमन कर।

तेरे मन में सदा नाना प्रकार की आकाँक्षायें उदित होकर तुझे अस्थिर रखती हैं। उनके बीच मेरी उपासना का भाव है या तेरा स्वार्थ छिपा है, इसका विचार करके देख।

यदि मैं ही उन सब इच्छाओं का कारण हूँ तो तेरे लिए जो-कुछ मैं निरूपण करता हूँ, उसी में तुझे पूर्णतः सन्तुष्ट रहना चाहिए किन्तु यदि तेरे अन्दर कोई अपनी इच्छा छिपी हुई है तो इसे गाँठ बाँधले कि वही तेरे मार्ग का कण्टक बनकर तुझे दुःखित और भाराक्रान्त कर देगी। इसलिए सावधान, अपनी इच्छाओं पर निर्भर न कर; उनपर मेरी इच्छाओं को प्रधानता दे। ऐसा न करने से तुझे पीछे पश्चात्ताप करना

पड़ेगा और पहले तुझे जो सन्तोषजनक प्रतीत होता था और जिसे सर्वोत्कृष्ट समझकर व्यग्रतापूर्वक पाने की तू इच्छा करता था वही बाद में असन्तोषजनक हो उठेगा। सभी इच्छायें, जो अच्छी मालूम पड़ती हैं, अच्छी नहीं होतीं। इसी प्रकार कितनी ही अच्छी चीज़ों को, जो बुरी प्रतीत होती हैं, अकस्मात् छोड़ देना उचित नहीं है।

अपनी उत्तम इच्छाओं एवं चेष्टाओं का भी कभी-कभी शासन करना आवश्यक है क्योंकि बाद में अधिक उत्तेजना के कारण तेरे मन में व्याकुलता पैदा होती है जिससे आत्म-शासन के अभाव में, तू दूसरों के सामने कठिनाइयाँ और विघ्न उपस्थित करता है तथा दूसरों-द्वारा जब तुझे आघात् पहुँचता है तो हठात् हतबुद्धि होकर तू पतित होता है।

शरीर को आत्मा के वशीभूत करने के लिए कभी-कभी तुझे वीरता का अवलम्बन और शारीरिक अभिलाषाओं का वीर की भाँति सामना करना आवश्यक है।

जबतक शरीर दुःख-सुख सब के लिए प्रस्तुत न हो और थोड़े में ही सन्तुष्ट होना न सीखे, छोटी-बड़ी सभी बातों में उसे आनन्द न हो और असुविधाओं से घबड़ाना छोड़ न दे तबतक आत्म-दमन करना तेरे लिए उचित है।

[११]

धैर्य एवं इन्द्रिय-दमन

हे प्रभु, मैंने भलीभाँति अनुभव कर लिया है कि धैर्य मेरे लिए अति आवश्यक है क्योंकि इस जीवन में ऐसे अनेक अवसर आते हैं जब मेरी इच्छा के साथ दूसरों की इच्छा का विरोध होता है। शान्ति के लिए चाहे जिस पथ का मैं अनुगमन करूँ, अपने जीवन में युद्ध-रहित नहीं हो सकता।

वत्स, यह यथार्थ है किन्तु मेरी इच्छा है कि परीक्षा-हीन शान्ति की खोज न कर वरन् यह याद रख कि जब तू नाना प्रकार के दुःखों में तपकर शुद्ध हो जायगा तभी तुझे सच्ची शान्ति मिलेगी।

तू मन में सोचता होगा कि इस जगत के मनुष्य कुछ भी कष्ट नहीं सहते अथवा तेरी अपेक्षा बहुत कम सहते हैं किन्तु यह तेरा भ्रम है। जो सुख-विलास में डूबे हुए हैं उनसे भी जिज्ञासा करने पर जाना जा सकता है कि उनके पीछे भी कितना दुःख-कष्ट लगा हुआ है।

तू कहेगा कि उनके पास आनन्द के भी अनेक साधन हैं, वे अपनी इच्छाओं का अनुसरण करते हैं इसलिए दुःख में पड़ने पर भी उन्हें उसका इतना बोझ अनुभव नहीं होता।

अच्छा, यदि यह मान भी लें कि उनकी जो इच्छा होती है वही करते हैं तो कबतक वे ऐसा कर सकेंगे, इसका भी तूने कभी विचार किया है ?

अच्छी तरह समझ ले, धनवान् धुएँ की तरह शून्य में विलीन हो जायँगे। उनके जीवन-सुख की कोई स्मृति भी बाक़ी न रह जायगी।

यह भी सत्य है कि अपने जीवन-काल में भी वे सांसारिक सुख-भोग में तिक्तता, क्लान्ति और भय के बिना विश्राम अनुभव नहीं करते ।

कई बार जिसमें वे सुख समझते हैं उसी में अनेक दुःख और कठिनाइयाँ उठाते हैं ।

यह भी यथार्थ है कि जिन्होंने असीम सुख का अन्वेषण और अनुगमन किया है उन्हें भी साथ-साथ लज्जा और कठिनाइयों का अनुभव करना पड़ा है।

हाय, यह सब सुख कैसा क्षणिक है ! कैसा अवैध है !

तब भी मनुष्य ऐसा मत्त और अन्धा है कि वह इसे समझना ही नहीं चाहता और क्षणिक जीवन के असार सुख-भोग के लिए अपनी आत्मा की मृत्यु का अवसर उपस्थित करता है।

इसलिए हे वत्स, तू अपनी इच्छा का अनुगामी मत बन, अपनी कामना पर संयम कर, प्रभु की इच्छा में ही आनन्द मान। वह तेरे अन्तःकरण की सम्पूर्ण वाञ्छनीय वस्तुओं से तुझे संतुष्ट करेंगे ।

यदि तू सच्चा आनन्द चाहता है और मुझ से सच्ची शान्ति

पाने का इच्छुक है तो सम्पूर्ण पार्थिव विषयों को तुच्छ मान-
कर मुझे आत्मार्पण कर; तेरी इच्छा पूरी होगी।

ज्यों-ज्यों तू जगत् से अपनी आशा और सांत्वना को हटाकर
उन्हें मुझमें स्थापित करेगा त्यों-त्यों तुझे सच्ची और मधुर
शान्ति मिलेगी।

किन्तु इसे भी जान ले कि बिना जीवन में दुःख भोगे या कठोर
संग्राम एवं तपस्या किये ऐसी दिव्य शांति न मिल सकेगी।

तेरे स्वभाव में जो दुर्बलता मिल गई है वह तुझे प्रतिकूल आच-
रण की ओर ले जायगी किन्तु सावधान रह कर निष्ठापूर्ण
अभ्यास-द्वारा तू उसे पूरी तरह पराजित कर सकता है।

तेरा शरीर तेरे विरुद्ध बोलेगा और उलटी सलाह देगा किन्तु
आत्मा की कठोर साधना के द्वारा तू उसे दमन कर सकेगा।

(वासना का) यह पुराना विषम भुजंग तुझे प्रलुब्ध और अस्थिर
करेगा किन्तु प्रार्थना-द्वारा तू उसे दूर कर सकता है। भग-
वान् के मार्ग में चलकर तू उसका रास्ता रोक सकता है।

[१२]

पूर्णावश्यता

वत्स, तू सब बातों में ऐसा कहने का अभ्यास कर—

"हे प्रभु, यदि यह तेरे लिए संतोषजनक है तो ऐसा ही हो।

हे प्रभु, यदि यह तेरे गौरव के लिए है तो ऐसा ही होने दे।

हे स्वामी, यदि यह मेरे लिए उपयुक्त है और तू इसे मेरे लिए हितकर समझता है तो कृपा करके उसे पूर्ण करने की शक्ति मुझे प्रदान कर।

प्रभु, यदि तू जानता है कि कोई चीज़ मेरे लिए हानिकर हो सकती है और उसके द्वारा मेरी आत्मा का मंगल नहीं होगा तो मेरे मन से उसकी इच्छा दूर कर। क्योंकि, संभव है, ऐसा इच्छा मनुष्य की दृष्टि से यथार्थ और उत्तम होते हुए भी पवित्र आत्मा के लिए कल्याणकर न हो।"

ऐसा भी देखा जाता है कि जो पहले आत्म-शोध के उत्तम मार्ग पर चलते रहे थे, उनमें से अनेक पीछे भ्रान्त हो रहे हैं।

भगवान् से सदा यह प्रार्थना कर—

"हे प्रभु, मेरे लिए सबसे उत्तम क्या है, इसे तू ही जानता है सुतरां जो तेरी इच्छा हो वही घटित हो।

[१३]

प्रकृत सान्त्वना ईश्वर में ही अवस्थित है

हे नाथ, चाहे मैं जगत् की सम्पूर्ण सान्त्वना और सुख के साधन प्राप्त कर लूँ पर मैं जानता हूँ कि वे अधिक दिन तक रहने वाले नहीं हैं।

इसलिए हे मेरे मन, तू इसे भलीभांति समझ ले कि दीनबन्धु और पतितपावन भगवान् के अतिरिक्त तुझे पूर्ण सान्त्वना और विश्राम कभी प्राप्त न हो सकेगा।

हे मन, यदि तू ऐहिक सुखों को अवैध रूप से पाने की इच्छा करता है तो निश्चय ही दिव्य एवं चिरस्थायी आनन्द को खो देगा। इसलिए संसार में विचरण करते हुए और पार्थिव वस्तुओं का व्यवहार करते हुए भी, चिरस्थायी विषयों की आकांक्षा कर। किसी सांसारिक मंगल के द्वारा तू तृप्त न हो सकेगा।

चाहे तुझे सम्पूर्ण सुख-साधन प्राप्त हों किन्तु तू उनके द्वारा सुखी या धन्य न हो सकेगा। जिससे सम्पूर्ण जगत् निकला है, उस ईश्वर में ही तेरा समस्त सुख निहित है। अबोध मनुष्य जिससे प्रलुब्ध होता और जिसकी प्रशंसा करता है, वह तेरे जीवन का उद्देश्य नहीं है।

समस्त मानवीय सान्त्वना क्षणिक और असार है। अन्तःकरण में जो सान्त्वना स्वयं उद्भूत होती है, वही सच्ची है।

हे स्वामी, तेरी जो भी इच्छा हो उसी पर मैं अपने को चढ़ा दूँ, मुझे ऐसी शक्ति दे । मेरे लिए जिस कार्य या व्यवहार को तू आवश्यक समझे, जिससे तेरा संतोष हो, वही कर। जिस कार्य में तेरी इच्छा हो उसी में मुझे नियोजित कर और सम्पूर्ण विषयों में मेरे साथ तेरी ही इच्छा घटित हो।

मैं तेरे ही हाथ में हूँ, तुझे आत्मार्पण करता हूँ; तू मेरा यथोचित उपयोग कर और चाहे मैं कहीं रहूँ, तेरी इच्छा प्रेरणा देकर मुझे ठीक स्थान पर पहुँचा देवे ।

प्रभु, मैं तेरा दास हूँ; सब बातों के लिए प्रस्तुत हूँ। अपने लिए नहीं, तेरे ही लिए मैं जीवन धारण करना चाहता हूँ। यदि मैं इसका पालन कर सकूँ तभी मैं चरितार्थ हो सकूँगा।"

[१४]

ईश्वरार्पण

"हे वत्स, अपनी इच्छानुसार मैं तुझे चलाना चाहता हूँ। तेरे लिए क्या उपयुक्त और मंगलजनक है, इसको मैं जानता हूँ।
मानवीय ज्ञान से संचालित होने के कारण तू अपने लिए अनेक चिन्तायें पैदा कर लेता है।"

हे प्रभु, तेरा कथन बिलकुल सत्य है। मैं स्वयं अपने लिए जितनी चिन्ता और यत्न कर सकता हूँ उससे तेरी चिन्ता मेरे लिए कहीं अधिक कल्याणकारी होगी।

जो अपनी समस्त आशा, चिन्ता और भावना—अपना सर्वस्व-तेरे चरणों में अर्पण नहीं कर देता वह अस्थायी नींव पर खड़ा होता है।

प्रभु, यदि केवल मेरी भावना तेरे प्रति अकपट और अविचलित बनी रहे तो तेरी भावना के अनुसार यह जीवन संचालित हो सकता है।

तू जो कुछ मेरे लिए करेगा उसी में मेरा हित होगा। यदि मेरे अन्धकार में रहने से तेरी इच्छा पूर्ण होती हो तो भी मैं कहूँगा—तू धन्य है। मुझे प्रकाश में रखने से तेरी इच्छा पूर्ण होती हो तो भी कहूँगा कि तू धन्य है। यदि तू मुझे

कृपापूर्वक सान्त्वना देता है तो भी तुझे ही धन्य कहूँगा। यदि तू मुझे दुःख देना चाहे तो भी कहूँगा कि तू चिर-धन्य है।

वत्स, यदि तू मेरे साथ चलने की इच्छा करता है तो जैसे आनंद-भोग के लिए प्रस्तुत रहता है वैसे ही दुःखभोग करने के लिए भी तैयार रहना तेरे लिए उचित है। तू वैभवशाली एवं धनवान् हो अथवा दरिद्र एवं दीन-हीन हो, दोनों में ही तुझे संतुष्ट रहना चाहिए।

प्रभु, तेरे हाथ से अच्छा-बुरा मीठा-कडुआ, आनन्द-दुःख सभी कुछ ग्रहण करने को तैयार हूँ।

सम्पूर्ण पापों से मेरी रक्षा कर। ऐसा होने से मृत्यु एवं नरक दोनों में से किसी से मुझे भय न रह जायगा।

यदि तू सदा के लिए मुझे अपने से दूर न करे तो मुझपर जो भी दुःख-क्लेश आवेगा, उसे मैं हँसते-हँसते सहूँगा।

[१५]

क्षति-सहन एवं प्रकृत धैर्य

वत्स, तू यह क्या कहता है ? संसार में जो बड़े-बड़े संत एवं साधु पुरुष हुए हैं, उन्हें कितनी कठिनाइयों एवं दुःखों का सामना करना पड़ा है। उनकी याद करके अपने दुःखों एवं कष्टों की शिकायत करना छोड़ दे।

छोटे-बड़े सभी प्रकार के दुःखों को धीरज के साथ सहन करने की चेष्टा कर।

यदि तू अपने को सब प्रकार के दुःख सहने को तैयार रक्खेगा तो बड़े से बड़ा दुःख आ पड़ने पर सहज ही उसे सहन कर सकेगा।

यह मत कह कि "मैं अमुक के लिए यह कष्ट न सहूँगा', न तो यह कह कि "उसने मेरी बड़ी हानि की है और मेरे साथ ऐसा व्यवहार किया है जिसकी मुझे कल्पना भी न थी इसलिए उसकी खातिर मैं कष्ट क्यों सहूँ ? दूसरा जो-कुछ मुझ पर आ पड़ेगा सह लूँगा पर इसे सहन न करूँगा।"

यह विचार अज्ञान से पूर्ण है क्योंकि यह धैर्य-प्रसूत कर्म की ओर नहीं देखता, न यही सोचना चाहता है कि गौरव का

मुकुट प्राप्त करने के लिए जिस धर्य की आवश्यकता है, उसका जन्म कहाँ से होगा। वह तो केवल क्षति करने वाले और अपनी क्षति के विषय में ही विस्तार-पूर्वक विवेचन करना चाहता है।

जो अपनी इच्छानुसार किसी विशेष व्यक्ति के लिए, या किसी सीमा तक ही, दुःख भोगने की इच्छा करता है वह सच्चा धर्यशील नहीं है।

सच्चा धैर्यशील आदमी यह नहीं देखता कि जिसके कारण या जिसके लिए मैं दुःख उठा रहा हूँ वह मुझसे श्रेष्ठ है या मेरी बराबरी का है; मुझ से क्षुद्र है या पवित्र, योग्य है, या अयोग्य है।

वह तो सब को समभाव से देखते हुए जो-कुछ दुःख आ पड़ता है उसे प्रसन्नता-पूर्वक सहन करता है; ईश्वरीय इच्छा समझ कर उसी में अपना कल्याण मानता है।

यदि तू विजयी होना चाहता है तो सदा युद्ध के लिए प्रस्तुत रह। गांठ बाँध ले कि युद्ध के बिना धैर्य का मुकुट तू कभी प्राप्त न कर सकेगा। यदि तू दुःखों से घबड़ाता है तो कहना पड़ेगा कि तू स्वयं विजय-मुकुट को अस्वीकार करना चाहता है। यदि तू गौरव का विजय-मुकुट पाना चाहता है तो वीर की तरह युद्ध कर और जो-कुछ आ पड़े उसे धैर्यपूर्वक सहन कर।

श्रम बिना विश्राम नहीं और युद्ध बिना जय नहीं।

हे प्रभु, जो अपनी शक्ति को देखते हुए मुझे असाध्य प्रतीत होता है, तेरे अनुग्रह से वही सरल और साध्य हो जायगा।

दुर्बलता एवं जीवन के दुःखों का ज्ञान

हे प्रभु, मैंने अपने प्रति जो अन्याय किया है, उसे सिर झुकाकर स्वीकार करता हूँ।

सदा ही कोई न कोई क्षुद्र बात मुझे दुखित और विषण्ण किये रहती है।

मैं साहस-पूर्वक सत्कार्य करने की इच्छा करता हूँ किन्तु जरा-भी कठिनाई एवं परीक्षा का अवसर उपस्थित होते ही हाथ-पांव फूल जाते हैं।

कभी-कभी छोटी बातों में गुरुतर परीक्षा का अवसर आ पड़ता है। ऐसे समय जब मैं अपने को निरापद समझता रहता हूँ और जब पतन की आशंका बिलकुल नहीं रहती उसी समय अकस्मात् एक प्रचण्ड आँधी आकर मुझे जमीन पर गिरा देती है हे प्रभु, मेरी निम्न अवस्था और सम्पूर्ण दुर्बलताओं पर ध्यान दे। मुझपर दया कर, इस कीचड़ में से मुझे उठा और फिर कभी मैं उसमें न गिरूँ, ऐसी शक्ति मुझे दे।

मैं पतन-शील हूँ और इन्द्रिय-दमन में बड़ा ही दुर्बल हूँ। इसलिए तेरा मार्ग प्रायः छूट जाता है।

जब प्रलोभनों से बचने और उसमें न फँसने की भी इच्छा रहती है तब भी प्रलोभनों का निरन्तर आक्रमण मेरे लिए क्लेशकर और दुःखदायी हो उठता है और रात-दिन इस प्रकार युद्ध में लिप्त रहने की चिन्ता से मैं पीड़ित हो जाता हूँ।

मुझे अपनी दुर्बलता का ज्ञान इसी से होता है कि मेरे मन में घृणास्पद चिन्तायें तो शीघ्र प्रवेश पा जाती हैं किन्तु बाहर बड़े कष्ट से निकलती हैं।

हे सर्वशक्तिमान, चिरप्रियतम, कृपा करके इस दास के श्रम और दुःख को स्मरण कर और जिससे सत्कार्य में प्रवृत्ति हो, ऐसी बुद्धि दे।

हाय, मेरा यह कैसा जीवन है जिसमें एक न एक दुःख और अभाव लगा ही रहता है। एक दुःख जाता है कि दूसरा आ जाता है। पहला युद्ध समाप्त नहीं होता कि दूसरी परीक्षा सिर पर आ खड़ी होती है। जिसमें इतना कड़ुआपन है, जो इतनी दुर्घटनाओं और दुःखों के अधीन है, उस जीवन को कैसे प्रेम किया जा सकता है? जिससे विपद् और मृत्यु का जन्म होता है उसे जीवन ही कैसे कहा जा सकता है?

परिताप की बात तो यह है कि यही जीवन मनुष्य के लिए कैसा प्रिय है और इसी में आनन्द खोजने की वह कैसी अबोध चेष्टा करता है? जगत् को असार कहने वाले तो बहुत हैं किन्तु शारीरिक अभिलाषाओं ने ही उनके ऊपर ऐसा प्रबल प्रभुत्व स्थापित कर रक्खा है कि वे उसे छोड़ नहीं पाते।

शरीर की अभिलाषा, आँख की अभिलाषा और जीवन का अहंकार हमें जगत् की ओर ले जाता है किन्तु जब यंत्रणा और दुःख आता है तो उसी जगत् के प्रति हम घृणा दिखाने लगते हैं।

हाय, जिसका मन जगत् में आसक्त है, उसे ही अवैध सुखों की आसक्ति पराजित कर लेती है क्योंकि ईश्वरीय मधुरता और धर्म के आन्तरिक सुख को ये कभी देख नहीं पाते, न कभी उनका स्वाद पाते हैं।

जो जगत् को तुच्छ करके ईश्वर में ही जीते हैं वे ही इस दिव्य सुख को देख पाते हैं। जगत् किस प्रकार भयंकर भूल में पड़ा है और कैसे प्रवंचित हो रहा है, यह भी वे स्पष्ट देख पाते हैं।

[१७]

मिलन की उत्कण्ठा

हे प्रभु; हे मेरे ईश्वर, तू सब की अपेक्षा उत्तम और असीम है; तू परात्पर है; तू सर्वशक्तिमान, पूर्ण और प्रचुर है; तू अति मधुर और सांत्वनापूर्ण है। तू सब से अधिक मनोहर और प्रेममय है; तू सब से महान् है। तुझ में ही सम्पूर्ण उत्तम विषय सन्निहित हैं, रहे हैं और रहेंगे।

हे मेरे प्रियतम, यदि मुझे सचमुच मुक्ति के पंख होते तो मैं उड़कर तुझ तक पहुँच जाता और तुझ में ही आश्रय एवं विश्राम ग्रहण करता।

हे मेरे प्रभु, तू कब मुझे स्थिरचित्त होकर अपना माधुर्य देखने देगा। वह दिन कब आवेगा जब मैं पूरी तरह तेरे ही अन्दर मग्न हो जाऊँगा और प्राणों में तुझे भरकर धन्य होऊँगा ?

इस दुःख की उपत्यका में अनेक छोटी-मोटी बातें मुझे व्यस्त, शोकार्त्त और मेघाच्छन्न किये रखती हैं; आकर्षित एवं व्याकुल करके मुझे तेरे पास पहुँचने नहीं देतीं फलतः मैं तेरे मिलन के मधुर आनन्द से वंचित रह जाता हूँ।

हे नित्यस्थायी महिमा की उज्ज्वलता, हे प्रियतम, मैं तेरे सम्मुख नीरव हो रहा हूँ किन्तु मेरी निस्तब्धता तेरे साथ आलाप कर रही है।

हे मेरे प्रभु, तेरे आगमन में अब क्या विलम्ब है ? मैं तेरा दरिद्र सेवक हूँ; मेरे पास आकर तू मुझे सम्पूर्ण यंत्रणाओं से छुड़ा। तेरे बिना मेरा एक-एक क्षण निरानन्द बीत रहा है क्योंकि तू ही मेरा आनन्द है और तेरे बिना मेरा घर सूना है।

हे स्वामी, जबतक तुम अपने श्रीमुख के आलोक से मुझे सुख-दान न करोगे, जबतक तुम अपना हँसता मुखड़ा मुझे न दिखाओगे तबतक मैं नितान्त अभागा, बेड़ियों में जकड़ा हुआ, भाराक्रान्त जीव की तरह छटपटाता रहूँगा।

"हे वत्स, मैं यहाँ उपस्थित हूँ, मैं तेरे पास आया हूँ, क्योंकि तूने मुझे पुकारा है। तेरे नेत्र-जल, तेरी आत्मा की प्रबल आकांक्षा, तेरे विनीतभाव और तेरे अन्तःकरण के अनुताप ने मुझे खींचकर तेरे पास ला खड़ा किया है।"

हे प्रभु, मैंने तेरा आह्वान किया है और तेरे लिए सब-कुछ छोड़कर तुझे पाने के सुख के लिए नितान्त उत्सुक हूँ पर मेरे हृदय में तुझे पाने की भावना तेरी ही कृपा से उत्पन्न हुई अतः हे प्रभु, तू धन्य है।

तेरे साक्षात् में यह दीन दास और क्या कहेगा ? स्वर्ग एवं पृथ्वी में जो-कुछ भी सत् और महत् है उसमें तेरे-जैसा कुछ नहीं है।

[१८]

तेरा स्मरण

हे प्रभु, मेरे अन्तःकरण को खोल दे और अपनी आज्ञानुसार चलने की मुझे शिक्षा दे।

आशीर्वाद दे कि मैं तेरी इच्छाओं को समझ सकूँ और सम्मान एवं यत्न के साथ तेरी सम्पूर्ण कृपा को स्मरण कर तेरा गुण-गान कर सकूँ, यद्यपि यह मैं जानता हूँ कि सामान्य भाव से भी मैं तुझे धन्यवाद देने और तेरी प्रशंसा करने में असमर्थ हूँ। जब मैं तेरे गौरव का ध्यान करता हूँ तो तेरा माहात्म्य मेरी आत्मा को अभिभूत कर देता है।

मेरी आत्मा या शरीर में, बाहर-भीतर, जो-कुछ है सब तेरा ही है।

हे नाथ, जब कोई मनुष्य तुझे प्रेम करता है तब तेरी ही इच्छा पूर्ण होती है और उसके साथ तेरी अनन्त इच्छा का जो सम्बन्ध स्थापित होता है उसमें उसे जैसा आनन्द मिलता है, वैसा अन्यत्र प्राप्त नहीं होता।

[१६]

शान्ति के चार नियम

"वत्स, अब मैं तुझे शान्ति और मुक्ति का मार्ग बताऊँगा ।

तू अपनी इच्छा की अपेक्षा दूसरों की इच्छा का पालन करने का अभ्यास कर ।

अधिक की अपेक्षा थोड़े से ही सन्तुष्ट होना सीख ।

सदा छोटे स्थान की खोजकर और सबसे छोटा बन ।

सदा यह इच्छा और प्रार्थना कर कि 'भगवान् की इच्छा मेरे-द्वारा पूर्ण हो ।'

जो कोई इस नीति का अनुसरण करेगा वह शान्ति एवं विश्राम के प्रदेश में प्रवेश करेगा ।"

हे प्रभु, मैं प्रायः तेरे मार्ग को छोड़कर भटक जाता हूँ । मुझे शक्ति दे कि इनका पालन कर सकूँ ।

[२०]

कुवासना दूर करने के लिए

हे मेरे स्वामी, मुझसे दूर न हो, मेरे ऊपर कृपा कर, मेरी सहायता कर। नाना प्रकार की चिन्ता और भय ने मेरी आत्मा को पीड़ित कर रक्खा है। मैं इनके बीच से अछूता कैसे निकल सकता हूँ? कैसे मैं इस भीति को चूर-चूर कर दूँ?

प्रभु कहते हैं—"वत्स, मैं तेरे आगे-आगे चलता हूँ, तू मेरा अनुसरण कर। मैं कारागार के सम्पूर्ण दरवाजों को खोले देता हूँ और तेरे सामने गुप्त रहस्य को प्रकाशित करता हूँ।"

हे प्रभु, प्रत्येक दुःख के समय मैं तेरे पास भाग कर आता हूँ क्योंकि तू ही मेरा अन्तिम आश्रय है। हृदय का कोना-कोना तेरा आह्वान करता है। धीरज के साथ तेरी प्रतीक्षा करता हूँ। यही मेरी एकमात्र आशा और सान्त्वना है।

[२१]

आन्तरिक ज्योति के लिए प्रार्थना

हे दयामय, अपने सनातन उज्ज्वल आलोक से मुझे दीप्त कर और मेरे हृदय से तिमिर-राशि को हटा दे।

मेरी विपथगामिनी चिन्ताओं को संयत कर और जब भयंकर प्रलोभन मुझपर आक्रमण करें तो उन्हें चूर-चूर कर नष्ट कर दे।

तेरे पराक्रम से मुझे शान्ति मिले, और तेरे पवित्र आँगन में मैं निर्मल विवेक के सहारे तेरे गुण-गान को प्रतिध्वनित कर सकूँ, इसके लिए मेरी ओर से प्रबल युद्ध कर और हिंसक पशुओं के समान जो शारीरिक अभिलाषायें मुझे खाती जा रही हैं, उन्हें पूरी तरह दूर कर दे।

मेरे जीवन-समुद्र में जो तूफान उठ रहा है, उसे शान्त होने की आज्ञा दे तथा अपने प्रकाश और सत्य से मेरा पथ आलोकित कर। जबतक तू मुझे आलोकित न करेगा तबतक मैं आकृतिहीन कर्दम के सिवा और क्या हूँ ?

हे नाथ, ऊपर से अपने प्रसाद की वर्षा कर तथा स्वर्गीय अमृत से हमारे अन्तःकरण को सींच। पृथ्वी को सींचने के लिए नवीन भक्ति का स्रोत प्रवाहित कर जिससे वह उत्कृष्ट और उत्तम फल उत्पन्न कर सके।

हे प्रभु, पाप-राशि के भार से दबे हुए मेरे मन को ऊपर उठा और मेरी समस्त इच्छा को अपनी ओर आकर्षित कर।

मुझे अपने अभेद्य प्रेम-बन्धन में सदा के लिए बाँध ले। जो तुझे प्रेम करता है, उसे केवल तू ही तृप्त कर सकता है और उसके लिए तेरे अतिरिक्त सम्पूर्ण विषय असार एवं अनर्थकारी हैं।

दूसरों के सम्बन्ध में अनधिकार-चर्चा

वत्स, कुतूहल में मत पड़, न व्यर्थ उद्वेग-द्वारा अपने को क्लिष्ट बना। इधर-उधर की बातों में तू क्यों पड़ता है? तू तो मेरा अनुगमन कर। वह ऐसा है, वैसा है, इससे तुझे क्या मतलब? अमुक ऐसा कहता है, वैसा कहता है, इससे तेरा क्या? दूसरों के लिए तुझे जवाब नहीं देना पड़ेगा इसलिए तू क्यों व्यर्थ दूसरों के मामलों में पड़ता है?

इसे याद रख कि मैं प्रत्येक आदमी को जानता हूँ और सूर्य के नीचे जो-कुछ हो रहा है,सब देख रहा हूँ। यही नहीं,हरएक की गुप्त बातों को—कौन किस अवस्था में है, क्या सोच रहा है, क्या इच्छा कर रहा है और किसका मन किस दिशा में दौड़ रहा है, यह सब—मैं जानता और समझता हूँ।

इसलिए अपना सर्वस्व मुझे अर्पण करके नम्रतापूर्वक शान्ति की खोज कर। किसी के महत् नाम से उद्वेलित मत हो। बहुतों से घनिष्ठता प्राप्त करने में या मनुष्य के क्षणस्थायी प्रेम के लिए यत्नवान न हो क्योंकि ये सब बातें व्याकुल और अतिशय अन्धकाराच्छन्न कर देती हैं।

यदि तू यत्नवान होकर मेरे आगमन की प्रतीक्षा करेगा और मेरे लिए अपने हृदय के कपाट खोल देगा तो मैं प्रसन्नतापूर्वक तेरे साथ प्रेमालाप करूँगा और अपनी गूढ़ बातों को तुझ से कहूँगा।

तू सतर्क हो, प्रार्थना में जाग्रत रह और प्रत्येक विषय में नम्र बन।

[२३]

हृदय की शान्ति और आत्मिक उन्नति

हे वत्स, पहले कह चुका हूँ कि शान्ति मैं तेरे पास छोड़े जाता हूँ। जगत् जिस प्रकार दान करता है, उस प्रकार मैं दान नहीं करता।

संसार में सभी शान्ति पाने की इच्छा करते हैं किन्तु सच्ची शान्ति पाने के लिए यत्न कौन करता है ? मेरे द्वारा दी हुई शान्ति नम्र और धीर हृदय में ही निवास करती है। याद रख धैर्य से ही तुझे शान्ति मिलेगी।

हे प्रभु, मैं क्या करूँ ?

"तू जो कर या कह सबमें अपने प्रति तीक्ष्ण दृष्टि रख और सदा केवल मुझे ही संतुष्ट करने की चेष्टा कर और मुझसे भिन्न अन्य किसी विषय की आकांक्षा न कर।

जब तुझे कोई बोझ अनुभव न होता हो, या किसी शत्रु-द्वारा तू पीड़ित न हो या जिस समय। सब कुछ तेरी इच्छानुसार चल रहा हो, उस समय मैं निरापद हूँ या शान्ति भोग कर रहा हूँ, ऐसा मन में न सोच। अपनी अचल भक्ति एवं सुख पर न फूल। ऐसा न सोच कि सर्वोच्च सत्य इन सब बातों के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

हे प्रभु, तब कैसे मेरा उद्धार होगा ?

हृदय से ईश्वरीय इच्छा पर अपने को अर्पण करने से ही यह हो सकता है। उन्नति–अवनति, सुख-दुःख दोनों अवस्थाओं में समभाव रखकर ईश्वर का धन्यवाद कर और जब आन्तरिक सान्त्वना का प्रकाश तेरे हृदय में फैले तो उस समय हृदय को तू और भी कठोर दुःखों का भार उठाने को तैयार रख। इससे तू सत्य एवं यथार्थ शान्ति का मार्ग खोजने में सफल होगा।

सर्वस्वार्पण

वत्स, दूसरों के लिए तुझे अपना सर्वस्व दान करना आवश्यक है। तू याद रख कि तेरा अपना कुछ नहीं है। जगत् के अन्य सब विषयों की अपेक्षा आत्म-प्रेम ही तेरी उन्नति में अधिक बाधक है। जिस विषय में तेरी जितनी प्रीति एवं आसक्ति है उस विषय में तुझे उतना ही कष्ट भोगना पड़ेगा। यदि तेरा प्रेम पवित्र, सरल और संयत है तो तू सभी बातों में स्वतन्त्र रहेगा। तू जिस चीज को प्राप्त नहीं कर सकता अथवा जिसे प्राप्त करना तेरे लिए अवैध है, उसकी आकांक्षा न कर। जो वस्तुएँ तेरी आत्मिक उन्नति में बाधक हों, उनका त्याग कर।

तू अपने को अपनी सम्पूर्ण कामनाओं के साथ मुझे अर्पण नहीं करता, यह आश्चर्य की बात है। व्यथा से तू क्यों व्यथित है? व्यर्थ चिन्ताओं का बोझ तूने अपने सिर उठा रक्खा है? तू सब-कुछ मुझ पर छोड़ दे, इसी से तेरा मंगल होगा। यदि तू अपने स्वार्थ के लिए कभी इसकी, कभी उसकी कामना करेगा; कभी यहाँ, कभी वहाँ रहना चाहेगा, तो, कभी तुझे शान्ति न मिलेगी क्योंकि प्रत्येक वस्तु में कुछ न कुछ कमी होती ही है। इसीलिए बाह्य पदार्थों की प्राप्ति या वृद्धि-द्वारा मनुष्य का मंगल होता हो, ऐसी बात नहीं है वरन् प्रायः अन्तःकरण से उसके महत्त्व का उन्मूलन कर देने से ही कल्याण होता है। अवसर आने पर मालूम होगा कि जिससे तू भागना चाहता है उसी ने तुझ को कैसे दृढ़ बन्धन में जकड़ रक्खा है।

[२५]

निन्दा-यश की असारता

वत्स, यदि कोई तेरी निन्दा करता है या तेरे विषय में ऐसी बातें कहता है जिसे तू सुनना नहीं चाहता तो तू दुखित न हो और उससे बुरा न मान। तू अपने को सबसे दुर्बल समझ, किसी को अपने से नीचे न मान। यदि तू अपनी आत्मा की पुकार पर चल रहा है तो दूसरों की अतिरंजित बातों को महत्व न दे। दुःसमय को चुपचाप सहन कर तथा मुझमें दृष्टि स्थिर रखते हुए, मनुष्यों की अनुकूल-प्रतिकूल आलोचना से व्याकुल न होकर अपना काम कर।

मनुष्यों के मुँह में तेरी शान्ति क्यों बँधी रहे? उनके निन्दा-यश पर तेरी शान्ति क्यों निर्भर करे? वे अच्छा कहें या बुरा, इससे तू दूसरा आदमी तो बन न जायगा; तू जो है, वही रहेगा। इसलिए विचार कर कि सच्ची शान्ति एवं विभूति का स्रोत कहाँ है? क्या मैं नहीं?

जो मनुष्य को प्रसन्न करने की आकांक्षा नहीं रखता, न उसके असंतोष से भयभीत होता है, वही यथेष्ट शान्ति पाता है।

अवैध प्रेम और असार भय से ही हृदय की अशान्ति और बौद्धिक प्रमाद का जन्म होता है।

भगवत्करुणा की भिक्षा

हे वत्स, मैं ही दुःख में तेरा विश्राम हूँ । दुःसमय में तू मेरी शरण में आ। मैं ही हूँ जो शरणागतों का उद्धार करता हूँ। मुझ से भिन्न स्थायी मंगल की प्राप्ति नहीं हो सकती । मेरे लिए कुछ असम्भव नहीं ।

प्रार्थना में शिथिलता आन्तरिक सान्त्वना के मार्ग में सब से बड़ी बाधा है । तेरा विश्वास कहाँ है ? दृढ़ और स्थिरचित्त होकर खड़ा हो; साहस एवं धैर्य का अवलम्बन कर; उपयुक्त समय में तुझे सान्त्वना मिलेगी । मेरी प्रतीक्षा कर, मैं वचन देता हूँ कि मैं आऊँगा और तेरी रक्षा करूँगा। जो-कुछ तुझे व्याकुल कर रहा है वह तो एक मामूली परीक्षा है; व्यर्थ भय से तू काँप रहा है। भावी घटनाओं के सम्बन्ध में अधिक चिन्ता करके तू दुःख पर दुःख का भार बढ़ाता जाता है ।

किन्तु इस प्रकार की कल्पना से भ्रान्त होना मनुष्य का स्वभाव है और पापी पुरुषों की कुमंत्रणा से सहज ही आकृष्ट होना दुर्बल मन का चिन्ह है । इसलिए तू अपने अन्तःकरण को कभी उद्विग्न अथवा भीत न होने दे और मुझ पर निर्भर कर ।

तू कितनी ही बार मुझे दूर समझता है, किन्तु मैं तो सब वस्तुओं की अपेक्षा तेरे निकट रहता हूँ । बात यह है कि कोई प्रतिकूल घटना घटते ही तेरा सम्पूर्ण विश्वास उड़ जाता है किन्तु याद रख कि मन के उपस्थित भावों के

अनुसार मान लेना किसी प्रकार उचित नहीं है। यदि थोड़ी देर के लिए मैं तुझे दुःखों में डालता हूँ या तेरी वांछनीय सान्त्वना तुझ से छीन लेता हूँ तो यह न सोच कि तू सब प्रकार से परित्यक्त है। स्वर्ग-राज्य का रास्ता ही यह है।

मैं तेरे हृदय की सम्पूर्ण गुप्त चिन्ताओं को जानता हूँ। अपने विषय में जो चिन्ता तुझे न करनी चाहिए, उसका तेरे मन में उदय होने के कारण ही कभी-कभी त आत्मिक माधुर्य के रसास्वाद से हीन हो जाता है; पर इसमें भी तेरा मंगल छिपा है।

मैंने जो-कुछ तुझे दिया है, उसे लौटा लेना या फिर दान करना मेरी ही इच्छा के अधीन है। जब मैं तुझे दान करता हूँ तो अपनी ही चीज़ देता हूँ; जब मैं लौटा लेता हूँ तो तेरी चीज़ नहीं लेता।

हे वत्स, यदि मैं तुझे दुःखों में डालता हूँ तो इसके लिए शोक न कर, न अपने हृदय को हताश होने दे क्योंकि मैं आगे इन्हीं को तेरे अनुकूल बनाकर तेरे समस्त उद्वेग को आनन्द में परिणत कर सकता हूँ। जब मैं तेरे साथ ऐसा व्यवहार करता हूँ तब भी मैं पहले का वही एकमात्र 'सत्' रहता हूँ।

यदि तू प्रकृत ज्ञानी है एवं सत्य क्या है, इसे समझता है तो दुःख के समय शोक करने की अपेक्षा तेरा हृदय आनन्द एवं कृतज्ञता से भर जायगा। तुझ पर समय-समय पर जो दुःख आते हैं, उन्हें अपना सौभाग्य समझ।

मन की अस्थिरता और ईश्वर-प्राप्ति का संकल्प

वत्स, अपने अन्तःकरण में उपस्थित भावों के ऊपर निर्भर न कर क्योंकि वे शीघ्र ही बदल सकते हैं। जब तक तू जीवित रहेगा, भले ही अनिच्छा से हो, तुझे परिवर्तन के नियम के अधीन रहना ही पड़ेगा इसीलिए तू कभी आनन्दित कभी दुःखित, कभी निश्चिन्त कभी व्याकुल, कभी धर्मरत कभी धर्म-विरत, कभी परिश्रमी कभी आलसी, कभी गम्भीर और कभी चंचल हो जाता है।

किन्तु ज्ञानी एवं आत्म-योगी इस परिवर्तन के ऊपर अपने को दृढ़ रूप से स्थापित करके वायुरूप चंचल मन की भावनाओं को खींचकर यथार्थ और सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य में ही लगाते हैं। ऐसा होने पर परिवर्तनशील सांसारिक घटनाओं के बीच उनकी स्थिर दृष्टि सदा मुझमें ही लगी रहती है और वे अटल, अविकृत और शांत भाव से समय बिताते हैं।

संकल्प की आंख जितनी ही निर्मल और पवित्र होती है, आदमी दुर्घटनाओं के तूफ़ान के बीच उतनी ही दृढ़ता से आत्मिक जीवन की रक्षा कर सकता है। कितने ही संकल्प की पवित्र दृष्टि-शक्ति को धुँधला कर देते हैं क्योंकि कोई क्षणिक सुख देने वाली वस्तु देखते ही वे उधर शीघ्र आकृष्ट हो जाते हैं। स्वार्थ-चेष्टा के दोष से पूर्णतः मुक्त लोग दुनिया में बहुत थोड़े हैं।

इसलिए तुझे अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों एवं घटनाओं के बीच केवल ईश्वर की ओर ही दृष्टि रखनी चाहिए।

[२८]

ईश्वर का अपूर्व माधुर्य

हे मेरे ईश्वर, मेरे सर्वस्व, मैं तेरे सिवा और किस की इच्छा करूँ? और किस अधिक सुख की आकांक्षा करूँ?

हे नाथ, तेरे साथ रहने से सब कुछ आनन्दमय हो जाता है, और तेरे विरह में सभी वस्तुयें दुःखकर हो जाती हैं। तू ही मेरे अन्तःकरण की स्थिरता है, तू ही मेरी महती शान्ति है। तेरे सिवा और किसी वस्तु से अधिक समय तक संतोष नहीं मिल सकता और तेरी कृपा बिना कोई वस्तु आनन्ददायक एवं सुस्वादु नहीं हो सकती।

जिसने तेरी मधुरता का असली स्वाद पा लिया है, उसके लिए सब कुछ मधुमय है। जिसे तेरी मधुरता का स्वाद नहीं मिला उसे किसी वस्तु से संतोष नहीं होता।

जो सांसारिक विषयों की अवज्ञा एवं इन्द्रिय-दमन द्वारा तेरा अनुगमन करते हैं वे ही सद्ज्ञान लाभ करते हैं क्योंकि वे असारता से सत्य और शारीरिकता से आत्मिकता की ओर उठते हैं।

स्रष्टा और सृष्टि के माधुर्य-भोग में, अनन्त और सान्त में, तथा ईश्वरप्रदत्त एवं कृत्रिम आलोक में बड़ा अन्तर है।

"हे सम्पूर्ण सृष्ट ज्योतियों से अतीत, नित्य आलोक, तू ऊपर से अपनी प्रकाश-किरणों की वर्षा कर जिससे मेरे हृदय के भीतर का समस्त प्रदेश आलोकित हो जाय। हे नाथ, मेरी आत्मा और उसकी सम्पूर्ण क्षमता को पवित्र, उल्लसित दीप्तिमय और जीवन्त कर जिससे मैं विशुद्ध आनन्द में तुझ में ही आसक्त और निमग्न हो जाऊँ।

अहा, जिस समय तू मेरे पास रहकर मुझे तृप्त करते हुए मेरा सर्वस्व और सर्वेसर्वा हो जायगा वह चिरवांछित समय कब आवेगा ?

जबतक मुझ पर यह अनुग्रह नहीं होता, तबतक पूर्ण आनन्द प्राप्त करना मेरे लिए असंभव है।

हाय, अबतक वे पुरानी कुवासनायें मेरे अन्दर जीवित हैं, पूर्ण रूप से उनका नाश नहीं हुआ। अब भी वे बलवती होकर आत्मा के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया करती हैं और आन्तरिक शान्ति को क्षुब्ध कर देती हैं।

हे प्रभु, तू मुझे आश्रय दे। तू अपनी आश्चर्य-क्षमता प्रकाशित कर और अपने वरद हस्त को गौरवान्वित होने दे क्योंकि हे नाथ, हे मेरे ईश्वर, तेरे सिवा मेरी और कोई आशा या आश्रय नहीं है।

[२६]

मानवी निर्णय की असारता

वत्स, तू मुझमें अपने मन को दृढ़ रूप से नियोजित कर और जब तेरा अन्तःकरण तुझे निर्दोष और पवित्र कहता हो तो किसी मनुष्य के निर्णय का भय न कर। इस प्रकार कष्ट सहन करना मनुष्य के लिए गौरवपूर्ण है और हार्दिक नम्रता के साथ मुझमें विश्वास रखते हुए जो इसे सहन करेगा उसकी कोई हानि न होगी।

बहुत तरह के आदमी बहुत तरह की बातें कहते हैं और उनपर बहुत ही कम विश्वास किया जा सकता है। सबको प्रसन्न रखना सम्भव नहीं है। संसार में कई महापुरुष ऐसे हुए हैं जो सब के सुख का ध्यान रखते थे फिर भी कितनी ही बार उनका तिरस्कार किया गया। इसीलिए उन्होंने सब कुछ भगवत्चरणों में अर्पण कर दिया और धैर्य एवं नम्रता के साथ दूसरों की निन्दा के प्रहारों को सहते रहे। फिर तू ऐसे मनुष्य की निन्दा से क्यों डरता है जो आज है, कल न रहेगा। तू तो केवल मेरा ध्यान रख और मानवी भय से भयभीत न हो। यदि तू सच्चा है तो दूसरे लोग शब्दों एवं कार्यों से तेरी क्या हानि कर सकते हैं; इसमें उन्हीं की

हानि है। वे कोई हों, अपने को, अपनी दुर्बलता को जानते हैं। तू तो केवल मुझे, अपने ईश्वर को, अपनी आँखों के सामने रख और उग्र शब्दों—ज़ोर-से कभी किसी के साथ विवाद न कर।

यदि इतने पर भी किसी समय तुझे अप्रतिभ या शर्मिन्दा होना पड़े तो तू दुखित न हो और धीरज छोड़कर अपने गौरव-मुकुट को मलिन न बना। वरन् सब प्रकार के दुखों से उद्धार पाने के लिए केवल मुझ में अपनी आशान्वित दृष्टि को स्थिर कर क्योंकि मैं ही सबको कर्मों एवं भावों के अनुसार फल देता हूँ।

[३०]

विशुद्ध आत्म-विसर्जन

वत्स, आत्म-विसर्जन कर; इसी से तू मुझे पायेगा ।

हे प्रभु, मुझे कितनी बार एवं किन विषयों में आत्म-त्याग करना होगा ?

वत्स, सदा सब विषयों में त्याग स्वीकार कर; तू सदा सब बातों में स्वार्थरहित हो, यही मेरी अभिलाषा है। यदि अन्दर-बाहर दोनों से तू अपनी इच्छाओं का विसर्जन करेगा तभी तू मेरा होगा और मैं तेरा हो सकूँगा।

जितनी जल्द तू इसका साधन करेगा उतना ही तेरा मंगल होगा और जितनी ही पूर्णता एवं सरलता से तू इसे सम्पादन करेगा उतना ही अधिक मुझे संतुष्ट कर सकेगा।

कोई-कोई आंशिक भाव से आत्म-त्याग करते हैं, मुझ पर सम्पूर्ण रूप से निर्भर न करके द्विविधा में पड़े रहते हैं। कोई-कोई आरंभ में पूर्ण आत्म-विसर्जन करते हैं किन्तु कठिनाइयों से ऊबकर फिर पहले मार्ग पर आ जाते हैं।

पूर्ण रूप से आत्म-विसर्जन किये बिना किसी को भी अन्तःकरण-प्रसूत निर्मल सत्य अथवा मेरे प्रेम का मधुर प्रसाद नहीं मिल सकता और ऐसा हुए बिना मेरे साथ कोई स्थायी फलदायक सम्मिलन भी संभव नहीं है।

मैं पहले कई बार कह चुका हूँ और फिर कहता हूँ—"आत्म-त्याग के बिना कभी आन्तरिक शान्ति नहीं मिल सकती इसलिए हे वत्स, तू पूरी तरह से आत्म-विसर्जन कर; कोई कामना न कर, वदले में कुछ पाने की इच्छा न कर। श्रद्धा एवं विश्वास के साथ मुझमें ही अपने को नियोजित कर। इसीमे तू अस्पूर्ण असार वासनाओं, अकारण दुर्भावनाओं एवं अनर्थकारी चिन्ताओं के ऊपर उठ जायगा और सभे ही तू मुझे पा सकेगा।

[३१]

यश के प्रति अवज्ञा

वत्स, दूसरों के यश और उन्नति तथा अपनी निन्दा से क्षुब्ध न हो। अपना मन ऊपर, मेरी ओर, उठा; इससे संसार में मनुष्यों की अवज्ञा तुझे क्षुब्ध न कर सकेगी।

हे प्रभु, हम स्वयं ही अन्धकार में पड़े रहते हैं; हम में से बहुतेरे अहंकार द्वारा धोका खाते हैं।। जब मैं भलीभाँति अपने मन की परीक्षा करता हूँ तो यही कहना पड़ता है कि किसी और जीव ने मेरे साथ कोई अन्याय नहीं किया है। लज्जा और अवज्ञा जो मुझे भोगनी पड़ती है, मेरे ही कर्मों का फल है और यश एवं महिमा सब तेरी कृपा के फल हैं और उन पर तेरा ही अधिकार है।

हे नाथ, यदि मैंने अपने मन को मनुष्यों की अवज्ञा सहने, उनके द्वारा परित्यक्त होने तथा तुच्छ समझे जाने के लिए तैयार नहीं कर लिया है तो मैं आन्तरिक शांति एवं स्थिरता पाने अथवा अपनी आत्मा को दीप्तिमय बनाने में समर्थ न हो सकूँगा, न तुझ तक पहुँच सकूँगा।

मनुष्य-प्रदत्त शांति की असारता

वत्स, इसे भली-भाँति समझ ले कि चाहे कोई मनुष्य तेरे कितना ही मनोनुकूल एवं घनिष्ट हो, अपने शांति-लाभ के लिए उसके ऊपर निर्भर करना बिलकुल अविधेय है क्योंकि ऐसा होने पर तू शीघ्र ही विचलित होकर संसार के माया-जाल में फँस जायगा।

किन्तु यदि तू मुझे चिरस्थायी सत्य मानकर मेरा ही आश्रय लेगा तो इससे किसी प्रेमी, मित्र या बंधु के वियोग या मृत्यु के कारण तुझे दुःख न भोगना पड़ेगा।

अपने मित्र के प्रति जो तेरा अनुराग है उसे मुझमें ही केंद्रीभूत कर और चाहे जिसे भी तू सच्चा और प्रिय मान, पर उसे मेरे ही लिए प्रेम कर। मुझसे भिन्न मित्रता में कोई शक्ति या स्थायित्व नहीं है। और जो मेरे द्वारा संयोजित नहीं है वह प्रेमयोग्य, सत् एवं निर्मल नहीं है।

यदि तू अपने को नगण्य समझकर, सब प्रकार के पार्थिव प्रेम से अलग हो जायगा तो मैं तेरे अन्तःकरण में अपना अनुग्रह-स्रोत प्रवाहित करूँगा।

जब तू सृष्टि के जीवों की ओर देखता है तो स्रष्टा का मुख तेरी आँखों की ओट हो जाता है।

सामान्य विषयों में अवैध अनुराग का त्याग कर क्योंकि वे परमार्थ-साधन में विघ्न-रूप हैं और आत्मा में अपवित्र भावों का समावेश करते हैं।

[३३]

पार्थिव ज्ञान की असारता

वत्स, मनुष्यों के वाक्चातुर्य पर मुग्ध न हो । ईश्वर का राज्य बातों से नहीं पराक्रम से ही फैलता है। मेरी बातों पर ध्यान दे; वे हृदय और मन को प्रदीप्त करेंगी तथा तुझे सच्ची सान्त्वना प्रदान करेंगी ।

अधिक विद्वान् दिखने के लिए अध्ययन मत कर वरन् अन्तः-करण की पवित्रता बढ़ाने के लिए धर्मग्रन्थों का अध्य-यन कर ।

मैं ही मनुष्यों को प्रकृतज्ञान की शिक्षा देता हूँ और मनुष्य-द्वारा जो ज्ञान नहीं मिल सकता, उसे मैं अपने बच्चों को देता हूँ । जिसे मैं ज्ञान देता हूँ वह तुरन्त ज्ञानी और महात्मा हो जाता है और जो केवल मानवो ज्ञान के लिए व्याकुल होता है वह भ्रम में पड़कर दुःख भोगता है ।

दस साल विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करके भी सत्य के विषय में जो ज्ञान प्राप्त नहीं होता वह मैं अपने भक्तों को एक मुहूर्त में हृदयंगम करा देता हूँ ।

सम्पूर्ण पार्थिव विषयों को तुच्छ समझने, नित्यस्थायी वस्तुओं का अन्वेषण और आस्वादन करने, यश से दूर भागने,

अपमान सहन करने, अपनी सम्पूर्ण आशा मुझमें ही स्थापित करने, मेरे सिवा किसी और की इच्छा न करने और सब को छोड़कर केवल मेरी शरण में आने की शिक्षा मैं अपने भक्तों को देता हूँ।

मैं अनेक रूपों में ज्ञान देता हूँ। किसी से साधारण किसी से विशेष रूप से आलाप करता हूँ; किसी के निकट अपने को प्रतीक-द्वारा धीरे-धीरे और किसी के हृदय में स्पष्टरूप में मैं अपने सम्पूर्ण निगूढ़ रहस्यों को प्रकाशित करता हूँ।

पुस्तक तो एक ही होती है पर वह सब मनुष्यों को एक ही प्रकार शिक्षा नहीं देती; मैं ही सत्य का प्रकृत शिक्षक हूँ; हृदय में द्रष्टा हूँ; बुद्धि में अनुसंधानकारी हूँ; चिन्ता में विचारक हूँ और कार्य में कर्ता एवं सहायक हूँ। मैं जिसे जैसा समझता हूँ उसे वैसा ही ज्ञान देता हूँ।

[३४)

निन्दा-सहन में ईश्वर पर निर्भरता

वत्स, तू दृढ़तापूर्वक खड़ा हो, हर हालत में मुझपर निर्भर कर क्योंकि निन्दा के व्यर्थ वाक्य तेरा कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते। शब्द शब्द ही हैं; वे वायु में उड़ जाते हैं, पर पत्थर (के समान अटल हृदय) को घायल नहीं कर पाते।

वत्स, यदि तू दोषी हो तो आत्म-संशोधन का यत्न कर और यदि दोषी न हो तो भगवान् के लिए प्रसन्नचित्त से लोगों की निन्दा सहन कर।

तू कठिन प्रहार सहन करने के लिए अभी तक प्रस्तुत नहीं है सुतरां बीच-बीच में कुछ वाक्य-मंत्रणा सहन करके ज्ञानार्जन करना तेरा कर्त्तव्य है। तू अब भी संसार में आसक्त है और मानवी प्रशंसा अब भी तेरे हृदय को अच्छी लगती है। अपमानित होने के भय से तू अपने दोषों को स्वीकार करने का साहस नहीं दिखाता या उनकी सफाई देने की चेष्टा करता है।

पर यदि तू भलीभांति अपनी परीक्षा करेगा तो तुझे मालूम होगा कि तुझमें जगत् एवं मनुष्य को सन्तुष्ट करने की असार वासना अब भी जीवित है।

जब तू तुच्छ समझे जाने या अपने दोष के लिए अपमानित होने

के भय से अपने को छिपाता है तब स्पष्ट ही जाना जा सकता है कि तुझमें सच्ची नम्रता नहीं आई है, न जगत् के प्रति त पूर्णतः अनासक्त है।

वत्स, तू सावधानी के साथ मेरे आदेशों का अनुसरण कर; इससे तू मनुष्य के हजारों निन्दा-वाक्यों से भी विचलित न होगा। तेरे विरुद्ध जितनी कटु बातें कही जाती हों, तू उनकी ओर ध्यान न दे और उन्हें धूलिवत् समझ। इससे सारी निन्दा मिलकर भी तेरा एक बाल बाँका न कर सकेगी।

किन्तु जिसका आध्यात्मिक जीवन पुष्ट नहीं है, जिसे ईश्वर दिखाई नहीं देता वह व्यक्ति निन्दा की साधारण बात से भी सहज ही क्षुब्ध हो जाता है। जो पूरी तरह मुझपर ही निर्भर करते हैं वे सम्पूर्ण भय से मुक्त हो जाते हैं।

मैं ही न्यायी विचारक हूँ; मैं सबके हृदय के गुप्त तत्त्वों का विचार करता हूँ; मुझे निन्दा के सब गुप्त स्रोत मालूम हैं। जो निन्दा—हानि—करता है उसे मैं जानता हूँ और जो सहन करते हैं उन्हें भी मैं जानता हूँ।

मुझ से ही उन सब वाक्यों का जन्म होता है जो मनुष्य के अन्तःकरण की गुप्त चिन्ता को प्रकाशित करते हैं। यह सब मेरी ही अनुमति के अनुसार घटित होता है। मैं दोषी और निर्दोष का विचार करूँगा किन्तु गुप्त विचार-द्वारा पहले दोनों को अपनी परीक्षा करने का अवसर मैं देता हूँ।

मनुष्य के साक्ष्य से प्रायः भ्रम पैदा हो जाता है किन्तु मेरा निर्णय सच्चा और न्यायपूर्ण होता है, स्थिर रहता है और कभी नष्ट नहीं होता।

मेरा विचार सबके लिए गुप्त और रहस्यपूर्ण है; बहुत थोड़े लोगों को विशेष अवसरों पर थोड़ा-बहुत उसका पता लगता है।

जो सच्चे आत्म-ज्ञानी हैं, जिन्होंने मुझे पूर्णतः आत्मार्पण कर दिया है वे प्रत्येक बात में ईश्वर की इच्छा देखते हैं, इसलिए व्याकुल नहीं होते। यदि उन पर किसी झूठे दोष का आरोप कभी किया जाता है तो भी वे उधर ध्यान नहीं देते। यदि प्रमाण से निर्दोषता सिद्ध हो जाय तो भी वे उल्लसित नहीं होते।

मैं कभी बाहरी दृष्टि से, बाहरी बातों को लेकर, विचार नहीं करता, लोगों के हृदय को देखता हूँ। इसीलिए मनुष्य के विचार से जो प्रशंसनीय गिना जाता है वह अनेक बार मेरी दृष्टि से निन्दनीय होता है।

"हे प्रभु, हे मेरे स्वामी, तू ही सच्चा विचारक है। तू मनुष्यों की दुर्बलता और दुष्टता को जानता है। तू ही मेरा बल है, तू ही मेरी आशा है।

जो-कुछ मैं नहीं जानता, वह तुझे मालूम है इसलिए निन्दित होने पर भी शान्तिपूर्वक मुझे जीवन बिताना उचित है।

हे नाथ, इस सम्बन्ध में यदि मुझसे कुछ अन्यथा व्यवहार हुआ हो तो दया करके उसे तू क्षमा कर और आगे आनेवाली परीक्षाओं में अविचलित रह सकूँ, ऐसी शक्ति मुझे प्रदान कर।"

अनन्त जीवन के लिए कष्ट-सहन

वत्स, तूने मेरे लिए जो श्रम अङ्गीकार किया है, उसमें थक कर मत बैठ। देख, दुःख-कष्ट कहीं तुझे नीचे न गिरा दें। यदि तू ध्यान रक्खेगा तो मेरी प्रतिज्ञा हर हालत में तुझे शक्ति और सान्त्वना प्रदान करेगी। मैं तुझे परिमाणातीत पुरस्कार प्रदान कर सकता हूँ। तुझे अधिक दिन तक कष्ट और दुःख का भार नहीं उठाना पड़ेगा। धीरज रख और प्रतीक्षा कर। शीघ्र ही तेरे समस्त दुःखों का नाश हो जायगा।

एक समय ऐसा आवेगा जब सारे दुःख-कष्ट और अशान्ति का अन्त हो जायगा। उसमें थोड़ा ही विलम्ब है, समय-चक्र घूमते क्या देर लगती है ?

मेरे द्राक्षा-उपवन में तू जो परिश्रम कर रहा है उसे उद्योगपूर्वक करता जा। तेरे परिश्रम का पुरस्कार मैं स्वयं हूँ।

तू लिख, पढ़, गा, शोक कर, नीरव रह, प्रार्थना कर तथा आपदाओं को वीर की तरह सहन कर। अनन्त जीवन इन सब युद्धों वरन् इनसे भी घोरतर युद्धों-द्वारा ही प्राप्त होता है।

मैं जानता हूँ, एक दिन तुझे शान्ति मिलेगी। उस समय न दिन रहेगा, न रात। केवल अनन्त प्रकाश, असीम उज्ज्वलता, स्थायी शान्ति और चिर-विश्राम ही रह जायगा। उस समय तुझे यह कहने की आवश्यकता न पड़ेगी कि "इस नश्वर शरीर से मेरा उद्धार कौन करेगा ?" मृत्यु दूर जा गिरेगी, जरा-मरण-हीन स्वास्थ्य प्राप्त होगा, कोई चिन्ता नहीं होगी और सब आनन्दमय हो जायगा।

मेरा विचार सबके लिए गुप्त और रहस्यपूर्ण है; बहुत थोड़े लोगों को विशेष अवसरों पर थोड़ा-बहुत उसका पता लगता है।

जो सच्चे आत्म-ज्ञानी हैं, जिन्होंने मुझे पूर्णतः आत्मार्पण कर दिया है वे प्रत्येक बात में ईश्वर की इच्छा देखते हैं, इसलिए व्याकुल नहीं होते। यदि उन पर किसी झूठे दोष का आरोप कभी किया जाता है तो भी वे उधर ध्यान नहीं देते। यदि प्रमाण से निर्दोषता सिद्ध हो जाय तो भी वे उल्लसित नहीं होते।

मैं कभी बाहरी दृष्टि से, बाहरी बातों को लेकर, विचार नहीं करता, लोगों के हृदय को देखता हूँ। इसीलिए मनुष्य के विचार से जो प्रशंसनीय गिना जाता है वह अनेक बार मेरी दृष्टि से निन्दनीय होता है।

"हे प्रभु, हे मेरे स्वामी, तू ही सच्चा विचारक है। तू मनुष्यों की दुर्बलता और दुष्टता को जानता है। तू ही मेरा बल है, तू ही मेरी आशा है।

जो-कुछ मैं नहीं जानता, वह तुझे मालूम है इसलिए निन्दित होने पर भी शान्तिपूर्वक मुझे जीवन बिताना उचित है।

हे नाथ, इस सम्बन्ध में यदि मुझसे कुछ अन्यथा व्यवहार हुआ हो तो दया करके उसे तू क्षमा कर और आगे आनेवाली परीक्षाओं में अविचलित रह सकूँ, ऐसी शक्ति मुझे प्रदान कर।"

[३५]

अनन्त जीवन के लिए कष्ट-सहन

वत्स, तूने मेरे लिए जो श्रम अङ्गीकार किया है, उसमें थक कर मत बैठ। देख, दुःख-कष्ट कहीं तुझे नीचे न गिरा दें। यदि तू ध्यान रक्खेगा तो मेरी प्रतिज्ञा हर हालत में तुझे शक्ति और सान्त्वना प्रदान करेगी। मैं तुझे परिमाणातीत पुरस्कार प्रदान कर सकता हूँ। तुझे अधिक दिन तक कष्ट और दुःख का भार नहीं उठाना पड़ेगा। धीरज रख और प्रतीक्षा कर। शीघ्र ही तेरे समस्त दुःखों का नाश हो जायगा।

एक समय ऐसा आवेगा जब सारे दुःख-कष्ट और अशान्ति का अन्त हो जायगा। उसमें थोड़ा ही विलम्ब है, समय-चक्र घूमते क्या देर लगती है?

मेरे द्राक्षा-उपवन में तू जो परिश्रम कर रहा है उसे उद्योगपूर्वक करता जा। तेरे परिश्रम का पुरस्कार मैं स्वयं हूँ।

तू लिख, पढ़, गा, शोक कर, नीरव रह, प्रार्थना कर तथा आपदाओं को वीर की तरह सहन कर। अनन्त जीवन इन सब युद्धों वरन् इनसे भी घोरतर युद्धों-द्वारा ही प्राप्त होता है।

मैं जानता हूँ, एक दिन तुझे शान्ति मिलेगी। उस समय न दिन रहेगा, न रात। केवल अनन्त प्रकाश, असीम उज्ज्वलता, स्थायी शान्ति और चिर-विश्राम ही रह जायगा। उस समय तुझे यह कहने की आवश्यकता न पड़ेगी कि "इस नश्वर शरीर से मेरा उद्धार कौन करेगा?" मृत्यु दूर जा गिरेगी, जरा-मरण-हीन स्वास्थ्य प्राप्त होगा, कोई चिन्ता नहीं होगी और सब आनन्दमय हो जायगा।

[३६]

अनन्त जीवन के लिए व्याकुलता

अहा, उस उच्च नगरी में रहना कितना आनन्ददायक है। अहा, अमरता का वह उज्ज्वल दिन, जिसे कोई रात अन्धकारमय नहीं बनाती और जहाँ सर्वोच्च सत्य सदा प्रकाशमान है, सब-कुछ आनन्दमय, स्थिर और कभी (विरुद्ध दिशा में) बदलने वाला नहीं है। वह दिन यदि एक बार हमारे सामने प्रकाशित हो जाता तो समस्त पार्थिव विषयों का वहीं अन्त हो जाता।

हाय, हमारे जीवन में जो बुराइयाँ आ गई हैं उनका अन्त कब होगा ? कब मैं पाप की कष्टकर गुलामी से उद्धार पाऊँगा ? हे प्रभु, कब मैं केवल तुझमें ही मन लगाऊँगा ? कब मैं तुझमें निमग्न होकर आनन्दमय हो जाऊँगा ? कब पूर्ण मुक्ति के मार्ग की सारी बाधायें चकनाचूर हो जायँगी और शरीर एवं आत्मा के सारे दोष दूर हो जायँगे। कब मैं अचञ्चल शान्ति, निरापद एवं निश्चित शान्ति, भीतर-बाहर की शान्ति—चारों ओर से अक्षुण्ण रहने वाली शान्ति पाऊँगा।

हे प्रभु, कब मैं तेरा प्रत्यक्ष दर्शन करूँगा ? हे राजा, कब मैं तेरे स्वर्गीय राज्य की विभूतियों को देख पाऊँगा ? कब मैं तेरे पास रहकर तेरे राज्य का माधुर्य पान कर सकूँगा, जिसे तू अपने प्रेमियों को सदा से पिलाता आया है। मैं दीन-हीन, शत्रुओं के देश में पड़ गया हूँ जहाँ नित्य युद्ध और दुर्दैव से सामना करना पड़ता है। हे स्वामी, तू मुझे इस अवस्था में सान्त्वना दे, हमारे दुःख को कम कर। मेरे प्राण की नस-नस में तुझे पाने की उत्कण्ठा भरी हुई है। मैं संसार की सान्त्वना नहीं चाहता, दुनिया जो कुछ मुझे दे सकती है, वह तो मुझे एक बोझ लगता है।

मैं हृदय के गम्भीर प्रदेश में तेरा संभोग करना चाहता हूँ किन्तु मैं तुझे पकड़ नहीं पाता। स्वर्गीय विषयों में लीन होने की मेरी बड़ी इच्छा है पर शारीरिक इच्छायें एवं अदम्य वासनायें मुझे सर्वदा दुर्बल एवं भारग्रस्त बना देती हैं। मैं मन में सम्पूर्ण अनित्य विषयों के ऊपर उठने का संकल्प करता हूँ पर भरसक चेष्टा करने पर भी गिर पड़ता हूँ। मैं अभागा अपने साथ ही युद्ध करता हूँ और अपने ही लिए कष्ट-दायक हो उठता हूँ। मेरी आत्मा तो ऊँचे—बहुत ऊँचे जाना चाहती है पर मेरा शरीर नीचे ही रहने की चेष्टा करता है। हाय, जब मैं दिव्य एवं चिरस्थायी विषयों का विचार करता हूँ और अपने को इतना दुर्बल और पतित पाता हूँ तो हृदय में कैसी व्यथा होती है !

हे मेरे ईश्वर, तू मुझ से दूर न हो और मेरी गलतियों के कारण मुझे परित्याग न कर। हे नाथ, अपना वज्र गिरा कर उन्हें

छिन्न-भिन्न कर; अपना वाण चलाकर मेरे अन्तःशत्रुओं की कल्पना को व्यर्थ कर दे।

हे दयामय, मेरी समस्त इन्द्रियों को संयत करके उन्हें अपनी ओर आकर्षित कर। जगत के सम्पूर्ण विषयों को मेरे मनसे विस्मृत होने दे और मैं शीघ्र सम्पूर्ण पापपूर्ण अभिलाषाओं का त्याग कर सकूँ, ऐसी शक्ति मुझे दे।

हे नित्यस्थायी सत्य, मेरी सहायता कर जिससे नाना प्रकार के अहंभाव मुझे विचलित न कर सकें। हे स्वर्गीय माधुर्य, मेरे पास आकर प्रकाशित हो और अपने श्रीमुख के प्रकाश एवं सौन्दर्य से मेरी सम्पूर्ण अपवित्रता दूर कर दे।

हे नाथ, हमें क्षमा कर और जब प्रार्थना के समय तेरे सिवा और कोई चिन्ता मेरे हृदय में आवे तो मेरे साथ क्षमा का व्यवहार कर और मुझे धीरज दे। मैं सचमुच ही अनेक चिन्ताओं से कातर हो उठता हूँ। अनेक बार जहाँ मेरा शरीर रहता है, वहाँ मेरा मन नहीं रहता, वह अन्य स्थानों पर दौड़ता रहता है। जहाँ मेरे विचार रहते हैं, मैं भी वहीं रहता हूँ और मेरी प्रवृत्ति जिस रास्ते पर दौड़ती है, मेरे विचार भी उसी रास्ते पर दौड़ते हैं। जो बात सुख देती है या अभ्यास के कारण मुझे संतुष्ट करती है, वह जल्द मेरे मन में आ जाती है। इसीलिए हे सत्य-स्वरूप, तू ने स्पष्ट ही कहा है—"जहाँ तेरा धन है, वहीं तेरा मन है।"

यदि मैं स्वर्ग को चाहता हूँ तो स्वर्गीय वस्तुओं पर विचार करने में मुझे प्रसन्नता होती है। यदि मैं दुनिया को चाहता हूँ तो

दुनिया के सुखों में सुखी होता—भूल जाता—हूँ और उसके दुःखों में दुःखी होता हूँ। यदि मैं शरीर को प्यार करता हूँ तो प्रायः उन्हीं विषयों की चिन्ता करता हूँ जो शरीर से सम्बन्ध रखती हैं। यदि मैं आत्मा को प्यार करता हूँ तो आध्यात्मिक वस्तुओं के बारे में विचार करने में एक प्रकार का आह्लाद होता है। जिस चीज़ को मैं प्यार करता हूँ उसी के बारे में बोलने और सुनने की इच्छा करता हूँ और उसी की चिन्ता मेरे हृदय में निवास करती है।

किन्तु हे प्रभु, धन्य है वह मनुष्य जो तेरे लिए सम्पूर्ण जगत् से अनासक्त हो जाता है, अपने स्वभाव को संयत रखता है और आत्म-शक्ति से सम्पूर्ण शारीरिक अभिलाषाओं को विजय कर लेता है। ऐसी अवस्था में ही वह स्थिरचित्त होकर तेरे उद्देश्य में अपनी बलि चढ़ाता है और अन्तर-बाह्य सब को सकल कामनाओं से रहित करके तुझ में ही स्थित हो जाता है।

[३७]

आत्मार्पण

वत्स, जिस सीमा तक कोई आत्म-त्याग करेगा, उस सीमा तक मुझे प्राप्त होगा।

जैसे बाह्य विषयों में कामना-शून्य हो जाने पर आन्तरिक शान्ति उत्पन्न होती है, उसी प्रकार हृदय से त्याग करने पर तू मुझे प्राप्त करेगा। मेरा आदेश है कि तू तर्क और विवाद का त्याग करके मेरी इच्छा के अधीन रह कर पूर्णतया मुझे आत्मार्पण कर।

वत्स, मेरा अनुगमन कर क्योंकि मैं ही मार्ग, सत्य और जीवन हूँ। याद रख, मनुष्य मार्ग के बिना ठीक स्थान पर पहुँच नहीं सकता, सत्य के बिना जान नहीं सकता और जीवन के बिना जी नहीं सकता।

मैं ही मार्ग हूँ, मेरा अनुगमन कर। मैं ही सत्य हूँ, मुझ में श्रद्धा कर। मैं ही जीवन हूँ, मुझ में अपनी सम्पूर्ण आशाओं को नियोजित कर। मैं अभ्रान्त पथ हूँ, मैं अमिट सत्य हूँ, मैं अनन्त जीवन हूँ। मैं ही सब से सरल पथ हूँ, मैं ही सर्वोच्च सत्य हूँ और मैं ही प्रकृत, आनन्दमय और असृष्ट जीवन हूँ।

यदि तू मेरे मार्ग से चलेगा तो उसके द्वारा तू सत्य को जान सकेगा और सत्य तुझे मुक्त करेगा और तू अनन्त जीवन लाभ कर सकेगा।

वत्स, यदि तू इस जीवन को पाना चाहता है तो मेरी आज्ञाओं का पालन कर।

यदि सत्य को जानना चाहता है तो मुझमें विश्वास कर।

यदि सिद्ध (पूर्ण) होना चाहता है तो तेरे पास जो कुछ है उसका त्याग कर।

यदि मेरा भक्त होना चाहता है तो मुझे पूर्णतः आत्मार्पण कर।

यदि जीवन धन्य करना चाहता है तो इस (सांसारिक) जीवन को तुच्छ समझ।

हे प्रभु, तेरा मार्ग कठिन है तो भी मैं उस पर चलूँगा, मुझे शक्ति दे। मैं तो अति क्षुद्र हूँ। स्वामी की अपेक्षा दास और गुरु की अपेक्षा शिष्य तो सदा ही छोटा है।

दयामय, अपने दास का पवित्र जीवन के अनुशीलन और अनुसरण में अभ्यस्त होने दे। इसी में मेरा उद्धार है, क्योंकि इसी से मैं पवित्रता लाभ कर सकूँगा।

वत्स, जितना तूने पढ़ा या जाना है यदि उसी का पालन कर तो तू बहुत सुखी हो सकेगा।

जो कोई मेरी आज्ञा सुनकर उसका पालन करता है वही मुझे प्रेम करता है। उसी को मैं प्रेम करता हूँ और उसी के निकट अपने को प्रकाशित करता हूँ।

[३८]

पतन में निराशा उचित नहीं

वत्स, आनन्द के समय अधिक शान्ति एवं भक्ति प्रकट करने की अपेक्षा, दुःख के समय धैर्य एवं नम्रता मेरे निकट अधिक संतोषजनक है।

अपने विरुद्ध कही गई छोटी-छोटी बातों के लिए तू इतना व्यथित क्यों होता है ? यदि इससे भी कठोर बातें कही जायँ तो भी दुखित और विचलित होना तेरे लिए उचित नहीं।

तू निराश न हो, तेरे जीवन में यह कोई नई घटना नहीं है। अनेक बार तू दुःख उठा चुका है और जबतक जीवित रहेगा तबतक अनेक बार ऐसी घटनायें होती रहेंगी।

जब प्रतिकूल घटनायें नहीं घटतीं, तेरे साहस में कमी नहीं आती। उस समय तो तू सत्परामर्श दे सकता है; अपने शब्द से दूसरों को सबल कर सकता है किन्तु जिस समय कोई दुःख-कष्ट तेरे द्वार पर हठात् उपस्थित होता है, जब तू प्रतिकूल घटनाओं के कारण दुःखी होता है तब तू बिलकुल ही दुर्बल और हतबुद्धि हो जाता है।

वत्स, देख तेरी दुर्बलता कैसी प्रबल है; सामान्य घटनाओं, मामूली परीक्षाओं के आते ही बाहर निकल पड़ती है।

किन्तु याद रख, यह सब परीक्षा तेरे कल्याण के लिए ही होती

है इसलिए जब कोई ऐसी दुःखद या प्रतिकूल घटना घटे तो जहाँतक सम्भव हो दृढ़तापूर्वक उस दुर्बलता को तू हृदय से उखाड़ फेंकने के लिए कमर कस ले और दुःख से यदि तेरा चित्त चंचल हो उठे तो इसके लिए तू निराश न हो, और देरतक अपने को व्याकुल न होने दे। यदि तू आनन्द-पूर्वक ऐसी परीक्षाओं को सहन न कर सके तो शान्ति एवं धीरज के साथ उन्हें सहन कर।

धैर्य के साथ कष्टों को सहन करने की बात सुनने में तुझे कड़वी लगेगी या उसे सुनकर तुझे क्रोध आयेगा, फिर भी आत्म-दमन का अभ्यास कर। कोई अनुचित बात तेरे मुँह से न निकले, इसका सदा ध्यान रख।

जो आँधी इस समय तेरे मन में उठ रही है, वह शीघ्र ही शान्त हो जायगी और भगवान् की कृपा से तेरे हृदय के सब दुःख मधुर हो जायँगे।

मैं सदा तेरे पास वर्तमान और जाग्रत हूँ। पूर्णतः आत्मार्पण करके (भक्तिपूर्वक) पुकारने वालों के लिए मैं सदा सहा-यता करने एवं सान्त्वना देने के लिए प्रस्तुत रहता हूँ।

मन को शान्त रख, धीरज धारण कर और अधिक सहन करने के लिए सदा प्रस्तुत रह।

यदि तेरे मन में यह आता है कि 'मैं सर्वदा ही कष्ट पाता रहता हूँ और बड़े प्रलोभनों एवं परीक्षाओं में पड़ गया हूँ' तो भी इसे भलिभाँति समझ ले कि तू भगवान् की कृपा से सर्वथा वंचित नहीं हो गया है। हाँ, यह अवश्य है कि तू मनुष्य है, मांसमय है, ईश्वर नहीं।

शोकार्त्त लोगों को मैं ही निर्विघ्नता एवं स्वस्थता प्रदान करता हूँ और जो मेरे सामने अपनी दुर्बलता स्वीकार करते हैं उन्हें मैं ही दिव्य जीवन की ओर उठाता हूँ।

"हे प्रभु, तेरे शब्द मंगलकारी हैं। वे मधु से भी मीठे और सुस्वादु हैं। यदि तू अपने पवित्र वाक्यों से मुझे सान्त्वना न प्रदान करता तो ऐसे कठिन दुःख एवं क्लेश में मैं क्या करता?

हे प्रभु, मेरी अन्तिम अवस्था जिससे उत्तम हो और इस संसार से प्रस्थान के समय मेरा पथ सुगम हो, ऐसी कृपा कर। हे स्वामी, मेरी ओर ध्यान दे और तेरे पास तक जो मार्ग जाता है उसपर मुझे ले चल।"

[३६]

यह तो मानवी राग है !

वत्स, मनुष्य-मात्र का स्वभाव है कि किसी न किसी सन्त या महात्मा की ओर वे अधिक आकर्षित हो जाते हैं और उसकी प्रशंसा में ही लग जाते हैं किन्तु इससे भी अनेक बार ईश्वर-प्रेम की अपेक्षा मनुष्य के प्रति आसक्ति ही अधिक व्यक्त होती है ।

मैंने ही सब पवित्र सन्तों का निर्माण किया है; मैंने ही अपनी कृपा से उन्हें धन्य किया है, मैंने ही उन्हें ऊँचा उठाया है ।

मुझे प्रत्येक का यथार्थ मूल्य और योग्यता मालूम है; मैं ही अपने मधुर आशीर्वाद से रास्ता दिखाता हूँ । सन्तों ने मुझे मनोनीत नहीं किया है, मैंने सन्तों को मनोनीत किया है ।

मैं ही अपनी विभूतियों से उनका आवाहन करता हूँ; मैं ही अपनी कृपा से उन्हें आकर्षित करता हूँ और मैं ही अनेक परीक्षाओं एवं प्रलोभनों से उनका उद्धार करता हूँ ।

मैं ही उनके हृदय में गौरवपूर्ण सान्त्वना की वर्षा करता हूँ; मैं ही सदा उन्हें सत्कर्म में लगाता हूँ; मैं ही उन्हें धैर्य का मुकुट पहनाता हूँ ।

मैं उनमें से प्रथम को जानता हूँ और अन्तिम को भी जानता हूँ लेकिन मैं तो उनमें से सभी को असीम प्रेम से आलिंगन करता हूँ । इसलिए जो कोई मेरे किसी क्षुद्रतम भक्त की

अवज्ञा करता है, वह बड़े की भी इज्जत नहीं करता। मैंने किसी तात्पर्य से ही क्षुद्र एवं महान् दोनों को पैदा किया है।

जो कोई सन्तों या महापुरुषों में से एक की भी निन्दा करता है वह मेरी तथा मेरे सब भक्तों की निन्दा करता है। इन सब का एक ही प्रेम-बंधन है; इनकी भावना एक है तथा ये सब एकता एवं प्रेम के सूत्र में बँधे हुए हैं।

सब सन्त अपने सकल गुणों की अपेक्षा मुझे ही अधिक प्रेम करते हैं और स्वार्थ एवं आत्म-प्रेम से दूर रहने के कारण मुझे शीघ्र आत्मार्पण कर पाते हैं। वे मुझे ही सर्व सिद्धियों का मूल मानकर मुझमें ही आश्रय एवं विश्राम ग्रहण करते हैं।

जगत् में कोई चीज़ भी उनको मुझसे हटाकर दूसरी ओर नहीं ले जा सकती। कोई भी पदार्थ उन्हें पराजित नहीं कर सकता क्योंकि नित्यस्थायी सत्य से पूर्ण होकर उनके हृदय में कभी न बुझनेवाली प्रेम की अग्नि जलती है।

जो लोग स्वार्थ को छोड़ दूसरी वस्तुओं को प्रेम नहीं कर पाते, ऐसे सांसारिक बुद्धि के व्यक्ति भगवद्भक्तों एवं सन्तों के विषय में तर्क-वितर्क करते हैं; यह अनुचित है। ऐसे लोग नित्यस्थायी सत्य का विचार अपनी कल्पना के अनुसार अतिरंजित करके करते हैं। ऐसे व्यक्ति मानवी राग के कारण किसी मनुष्य की ओर अधिक खिंच जाते हैं और जिस प्रकार वह संसार को देखते हैं, उसी प्रकार गूढ़ आध्यात्मिक बातों की भी कल्पना कर लेते हैं।

योगी एवं महापुरुष समाधिस्थ हो अपनी प्रकाशमय चित्शक्ति से जिस सत्य का अनुभव करते हैं उस के पास तक अपूर्ण तार्किक मनुष्यों की कल्पना पहुँच नहीं सकती।

इसलिए हे वत्स, मिथ्या कुतूहल के लिए अपने ज्ञान एवं अधिकार की सीमा से बाहर की किसी वस्तु में हस्तक्षेप न कर। कौन अधिक पवित्र है, कौन दिव्य आनन्द-राज्य के निवासियों में सर्वश्रेष्ठ है, इसके विवाद में न पड़। तू इस तर्क-वितर्क से दूर रहकर यह देख कि तेरे अन्दर आध्यात्मिकता की कैसी कमी है और पापमयी वासनाओं की कैसी अधिकता है। इससे तू मेरे निकट शीघ्र पहुँचने में समर्थ होगा।

जो पवित्र हैं, सन्त हैं वे अपने गुणों पर फूलते नहीं। वे अपनी उत्तमता का स्रोत मुझे ही मानकर मुझको ही आत्मार्पण करते हैं। वे मेरे प्रति सदा ही प्रेम और आनन्द से परिपूर्ण रहते हैं। उन्हें सुख का अभाव नहीं होता; अभाव हो भी नहीं सकता।

[४०]

ईश्वर-निर्भरता

हे प्रभु, इस जीवन में मेरे आश्रय का दूसरा कौन स्थान है? मंगलमय, क्या तू ही मेरे सन्तोष का स्रोत नहीं है? तेरे सिवा और कहाँ मेरा मंगल होगा? जबतक तू उपस्थित है मेरा अकल्याण क्यों होगा?

तुझे छोड़ कर धनवान् होने की अपेक्षा तेरे साथ दरिद्र होना ही मेरे लिए सुखदायक है। तुझे छोड़ स्वर्ग में रहने की अपेक्षा तेरे साथ पृथ्वी का यात्री बना रहना मेरे लिए अधिक सुखद है। जहाँ तू है, वहीं स्वर्ग है; जहाँ तू नहीं है वहाँ मृत्यु और नरक है।

तू ही मेरी आकांक्षा है इसलिए प्राण के समस्त उच्छ्वास और व्याकुलता के साथ तेरे लिए रोना, तड़पना और प्रार्थना करना आवश्यक है।

हे स्वामी, तेरे सिवा और किसी में मेरा पूर्ण विश्वास नहीं है। तू ही मेरी आशा है, तू ही मेरा साहस है, तू ही मेरी सान्त्वना है और हर अवस्था में तू ही मेरा परम बंधु है।

संसार में और सब तो अपने स्वार्थों में लगे हुए हैं, केवल तू ही मेरा त्राता है; केवल तू ही मेरी उन्नति की कामना करता और विभिन्न अनुकूल-प्रतिकूल घटनाओं द्वारा मेरा मंगल साधन करता है। मेरे जीवन में नाना प्रकार के दुःख एवं प्रलोभन आते हैं पर वे सब मेरे ही कल्याण के लिए।

हे प्रभु, तुझ में ही मैंने अपनी सारी आशा स्थापित की है, जो कुछ मेरा कहा जा सकता है वह सब मैं तुझे अर्पण करता हूँ; तेरे सिवा जो कुछ है वह सब चंचल और शक्तिहीन है।

हे नाथ, तेरी कृपा, अनुकूलता, सहायता, शक्ति और सान्त्वना बिना संसार में सबकुछ दुर्लभ है। तू समस्त उत्तमता का आकर है, तू ही जीवन की उच्चता है, तू ही प्रज्ञा की गम्भीरता है इसलिए तुझमें ही अपनी आशा स्थापित करता हूँ। हे पिता, मेरे अन्तश्चक्षुओं को खोलदे, अपने आशीर्वाद के अमृत से मेरे अन्तःकरण को तृप्त एवं पवित्र कर जिससे वह तेरी स्थायी महिमा का मन्दिर बन जाय।

सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर के प्रकाशन

१—दिव्य-जीवन ।=)
२—जीवन-साहित्य (दोनों भाग) १।)
३—तामिलवेद ॥।)
४—शैतान की लकड़ी अर्थात् व्यसन और व्यभिचार ॥।=)
५—सामाजिक कुरीतियाँ ॥।)
६—भारत के स्त्री-रत्न (दोनों भाग) १॥।-)
७—अनोखा ! १।=)
८—ब्रह्मचर्य-विज्ञान ॥।-)
९—यूरोप का इतिहास (तीनों भाग) २)
१०—समाज-विज्ञान १॥)
११—खद्दर का सम्पत्ति-शास्त्र ॥।≡)
१२—गोरों का प्रभुत्व ॥।=)
१३—चीन की आवाज़ ।-) (अप्राप्य)
१४—दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह (दो भाग) १।)
१५—विजयी बारडोली २)
१६—अनीति की राह पर (गांधीजी) ।≡)
१७—सीताजी की अग्नि-परीक्षा ।-)
१८—कन्या-शिक्षा ।)
१९—कर्मयोग ।=)
२०—कलवार की करतूत =)
२१—व्यावहारिक सभ्यता ।)॥
२२—अँधेरे में उजाला ।≡)
२३—स्वामीजी का बलिदान ।-)
२४—हमारे ज़माने की गुलामी ।)
२५—स्त्री और पुरुष ॥)
२६—घरों की सफाई ।) (अप्राप्य)
२७—क्या करें ? (दो भाग) १॥=)
२८—हाथ की कताई-बुनाई (अप्राप्य) ॥=)
२९—आत्मोपदेश ।)

२०—यथार्थ आदर्श जीवन
(अप्राप्य) ॥-)
२१ जब अंग्रेज नहीं आये थे— ।)
२२—गंगा गोविन्दसिंह ॥=) (अप्राप्य)
२३—श्रीरामचरित्र १।)
२४—आश्रम-हरिणी ।)
२५—हिन्दी-मराठी-कोष २)
२६—स्वाधीनता के सिद्धान्त ॥)
२७—महान् मातृत्व की ओर— ॥=)
२८—शिवाजी की योग्यता ।=) (अप्राप्य)
२९—तरंगित हृदय „ ॥)
४०—नरमेध १॥)
४१—दुखी दुनिया ॥)
४२—ज़िन्दा लाश ॥)
४३—आत्म-कथा (गांधीजी) दो खण्ड सजिल्द १॥)
४४—जब अंग्रेज़ आये (ज़ब्त) १।=)
४५—जीवन-विकास अजिल्द १।) सजिल्द १॥)

४६—किसानों का बिगुल =) (ज़ब्त)
४७—फाँसी ! ॥)
४८—अनासक्तियोग तथा गीताबोध ।=)
अनासक्तियोग श्लोकसहित =)॥
४९—स्वर्ण-विहान (नाटिका) (ज़ब्त) ।=)
५०—मराठों का उत्थान और पतन २॥) स० जि० ३)
५१—भाई के पत्र— अजिल्द १॥) सजिल्द २)
५२—स्व-गत— ।=)
५३—युग-धर्म (ज़ब्त) =)
५४—स्त्री-समस्या अजिल्द १।।।) सजिल्द २)
५५—विदेशी कपड़े का मुक़ाबला ॥=)
५६—चित्रपट ।=)
५७—राष्ट्रवाणी ॥=)
५८—इंग्लैण्ड में महात्माजी १)
५९—रोटी का सवाल १)
६०—दैवी सम्पद् ।=)
६१—जीवन-सूत्र ।॥)

जब अंग्रेज़ आये—

[श्री अक्षयकुमार मैत्रेय के बंगला ग्रन्थ 'मीरकासिम' का अनुवाद]

सस्ता-साहित्य-मण्डल
अजमेर

'त्यागभूमि'

"× × × आजकल नाम के बराबर काम नहीं होता। मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि 'त्याग-भूमि' इस बुरी आदत को दूर करने का प्रयत्न करेगी। ×"

मोहनदास गांधी

"हिन्दी में त्यागभूमि जैसी सुसम्पादित पत्रिका देखकर मुझे प्रसन्नता होती है। × × मैं चाहता हूँ कि वह चिरजीवी हो।"

मदनमोहन मालवीय

"× × मेरी राय में हिन्दी में सब से अच्छी पत्रिका 'त्यागभूमि' है। × "

जवाहरलाल नेहरू

संपादक

हरिभाऊ उपाध्याय

वार्षिक मूल्य

४)

जब अंग्रेज़ आये—

लेखक

श्री अक्षयकुमार मैत्रेय

भूमिका-लेखक

श्री केदारेश्वर भट्टाचार्य एम० ए०,

(अध्यापक ब्रिटिश भारतीय इतिहास,

हिन्दू-विश्वविद्यालय, काशी)

अनुवादक

श्री रामनाथलाल 'सुमन'

प्रकाशक
जीतमल लूणिया
सस्ता-साहित्य-मण्डल
अजमेर

प्रथम बार २०००	१९३०	मू० १।=) सजिल्द १॥)

मुद्रक
जीतमल लूणिया
सस्ता-साहित्य प्रेस.
अजमेर

दो शब्द

श्री अक्षयकुमार मैत्रेय भारत के उन प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ताओं में से हैं जो प्रचलित पुस्तकों को ही प्रमाण न मान, मूल कागज़-पत्रों का अन्वेषण कर सिद्धान्त स्थिर करते हैं। उनका 'सिराजुद्दौला' इतिहास-प्रिय समाज में खूब आदर पा चुका है।

अक्षय बाबू की शैली खास उनकी है। वह क्रोध नहीं उत्पन्न करती; चुभती है और चुभकर अपनी स्थिति पर मन में करुणा एवं ऊपर उठने का भाव उत्पन्न करती है। उसमें प्रवाह है।

यह एक जुदा सवाल है कि ऐसी शैली का इतिहास में प्रयोग किया जाय या नहीं। इसमें मतभेद है और हो सकता है। कुछ इतिहास-वेत्ताओं के मत से इतिहास आवेश, क्रोध, घृणा या दया के ऊपर की चीज़ है। वहाँ इनका प्रवेश न होना चाहिए। बात बुरी नहीं और शायद एक दृष्टि से बहुत अच्छी और ऊँची है पर प्रश्न रह जाता है कि फिर दर्शनशास्त्र से भिन्न इतिहास की आवश्यकता क्या है? और इतिहास के पाठक तो साधारण हाड़-मांस के बने मनुष्यों में से ही आते हैं, और उनके लेखक भी वहीं से। फिर मनुष्य के जीवन पर आस-पास के वातावरण का जो प्रभाव पड़ता है उसी के अनुसार उसकी मनोवृत्तियां भी बनती हैं और जैसी उसकी मनोवृत्तियाँ होती हैं, उसीके अनुकूल वह वस्तुओं को ग्रहण भी करता है। मैं यह मानने के लिए तैयार नहीं हूँ कि हैवेल और विन्सेण्ट-स्मिथ इन कमज़ोरियों (Prejudices) से परे थे और न मैं

यही मानने को तैयार हूँ कि यदुनाथ सरकार, जायसवाल या भण्डारकर कुछ पूर्वाधारों को लेकर विचार नहीं करते या अपने अनेक संस्कारों एवं पारम्परिक विचारों से रहित हैं।

फिर इतिहास से लाभ भी तो आदमी, अपनी, अपने देश या विश्व की अवस्था और परिस्थिति के अनुसार ही उठाता है। इस प्रकार इतिहास के दृष्टि-बिन्दुओं में भेद होना स्वाभाविक है। फिर 'मीरक़ासिम', जैसा कि स्वतः उसके लेखक अक्षय बाबू अपनी प्रस्तावना में कहते हैं, 'इतिहास नहीं, एक ऐतिहासिक चित्र है।'

× × ×

इस पुस्तक के अनुवाद कार्य में अनुज श्यामलाल (बी० ए०) तथा स्नेहभाजन बंधु श्री कैलासपति त्रिपाठी (बी० ए०) से बड़ी सहायता मिली है। इन्हें धन्यवाद देना इनके उस स्नेह का अपमान करना है जो बहुत गुप्त और मूक स्वीकृति—'अप्रीसियेशन'—चाहता है।

पुस्तक का अनुवाद करने की आज्ञा देकर श्री एस० मैत्रेय ने मुझे उपकृत किया है तथा, समय न होते हुए भी, एक सुन्दर भूमिका लिखकर हिन्दू-विश्वविद्यालय के ब्रिटिश भारतीय इतिहास के अध्यापक श्री केदारेश्वर भट्टाचार्य महोदय ने मुझपर कृपा दिखाई है। इसके लिए इनका उपकार मानता हूँ। सस्ता-मण्डल के व्यवस्थाकों की कृपा से ५—६ साल से पड़ी हुई इस पुस्तक का जीर्णोद्धार हुआ है अतः वे धन्यवाद के पात्र हैं।

गांधी-आश्रम, हटुण्डी (राजपूताना) — श्री रामनाथलाल 'सुमन'

प्रस्तावना

'साहित्य' एवं 'भारती' नामक (बँगला) पत्रिकाओं में मीरजाफ़र तथा मीरकासिम-सम्बन्धी मेरे जो लेख प्रकाशित हुए थे, उनका ही, संशोधन और परिवर्द्धन के पश्चात्, इस पुस्तक में संग्रह किया गया है। पुस्तक में आये हुए वर्णनों की ऐतिहासिकता सिद्ध करने के लिए प्रामाणिक ग्रंथों के मूल अवतरण भी दे दिये गये हैं।

मीरकासिम जिस युग में उत्पन्न हुए थे, वह बंगाल के इतिहास का विस्मयपूर्ण विप्लवयुग कहा जाता है। पुरातन दूर होता जा रहा था और उसकी जगह नूतन अपना अधिकार जमा रहा था;—ऐसे समय मीरकासिम ने पुरातन को बाँध रखने की चेष्टा की थी। वह चेष्टा बुरी थी या भली, इसका इस ग्रंथ से सम्बन्ध नहीं है। किस प्रकार पुरातन नष्ट हो गया एवं किस प्रकार उस नूतन का अभ्युदय हुआ, यही कार्य-कारण की शृंखला के साथ इस ग्रंथ में दिखलाया गया है।

इतिहास एवं ऐतिहासिक चित्र में अन्तर है। इतिहास पूर्ण

यही मानने को तैयार हूँ कि यदुनाथ सरकार, जायसवाल या भण्डारकर कुछ पूर्वाधारों को लेकर विचार नहीं करते या अपने अनेक संस्कारों एवं पारम्परिक विचारों से रहित हैं।

फिर इतिहास से लाभ भी तो आदमी, अपनी, अपने देश या विश्व की अवस्था और परिस्थिति के अनुसार ही उठाता है। इस प्रकार इतिहास के दृष्टि-बिन्दुओं में भेद होना स्वाभाविक है। फिर 'मीरक़ासिम', जैसा कि स्वतः उसके लेखक अक्षय बाबू अपनी प्रस्तावना में कहते हैं, 'इतिहास नहीं, एक ऐतिहासिक चित्र है।'

× × ×

इस पुस्तक के अनुवाद-कार्य में अनुज श्यामलाल (बी० ए०) तथा स्नेहभाजन बंधु श्री कैलासपति त्रिपाठी (बी० ए०) से बड़ी सहायता मिली है। इन्हें धन्यवाद देना इनके उस स्नेह का अपमान करना है जो बहुत गुप्त और मूक स्वीकृति—'अप्रीसियेशन'—चाहता है।

पुस्तक का अनुवाद करने की आज्ञा देकर श्री एस० मैत्रेय ने मुझे उपकृत किया है तथा, समय न होते हुए भी, एक सुन्दर भूमिका लिखकर हिन्दू-विश्वविद्यालय के ब्रिटिश भारतीय इतिहास के अध्यापक श्री केदारेश्वर भट्टाचार्य महोदय ने मुझपर कृपा दिखाई है। इसके लिए इनका उपकार मानता हूँ। सस्ता-मण्डल के व्यवस्थाकों की कृपा से ५–६ साल से पड़ी हुई इस पुस्तक का जीर्णोद्धार हुआ है अतः वे धन्यवाद के पात्र हैं।

गांधी-आश्रम, हटुण्डी (राजपूताना) } श्री रामनाथलाल 'सुमन'

प्रस्तावना

'साहित्य' एवं 'भारती' नामक (बँगला) पत्रिकाओं में मीरजाफ़र तथा मीरकासिम-सम्बन्धी मेरे जो लेख प्रकाशित हुए थे, उनका ही, संशोधन और परिवर्द्धन के पश्चात्, इस पुस्तक में संग्रह किया गया है। पुस्तक में आये हुए वर्णनों की ऐतिहासिकता सिद्ध करने के लिए प्रामाणिक ग्रंथों के मूल अवतरण भी दे दिये गये हैं।

मीरकासिम जिस युग में उत्पन्न हुए थे, वह बंगाल के इतिहास का विस्मयपूर्ण विप्लवयुग कहा जाता है। पुरातन दूर होता जा रहा था और उसकी जगह नूतन अपना अधिकार जमा रहा था;—ऐसे समय मीरकासिम ने पुरातन को बाँध रखने की चेष्टा की थी। वह चेष्टा बुरी थी या भली, इसका इस ग्रंथ से सम्बन्ध नहीं है। किस प्रकार पुरातन नष्ट हो गया एवं किस प्रकार उस नूतन का अभ्युदय हुआ, यही कार्य-कारण की शृंखला के साथ इस ग्रंथ में दिखलाया गया है।

इतिहास एवं ऐतिहासिक चित्र में अन्तर है। इतिहास पूर्ण

होता है; ऐतिहासिक चित्र पूर्ण नहीं होता। चित्र में सम्पूर्ण अंश समान भाव से विकसित नहीं हुआ करता।

ऐसा नहीं है कि मीरकासिम का कुछ अपराध ही नहीं था तथापि उनमें गुण का भी अभाव नहीं था। स्वदेश के शिल्प-वाणिज्य की रक्षा के लिए उत्सुक न होने पर मीरकासिम का इस प्रकार सर्वनाश न होता।

वंग-बिहार उड़ीसा के अन्तिम स्वाधीन मुसलमान नवाब ने प्रजा-रक्षा के लिए ही अत्म-विसर्जन किया था;—यही मीरकासिम के इतिहास की प्रधान कथा है। उस कथा की इस पुस्तक में यथासाध्य आलोचना की गई है। बस।

राजशाही
भाद्र, १३१२ (बंगला) साल। } श्रीअक्षयकुमार मैत्रेय

भूमिका

अठारहवीं सदी के प्रारम्भ में कृतज्ञ शाहंशाह फर्रुखसियर ने पूर्वीय उदारता और उससे भी अधिक पूर्वीय लापरवाही के कारण अपने अंग्रेज डाक्टर की सेवाओं के पुरस्कार-स्वरूप ईस्टइण्डिया कम्पनी को मुगल-राज्य में सर्वत्र व्यापार करने के लिए बड़ी से बड़ी रियायत दे दी। शाही फ़रमान ने अंग्रेजों को माल पर चुंगी देने से मुक्त कर दिया। इसके बदले वे थोड़ा-सा रुपया सालाना सुलतान को दे दिया करते थे। शासन-सूत्र जब मुगलों के हाथ से निकल गया तो बंगाल के अयोग्य और नाममात्र के सूबेदारों ने शाही फ़रमान का अर्थ बिलकुल उसके शब्दों के अनुसार ही लिया। कम्पनी के माल पर, चाहे वह बाहर से मँगवाया जाय या बाहर भेजा जाय चुंगी नहीं लगती थी। अन्तर्प्रान्तीय व्यापार इस चुंगी से मुक्त नहीं था लेकिन कम्पनी के कारिन्दे चोरी से अन्तर्प्रान्तीय व्यापार में भी भाग लेते थे और उन लोगों को कम्पनी का माल ले जाने के लिए जो लाइसेन्स मिले थे उन्हें दिखाकर और झूठ बोलकर चुंगी देने में बेईमानी करते थे। शाही फ़रमान का यह अनुचित उपयोग पलासी युद्ध में हार हो जाने के बाद तो और भी बढ़ गया। सिराजुद्दौला, जो यह जानता ही न था कि मन पर संयम रखना किसे कहते हैं, अपने राज्य की शक्ति और गौरव के पुनरुत्थान के लिए अत्यन्त उत्सुक था। बिना सोचे-समझे उसने

कम्पनी से युद्ध मोल ले लिया और अपने पैरों में स्वयं ही कुल्हाड़ी मार ली। बस फिर क्या था। कम्पनी के कारिन्दों की आमदनी का सबसे बड़ा जरिया अन्तर्प्रान्तीय व्यापार में भाग लेना ही हो गया। अब सन् १७१५ के फ़रमान से यह अर्थ भी निकाल लिया गया कि कम्पनी के नौकर-चाकर बाहरी और अन्दरूनी दोनों प्रकार के व्यापारों में चुंगी से मुक्त हैं। मीरजाफ़र इस पर कभी-कभी क्रोध कर बैठता था और चिढ़ भी जाता था परन्तु अधिकार-प्रमत्त क्लाइव उसे डरा-धमकाकर या फुसलाकर चुप कर देता था। देश अकाल-पीड़ित था, जुलाहे अंग्रेजों के ठेके से कष्ट पा रहे थे और अंग्रेजों के साथ विशेष रियायतें होने के कारण भारतीय व्यापार नष्ट होता जा रहा था। नवाब को कर्ज़ लेना पड़ रहा था और यूरोपीय व्यापारियों के व्यवहार से दिवाला निकलने की नौबत आ रही थी। अंग्रेजों ने नवाब को खूब लूटा-खसोटा। यहां तक कि बेचारा बिलकुल ही नंगा-भूखा हो गया। जब सब-कुछ इन विदेशी अंग्रेज व्यापारियों ने मीर जाफ़र से चूस लिया और उसके पास इनकी लालसा-तृप्ति की सामग्री न रही तो कम्पनी के संरक्षण में मीरजाफ़र के स्थान पर मीरकासिम बिठाया गया। वांसिटार्ट और उसके मित्रों ने अपनी नीति का यह उत्तम पाठ क्लाइव और डूप्ले से बखूबी ग्रहण किया था।

परन्तु इस षड्यंत्र के जो परिणाम निकले उनसे मालूम हो गया कि खिलाड़ी यहां चूक गये और मीरकासिम-जैसे चतुर आदमी को सिंहासन पर बिठाकर उन्होंने बड़ी ग़लती की। मसनद पर बैठते ही यह प्रत्यक्ष हो गया कि मीरकासिम मीरजाफ़र की

तरह छिछले स्वभाव का आदमी नहीं है और न वह सिराजुदौला की तरह अदूरदर्शी और प्रतिहिंसा के भाव से अन्धा हो जाने वाला है। मीरकासिम एक योग्य और देशभक्त मनुष्य था जिसमें बुद्धि और दूरदर्शिता भरी थी। उसने अंग्रेजों की गुलामी का जुआ उतार फेंकने का दृढ़ निश्चय कर लिया। धीरे-धीरे वह स्वतंत्र नीति काम में लेने लगा। एक जागीरदार होना अच्छा, लेकिन नाम का शहंशाह होने में कौन-सा गौरव है? वर्दवान, चटगांव और मिदनापुर की भूमि अंग्रेजों को देकर वह उनके ऋण से मुक्त हो गया। तब उसने अपनी राजधानी मुँगेर में स्थापित की, जो कलकत्ता के पास है। फिर धीरे-धीरे उसने आर्मेनी अफ़सर रखकर अपनी सेना में और खास कर तोपखाने में सुधार आरंभ किया। इसके बाद उसने कड़ाई से टैक्स वसूल करना, उन अयोग्य अफ़सरों और मंत्रियों को निकालना, जिनपर अंग्रेज दबाव डाल सकते थे, और उन महाजनों पर पूरी निगरानी रखना जिनका कारोबार अंग्रेजों से होता था—इत्यादि उपाय शनैः-शनैः काम में लाना प्रारम्भ किया। कम्पनी के कारिन्दों के अनुचित व्यवहार और बेईमानी को रोकने के लिए उसने अनेक प्रयत्न किये परन्तु उससे अंग्रेजों की द्वेषाग्नि भड़क उठी क्योंकि भारतीय शासन पलासी के युद्ध के बाद से घृणा और अनादर की वस्तु हो गया था। अंग्रेज लोग देशी सल्तनत के अधीन रहना भूल चुके थे। जिस प्रकार का वर्ताव एलिस ने पटना में किया वह क्लाइव की विजय के बाद से अंग्रेजों के उग्र स्वभाव के बढ़े-चढ़े रूप का एक उदाहरण है।

इसके विपरीत नवाब ने यह निश्चय कर लिया था कि मैं

बंगाल की आर्थिक परतंत्रता दूर करूंगा और अंग्रेजों को १७१५ के शाही फरमान का वही अर्थ मानने को बाध्य करूंगा जो पलासी की लड़ाई के पूर्व समझा जाता था। इसलिए अब यह सम्भव नहीं था कि कम्पनी को पान, नमक इत्यादि का व्यापार केवल 'दस्तक' या लाइसेंस के बल पर करने दिया जाय। सारे इतिहासकार (सिवाय डाडवेल के) इस बात को मानते हैं कि कम्पनी के कारिंदों का अपना निजी व्यापार डाइरेक्टरों-द्वारा सम्मत नहीं था और शाही फ़रमान के अनुसार तो बिना चुंगी दिये माल ले जाना सरासर न्याय को तिलांजलि देना था। परन्तु एक बार जब उन लोगों ने इस रियायत का उपभोग कर लिया और राज्य ने भी इस बुराई को बर्दाश्त कर लिया तो जिन लोगों को इससे लाभ होता था उन्होंने इसे न्यायोचित अधिकार ही मान लिया।

कलकत्ता के कौंसिलर, जिनमें व्यावहारिकता बिलकुल नहीं थी, समझते थे कि नवाब की मांग स्वीकार करने का अर्थ हुआ, बंगाल में से बृटिश शासन का उखड़ जाना। उनकी बुद्धि में इसके सिवाय कुछ भी न आता था कि ऐसा करने से हमारी सत्ता चली जायगी और वही पलासी के युद्ध के पहले वाले दिन आ जायँगे जब कि अंग्रेजों को व्यापार में अपेक्षाकृत हानि उठानी पड़ती थी और उनके व्यापार का भली प्रकार चलना नवाब की इच्छा पर निर्भर था। इसलिए प्रश्न वास्तव में यह था कि 'किसकी सत्ता रहे।' कम्पनी और मीरकासिम के लिए यह जीवन-मरण का प्रश्न था। क्लाइव ने इस सत्ता पर विजय द्वारा अधिकार कर लिया था और अब उसके उत्तराधिकारियों के

लिए यह असंभव था कि नवाब के मांगने पर सारे अधिकार लौटा दिये जायँ।

इतने दिनों तक अंग्रेजों के हाथ में सारी शक्ति रहने से वे प्रमत्त हो गये थे। उन लोगों में से बहुत कम में (जैसे वार्न-हैस्टिंग्ज़ और वांसिटार्ट में) थोड़ी-बहुत समझदारी रह गई थी परन्तु अधिकांश कौंसिलरों का तो यही निश्चय था कि सर न झुकाया जाय। उन लोगों ने वांसिटार्ट की नवाब से समझौता करने की बात बिलकुल न सुनी और इसी पर अड़े रहे कि सन १७१५ के शाही फ़रमान के अनुसार उन्हें बाहरी और अन्दरूनी दोनों प्रकार के व्यापार के लिए बिना चुंगी दिये माल ले जाने की छूट है, यद्यपि उन्होंने इस शर्त को स्वीकार कर लिया कि नमक पर २½ प्रतिशत चुंगी दे देंगे।

तब नवाब ने यह चाल चली कि निजी व्यापार के माल पर से बंगाल में चुंगी बिलकुल ही उठा दी। कलकत्ता की अंग्रेजी कौंसिल भड़क उठी। इस आम छूट ने तो फ़रमान के अनुसार दिये गये उनके सारे विशेष अधिकारों पर ही पानी फेर दिया। नवाब को समझाने एजेण्ट मुंगेर भेजे गये। इस बीच में कुछ ऐसी घटनायें हो गईं जिनसे नवाब की क्रोधाग्नि पर घी पड़ गया और पटना में एलिस पर ही सारा गुस्सा उतारा गया। परिणाम-स्वरूप युद्ध, जो अनिवार्य था, समय से पहले ही छिड़ गया।

परिणामों को दोहराना अनावश्यक है। मीरक़ासिम के कार्य में कोई षड्यंत्र बाधक नहीं हुआ जैसा कि सिराज के साथ किया गया था। मीरजाफ़र को छोड़कर क़रीब सारे देश ने

मीरकासिम का साथ दिया था। उधवानाला और बक्सर के युद्ध पलासी की लड़ाई की तरह खेल नहीं थे। परन्तु भाग्य उलटा था। नवाब की तैयारी पूर्ण होने के पहले ही युद्ध प्रारंभ हो गया। परिणाम अंग्रेजों की विजय हुई। शायद दूसरी बार विप्लव करना संभव नहीं था और उससे देश को लाभ होने की भी आशा नहीं थी।

बंगाल के कुशल इतिहासकार, इस पुस्तक के लेखक, ने मुग़ल-शासन के अन्तिम दृश्य का चित्र बड़े मर्मस्पर्शी शब्दों में खींचा है। अक्षय बाबू ने ही पहले-पहल कालकोठरी की घटना के विरुद्ध संदेहात्मक प्रमाण खोजे थे, जो कि ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है, अधिक जोरदार होते जाते हैं। मीरकासिम का उनका अध्ययन भी इतिहास की ग़लतफ़हमी दूर करने के लिए है। हम लोग मीरकासिम के चरित्र, नीति और कार्यों को अंग्रेज इतिहासकारों की दृष्टि से देखते हैं। हम यह नहीं कहते कि सारी बातें हमारे अनुकूल ही लिखी जायँ। परन्तु इस काल के इतिहास का अध्ययन करने से और भी नवीन सामग्री प्राप्त हुई है। 'पर्शियन कैलेण्डर' में दोनों ओर के पत्रों का उत्तम संग्रह है, जिससे अंग्रेजों की तात्कालिक कुटिल नीति तथा मीरकासिम का सदाशयता प्रकट होती है।

इस पुस्तक का अनुवाद करके श्रीयुत रामनाथलाल 'सुमन' ने हिंदी की अच्छी सेवा की है और साथ ही साथ इतिहास के निरपेक्ष विद्यार्थी के लिए हिन्दी में सामग्री उपलब्ध करने में सहायता दी है। आशा है कि यह अनुवाद वास्तविक इतिहास की जांच-पड़ताल की इच्छा हिंदी भाषा-भाषी जनता में जाग्रत करेगा

और इससे इस विषय की मदरसों में पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों में सुधार करने में भी सहायता मिलेगी। पुस्तक को पढ़कर हमें अपनी दुर्बलताओं से सचेत हो जाना चाहिए क्योंकि अंग्रेजों की विजय का मूल कारण उन लोगों की कूटनीति और षड्यंत्र ही नहीं हैं, बल्कि हमारे जातीय और व्यक्तिगत चरित्र की दुर्बलतायें और दोष भी हैं। हम 'सुमन'जी को हार्दिक धन्यवाद देते हैं कि उन्होंने हिन्दी-भाषी जनता के सामने इस प्रकार की उच्चकोटि की पुस्तक प्रस्तुत की है। हमें इसमें संदेह नहीं है कि शिक्षित जनता उनके परिश्रम का आदर करेगी।

हिन्दू-विश्वविद्यालय
काशी } **केदारेश्वर भट्टाचार्य**

भारत में अंग्रेज़ी राज्य का आरम्भ

भारत में अंग्रेज़ी राज्य के आरम्भ का इतिहास ऐसी धोकेबाज़ियों, षड्यंत्रों, ज़ुल्मों और चरित्र-हीनताओं से भरा हुआ है कि अन्य देशों के इतिहासों के पन्नों में उनकी मिसाल नहीं मिल सकती। आज शक्ति हाथ में आ जाने के कारण जो अंग्रेज़ अधिकारी और भारतीय सभ्यता की हँसी उड़ाने वाले विदेशी प्रचारक-गण, भारतीयों की चारित्रिक दुर्बलता के सच्चे-झूठे क़िस्से गढ़कर और बड़े गर्व से कहने का अधिकार लेकर दुनिया के सामने रखने को उत्सुक हैं; जो न केवल शारीरिक वरन् चारित्रिक दृष्टि से भी भारतीयों को अपने से अधम समझते हैं, मुझे विश्वास नहीं है कि वे भारतीय साम्राज्य के आरम्भ की कहानी पढ़कर देर तक सर ऊँचा किये रह सकते हैं। अंग्रेज़ों के विश्वासघात और जालसाज़ी के नमूनों से विगत तीन सौ वर्षों और विशेषतः ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी के शासनकाल का इतिहास भरा पड़ा है।

हम आज गुलाम हैं; हमसे कहा जाता है कि यदि तुम्हारा चरित्र दुर्बल न होता और हम तुमसे श्रेष्ठ न होते तो तुम पराजित और पराधीन ही क्यों होते? बात चुभनेवाली है और सत्य से खाली भी नहीं। हम मानते हैं कि हमारे यहाँ अमीचन्द-जैसे भी कितने ही थे पर हम ज़ोर देकर कहना चाहते हैं कि अमीचन्द

के विश्वासघात की तुलना क्लाइव के विश्वासघात से नहीं की जा सकती। अमीचन्द ने जब अपने भारतीय शासक के प्रति विश्वासघात करके अंग्रेजों की सहायता की तब उन्हें अंग्रेजी चरित्र में विश्वास था; तब वह समझते थे कि अंग्रेज बात के सच्चे निकलेंगे। वह क्या जानते थे कि अंग्रेजी साम्राज्य-विस्तार के इतिहास के पन्ने धोकेबाजी की स्याही से ही काले किये जाने वाले हैं। चोरों और डाकुओं में भी ज़बान एक चीज समझी जाती है पर चाहे मीरजाफर के साथ हो या मीरकासिम के, हैदरअली के साथ हो या मराठों के, अंग्रेज अपनी बात के पक्के कभी साबित न हुए। इसीलिए भारत में अंग्रेजी शासन का इतिहास जिन्होंने अच्छी तरह पढ़ा और समझा है, वे सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हमारा राज्य चले जाने का एक बहुत बड़ा कारण हमारा भोलापन और सादगी थी जो बहुत जल्द दूसरों की बात पर विश्वास कर लेती थी। पर जहाँ धोका देकर काम बना लेना राजनीति का चरम विकास समझा जाता हो, वहाँ के अधिवासियों से चारित्रिक आदर्श के सम्बन्ध में बहस करना महज फ़िजूल है!

इंग्लैण्ड के इतिहास में क्लाइव का नाम बड़े आदर के साथ आता है। वह ब्रिटिश साम्राज्य का जन्मदाता और राष्ट्र का आदर्श वीर कहा जाता है। हम मानते हैं कि क्लाइव अंग्रेजी राष्ट्र का वह प्रतीक (Symbol) था जिसके रूप में पहली बार हमने इंग्लिस्तान को देखा। यह क्लाइव वही था जिसके सम्बन्ध में अंग्रेज-इतिहासलेखकों तक को लिखना पड़ा है कि धोकेबाजी उसकी आदत में दाखिल थी और धोका देने में उसे कभी

पश्चात्ताप या दुःख न होता था। यह वह क्लाइव था जिसने, यह जानते हुए भी कि इंग्लैण्ड में जालसाज़ी की सज़ा प्राणदण्ड है, पार्लमेण्ट की जाँच-समिति के सामने बड़े अभिमान के साथ अपनी धोकेबाज़ियों और षड्यन्त्रों का ज़िक्र किया था और यह इंग्लैण्ड का ही चारित्रिक आदर्श था कि दण्ड देने के बजाय, एक दूसरे देश में, एक दूसरे राजा के राज्य में (जिसने अंग्रेजों को अतिथि के योग्य आदर के साथ शरण दी) जालसाज़ी करने के पुरस्कार-स्वरूप उसे 'लार्ड' की उपाधि दी गई, उसकी मूर्ति खड़ी की गई और उसके सम्मान में तमग़े डाले गये।

× × ×

अंग्रेज भारत में या तो बाइबिल लेकर आये या व्यापार की गठरी लादे हुए। पहले वर्ग ने महात्मा ईसाके पवित्र नाम पर और दूसरे ने व्यापार-विस्तार के नाम पर भारतीय जनता के साथ क्या-क्या नहीं किया ? पादरियों के लम्बे चोगों के भीतर भी वही कवच था जिसे व्यापार की आड़ में व्यापारी अंग्रेजों ने उस समय तक छिपा रक्खा था जबतक उनके हाथों में उसे प्रकट करने को ताक़त नहीं आ गई। इतिहास के साधारण विद्यार्थी धर्म-प्रचारकों और व्यापारियों के इस गूढ़ सम्बन्ध को शायद न समझें पर अंग्रेजों के भारतीय साम्राज्य का उद्भव इन दोनों को ही लेकर हुआ है। पहले वर्ग का रूप धार्मिक एवं सांस्कृतिक आवरणों से ढका था इसलिए उसे पहचानना सरल काम न था और दूसरे वर्ग का सम्बन्ध सीधे देश के राजा या शासक से होने के कारण वह सहज ही आँखों में चढ़ गया।

यह एक आश्चर्यजनक बात है कि भारत में अंग्रेजों का

प्रवेश सबसे पहले हुआ तो भारत के पश्चिमी तट पर किन्तु उनके साम्राज्य की नींव बंगाल में पड़ी। इसका कारण यह है कि एक तो बंगाल, विद्रोह की अवस्था में और बहुत अरक्षित-सा था और दूसरे उसमें उपज की बहुत अधिकता होने के कारण व्यापार के लिए अधिक सुविधायें थीं; धनका अधिक आकर्षण था। इसके अतिरिक्त एक बड़ा कारण यह भी है कि मुग़ल-साम्राज्य के ह्रास के साथ-साथ पश्चिमी तट पर मराठों की शक्ति बढ़ती गई; उनकी जल-सेनासे मुठभेड़ करना अंग्रेज़ों के लिए उतना आसान नहीं था जितना दुर्बलकाय बंगालियों को धोका देकर या उनमें फूट डालकर उन्हें पराजित कर लेना। इसलिए अंग्रेज़ों की दृष्टि बंगाल की ओर शुरू से ही लग गई।

❀ ❀ ❀

बंगाल में अंग्रेजों के श्रीचरण औरंगजेब के काल में पड़ने शुरू हुए। इसके पहले बम्बई में भी वहां की प्रजा पर इनके अत्याचार इतने बढ़ गये थे कि औरंगजेब ने इनकी कोठियां जब्त कर लेने और इन्हें इस देश से मारकर निकाल बाहर करने की आज्ञा दे दी थी। सूरत इत्यादि की कोठियाँ जब्त करके इन्हें निकाल बाहर भी किया गया पर ये इतने चपट थे कि बम्बई की कोठियों के घिरने पर झट औरंगजेब के चरणों पर गिर पड़े; माफ़ी माँगी और नेकचलनी का वादा किया। औरंगजेब बेचारा, जो एक जबर्दस्त और कठोर शासक होने पर भी, आखिर हिन्दुस्तानी ही था, इनके चकमे में आ गया और उसने न केवल इनकी कोठियाँ वापिस कर दीं वरन् १६९९ में अपनी कोठियों की रक्षा के लिए साधारण क़िलेबंदी करने की भी आज्ञा दे दी। पीछे

उसके पौत्र आज़मशाह ने (जो बंगाल का सूबेदार था) हुगली नदी के तट के तीन गाँवों (कलकत्ता, गोविन्दपुर और छूतानटी) की जागीर कम्पनी को दे दी।

यह जागीर ही हमारे लिए काल बन गई। यहीं से अंग्रेज़ी राज्य की नींव का पड़ना आरम्भ होता है। पीछे कलकत्ता में, इसी जागीर के अन्दर, क़िला (फ़ोर्ट विलियम) बनाया गया।

औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद मुग़ल-साम्राज्य अपने आन्तरिक विद्रोह के कारण छिन्न-भिन्न होने लगा और १७६१ की पानीपत की लड़ाई में भारतीय शासन का साफ़-साफ़ अन्त हो गया। इस अशान्त अवस्था के अन्दर अंग्रेज़ों की महत्वाकांक्षा बराबर बढ़ती ही गई। क़िलेबंदियाँ हुईं; फिर सेना रक्खी जाने लगी; धीरे-धीरे उस सेना के द्वारा देशी कारीगरों और किसानों को अपने स्वार्थ के लिए तंग किया जाने लगा। किसी को पकड़वाकर पिटवा देना एक मामूली बात हो गई! किसान अत्याचारों से त्राहि-त्राहि करने लगे; देशी कारीगर इनके ज़ुल्मों से ऊबकर भाग खड़े हुए। देश का उद्योग-व्यापार नष्ट हो चला। यह इन विदेशी बनियों को शरण और सहायता देने का पुरस्कार था!

बातें बढ़ती गईं, फल-स्वरूप १७५७ में पलासी का वह विख्यात युद्ध बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला और अंग्रेज़ों के बीच हुआ जिससे अंग्रेज़ी सल्तनत का पाया इस देश में पहली बार मज़बूती के साथ बैठ गया। कुछ देश-द्रोही भारतीयों के विश्वासघात* और अपनी चालबाजी के कारण अंग्रेज इस युद्ध

* इस युद्ध में सिराजुद्दौला की विजय निश्चित-सी थी पर उसके प्रधान सेनापति मीरजाफर तथा सहायक सेनापति दुर्लभराम और

में विजयी हुए; सिराजुद्दौला की जगह मीरजाफ़र गद्दी पर बिठाया गया।

मीरजाफ़र एक स्वार्थी और बुद्धू आदमी था, जैसा कि विश्वासघाती और देशद्रोही प्रायः हुआ करते हैं। उसमें वह नैतिक साहस कहाँ से आ सकता था जो सिद्धान्तों के ऊपर मर मिटने वालों में हुआ करता है। एक बूढ़ा, आरामतलब, स्वार्थी आदमी था, जो स्वतंत्र राजा होने की महत्वाकांक्षा रखते हुए भी, खतरों से दूर रहकर ऐशो-इशरत की ज़िन्दगी बिताना चाहता था। इसलिए गद्दी पर बैठने के बाद भी वह आजकल की उन मूर्तियों के समान हो गया जिन्हें पुजारी तथा पंडे टके वसूल करने के लिए अपनी इच्छानुकूल स्थापित करते और बदलते रहते हैं। बङ्गालरूपी मन्दिर के जड़वत् अधिपति मीरजाफ़र का क्लाइव प्रधान पंडा था। मीरजाफ़र का काम इतना ही रह गया कि वह चुपचाप महल में पड़ा रहे और अपने पण्डे अंग्रेज़ अधिकारियों की जेबें भरता रहे। उसके गद्दी पर बैठते ही, लगभग ७३ लाख रुपये तो कलकत्ता की अंग्रेज़-कमेटी के पास पहुँच गये। यह धन ७०० सन्दूकों में भरकर १०० नावों के सहारे कलकत्ता पहुँचा। मतलब यह कि मुर्शिदाबाद का ख़ज़ाना कलकत्ता की अँग्रेज-कोठी में, बिना किसी झगड़े-झंझट के पहुँच गया। क्लाइव के मित्र इतिहासकार ओर्मी ने ठीक ही लिखा है कि 'पहले कभी अँग्रेज-जाति को एक साथ इतना अधिक नक़द धन नहीं मिला था।'* सचमुच अँग्रेजों की चाँदी

यारलुत्फ़खां ४५००० सेना लेकर युद्ध के बीच, ऐन वक्त पर, अंग्रेज़ों की ओर मिल गये। इनसे पहले ही समझौता हो चुका था।

* Orme's History of Indostan, Vol II, pp. 187—88.

थी। मीरजाफ़र-जैसे निकम्मे और दुर्बल शासक भारत के इतिहास में बहुत थोड़े हुए होंगे। न तो उसमें दबंगपन था, न राजकीय तेजस्विता थी और न दूरदर्शिता। इसी से चिढ़कर एक दिन व्यंग में उसके परिहासप्रिय मुसाहब मिर्जा शमशेरउद्दीन ने उसे 'क्लाइव का गधा' की उपाधि दी थी। इसमें सन्देह नहीं कि मीरजाफ़र की सम्पूर्ण जीवन-विधि इस उपाधि के सर्वथा योग्य थी। इन दो शब्दों में उसके जीवन का जो विश्लेषण हुआ है। उसका प्रायः सभी कुशल इतिहासलेखकों ने समर्थन किया है। धोबियों के गधे जिस प्रकार सुबह से शाम तक बोझ ढोकर संध्या समय रूखी-सूखी घास छोड़ और कुछ खाने को नहीं पाते, अंग्रेजों का बोझा ढोने जाकर, बंगाल बिहार-उड़ीसा के सिंहासन पर पदार्पण करके भी, मीरजाफ़र को वही विडम्बना भोगनी पड़ी। गद्दी पर बैठने के पूर्व जिस सुख की कल्पना उसने की थी वह भी पूरी न हुई। राज्याधिकारी तक उसकी ओर न देखकर क्लाइव और अंग्रेज अफसरों के इशारों पर नाचने लगे। मानो सब कुछ होकर भी उसका कुछ नहीं था। जो अंग्रेज अभी चन्द साल पहले मुर्शिदाबाद की सड़कों पर चलते समय डर से काँपते रहते थे, वे आज दुर्बल 'क्लाइव का गधा' को गद्दी पर बिठाकर उसकी आड़ में उच्छृंखलता का ताण्डव-नृत्य करने लगे। व्यापार का नाश होने लगा; ख़ज़ाने में रुपया नहीं रह गया। उधर अंग्रेजों की धन की प्यास दिन-दिन बढ़ती गई; 'लाओ, लाओ' का स्वर तीव्रतर हो गया। मीरजाफ़र घबड़ा गया। खजाने में रुपया नहीं; देश का व्यापार नष्ट हो जाने से राज्य की आय का स्रोत भी बन्द हो चला। इसलिए

शासन-कार्य चलाना ही असंभव होने लगा। तब मीरजाफ़र अपने पापों का स्मरण करके कांप उठा। उसे भी समझते देर न लगी कि इतनी कठिनाइयों के बाद जो राज-सिंहासन मिला; जिसके लिए दया-धर्म, कर्त्तव्य-बुद्धि, स्नेह-ममता सबको पैरों तले कुचलकर, कुरान को स्पर्श करके झूठी क़सम खाने में भी लज्जा न की वही पैरों के नीचे है किन्तु कोई स्वतंत्र अस्तित्व रखने वाला शासक उसका स्वामी नहीं वरन् क्लाइव ही उसका वास्तविक मालिक है और मैं उसका बोझ ढोकर पाप की कमाई करने वाला गुलाम-मात्र हूँ।

ऐसा जान पड़ता है कि नशा उतर जाने पर मीरजाफ़र को अपने इन कृत्यों पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ था और उसके मन में एक बार अपनी स्थिति मज़बूत करने की भावना भी उठी थी पर अनुसन्धान से यह जानने में उसे देर न लगी कि मेरी मूर्खता से यह रास्ता पहले ही बन्द हो गया है।

बात यह थी कि अलीवर्दीखाँ और सिराजुद्दौला दोनों ने राज-कार्य में हिन्दू-मुस्लिम भेद-भाव को कभी स्थान नहीं दिया था। वे राजा का कर्त्तव्य समझकर धार्मिक झगड़ों को कभी इन दोनों जातियों के बीच खड़ा न होने देते थे। यह आश्चर्य की बात है कि कर्नल क्लाइव के संरक्षण में मीरजाफ़र के गद्दी पर बैठते ही इस धार्मिक भेद-नीति ने शासन पर ज़ोरों से हमला शुरू किया। अभी कुछ दिन पहले तक, जब मीरजाफ़र सिराज का प्रधान सेनाध्यक्ष था, उसमें ये भेद-भाव के दृष्टान्त नहीं पाये जाते थे पर गद्दी पर बैठते ही न जाने किसने उसपर ऐसी जादू की लकड़ी फेर दी कि उसने चुन-चुनकर हिन्दुओं को तमाम

ऊँचे पदों से हटाना और उनपर मुसलमानों को नियुक्त करना प्रारम्भ किया। इसका फल यह हुआ कि सम्पूर्ण शक्तिमान हिन्दू सरदार उसके विरोधी हो गये। इस प्रकार अंग्रेजों से मित्रता करने जाकर जहाँ उसने अपनी राजशक्ति को खेलवाड़-सा कर दिया वहाँ उनके कुचक्र में पड़कर उसने अपने को सरदारों और हितैषियों के सहयोग से वंचित करके अपने पुनरुत्थान का मार्ग भी सदा के लिए वन्द कर दिया।

इस प्रकार बंगाल-बिहार और उड़ीसा में आन्तरिक कलह को जगाकर और धोका-धड़ी तथा मुठमर्दी से देशी व्यापार का सत्यानाश करके क्लाइव भारत से विदा हुआ। यही नहीं उसने अपनी जेब भी खूब भर ली। जो क्लाइव कुछ ही दिनों पहले एक दीन-हीन क्लर्क वनकर भारत आया था, अपने विश्वासघात कला के पाण्डित्य तथा कतिपय भारतीय देशद्रोहियों की अदूर-दर्शितापूर्ण स्वार्थपरता के कारण संसार का एक वड़ा धनिक वनकर तथा इतिहास को अपनी करतूतों से कलंकित कर समका-लिक अंग्रेजों के बच्चों के लिए एक बहुत बड़ी जायदाद पुश्त-दर पुश्त भोगने का इन्तजाम करके स्वदेश लौटा। उसके बाद 'काल कोठरी' के कल्पित हत्याकांड का गप्पी रचयिता हालवेल गवर्नर बनाया गया। पर वह अधिक दिन तक इस देश में टिक न सका। और उसके बाद वांसिटर्ट नामक एक बुद्धू और कमजोर स्वभाव का आदमी इस पद पर नियुक्त हुआ।

पर क्लाइव हो या हालवेल, वांसिटर्ट हो या हेस्टिंग्स, आदम हो या कैलो सब एक ही जाति या देश के आदमी थे, एक ही थैली के चट्टे-बट्टे थे। स्वार्थपरता इनमें भरी थी और नैतिक

आदर्शों को ये दिल्लगी की चीज़ समझते थे। हालवेल ने आते ही मीरजाफ़र में झूठे-सच्चे दोषों का आविष्कार आरंभ किया। जो मीरजाफ़र कल तक अच्छा था; जिसके समर्थन में बड़े-बड़े अंग्रेज अधिकारी उठ खड़े हुए थे, आज 'दुष्ट, नालायक़ और फाँसी पाने के योग्य' क़रार दिया जाने लगा। पीछे, काम निकल जाने पर, सभी ने स्वीकार किया कि मीरजाफ़र ने सन्धि के नियमों और शर्तों का पालन करने का सदैव प्रयत्न किया पर मतलब के समय, उसे गद्दी से उतारने के लिए, सभी उसके विरुद्ध हो गये। बात असल यह थी कि गाय का सारा दूध दुह लिया गया था और अब, जब उससे आगे दूध निकलने की कोई उम्मीद न थी, उसे घर से निकाल बाहर करना स्वार्थपरता की गोद में पले हुए लोगों के लिए बिलकुल स्वाभाविक था। मुर्शिदाबाद के खजाने में कुछ रह नहीं गया था; अब मीरजाफ़र से कुछ आमदनी की आशा नहीं की जा सकती थी। इसलिए उसके विरुद्ध अनेक प्रकार की बातें उड़ाई जाने लगीं। और कलकत्ता की अंग्रेज-कमेटी में बहुत जल्द उसके विरोधियों का प्राधान्य हो गया। गप्पी और मक्कार हालवेल ने उसपर तरह-तरह के इल्ज़ाम लगाने शुरू कर दिये। उसे ज़ालिम, लालची और सुस्त बताया गया। ❀ उसपर

❀ "The Nawab Jaffir Ali Khan, was of a temper extremely tyrannical and avaricious, at the same time very indolent, and people about him being either abject slaves and flatterers or else the base instruments of his vices; ....numberless are the instances of men, of all degrees, whose blood he has spilt without

निर्दोष आदमियों की हत्या करने का इल्ज़ाम लगाया गया और षड्यन्त्र करके उसके पुत्र मीरन को (जो अंग्रेज़ों की चालबाज़ियों को खूब समझता था) दुनिया से सदा के लिए उठा दिया गया।†

धीरे-धीरे अंग्रेज़ों ने प्रान्त के कई शक्तिमान सरदारों एवं नवाब-सरकार के अधिकारियों को अपनी ओर मिला लिया। अंग्रेज़ों का मतलब तो रुपया चूसना और अपनी ज़मींदारी या राज्य बढ़ाना था; उन्हें न्याय-अन्याय नहीं देखना था; न उन्हें मीरजाफ़र या मीरकासिम में से किसी के प्रति सहानुभूति थी। जब मीरज़ाफ़र से रुपया मिलने की उम्मीद न रही तो उसके दामाद मीरक़ासिम के साथ साज़िश करके उसे गद्दी से उतारनेका षड्यन्त्र किया गया और षड्यन्त्र सफल होनेपर अनेक व्यापारिक एवं व्यावहारिक सुविधाओं के साथ पच्चीस लाख रुपये पाने की शर्त भी अंग्रेज़ अधिकारियों ने मीरक़ासिम से करा ली।

सभी इतिहासकारों ने मीरक़ासिम की दृढ़ता, स्वदेश-प्रेम, साहस और लगन की प्रशंसा दिल खोलकर की। ऐसा आदमी इस नीच षड्यन्त्र में क्यों शामिल हुआ? क्या स्वार्थ-सिद्धि के

---

the least assigned reason."—Holwells' Address to the Proprietors of the East India Stock, p. 46.

† एक दिन आधी रात को खीमे के अन्दर चारपाई पर मीरन मरा हुआ पाया गया। मशहूर यह किया गया कि बिजली गिरने से उसकी मौत हुई, पर जैसा कि बर्क ने व्यंगपूर्ण भाषा में पार्लमेंट के सामने कहा था—"वह कैसी विचित्र बिजली रही होगी कि ऊपर का खीमा ज्यों-का-त्यों खड़ा रहा; बिजली के गिरने की आवाज, पास सोये हज़ारों सैनिकों में से किसी को सुनाई न पड़ी और मीरन उसके प्रहार से मर गया!"

लिए ? नहीं; क्योंकि उसका सारा जीवन-क्रम हमारे मन में ऐसा कोई भाव ठहरने नहीं देता। असल में तो मीरक़ासिम का दिल मीरजाफ़र की कायरता और दब्बूपन पर जल रहा था। थोड़े-से विदेशी बनियों के हाथ स्वदेश की ऐसी दुर्दशा देखकर वह अपने को शान्त न रख सकता था। धीरे-धीरे उसके मन में यह धारणा बढ़ती गई कि मीरजाफर-जैसे निकम्मे और पस्त-हिम्मत आदमी के गद्दी पर होते हुए कुछ नहीं हो सकता। इसलिए उसने सबसे पहले, जिस प्रकार हो, उसे गद्दी से हटाने का निश्चय किया। सब बातचीत पक्की हो जाने पर अंग्रेजों ने मीरजाफ़र के सामने असम्भव शर्तें पेश करनी शुरू कीं। अब बातें इतनी खुली-खुली हो रही थीं कि मीरजाफर-जैसे कमअक्ल आदमी को भी अपनी परिस्थिति समझने और अपने भविष्य का अनुमान करने में देर न लगी। पर अब क्या हो सकता था ? जो मूर्खता की जा चुकी थी, उसके प्रतीकार का कोई उपाय न था। हालवेल ने अपनी कल्पना के बल पर 'ढाका की हत्या-कहानी' की सृष्टि कर और उसका प्रचार करके तथा, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, मीरजाफ़र के ऊपर अनेक झूठे * दोष लगाकर उसे

---

* क्लाइव ने स्वयं ही इंग्लैण्ड के संचालक-मण्डल को पत्र लिखकर इस कल्पित कहानी का खण्डन किया है। वह लिखता है—"× × × In justice to the memory of the late Nabab Meer Jaffier, we think it incumbent on us to acquaint you, that the horrible massacres with which he is charged by M. Holwell............are cruel aspersions on the character of that Prince, *which have not the*

सर्वत्र बदनाम कर दिया था। मीरजाफ़र की अदूरदर्शिता ने परिस्थिति और भी खराब कर दी थी. इसलिए जब सेनापति कैलो ने उसके सम्मुख मीरक़ासिम को शासन-भार सौंप देने का प्रस्ताव उपस्थित किया तो वह दुःखी और निराश होकर, निरुपाय व्यक्ति की नाईं. सिर्फ इतना ही कह सका—"× × × आप लोगों ने अपने वादों को तोड़ना मुनासिब समझा। मैंने अपने वादे नहीं तोड़े। अगर मेरे दिल में इस तरह की कपटपूर्ण चाल चलने की होती तो मैं चाहते ही बीस हज़ार फ़ौज जमा करके आप लोगों से लड़ सकता था। मेरे पुत्र मीरन ने मुझे इन बातों के सम्बन्ध में पहले ही आगाह किया था!"†

२० अक्तूबर १७६० का दिन था। अन्धकार दूर हो चला था पर सूर्य उगने में अभी दो-एक घण्टे की देर थी। अफ़ीमची और बूढ़ा मीरजाफ़र महल में आराम से सोया हुआ था। और लोग भी मीठी नींद ले रहे थे कि कम्पनी की सेना ने महल घेर लिया। शोर-गुल से जागकर जब मीरजाफ़र ने खिड़की से देखा तो चारों ओर सेना ही सेना! सिंह-द्वार पर गवर्नर का पत्र हाथ में लिये हुए स्वयं सेनापति कैलो सशस्त्र उपस्थित हैं। मीरजाफ़र को समझते देर न लगी कि अब समय पूरा हो गया है। वही अंग्रेज़! वही कुटिल कौशल! वही राजप्रासाद! मीरजाफ़र सोचकर कांप उठा; जीवन की ममता जग गई। सिराजुद्दौला की

---

least foundation in truth.—Letter addressed to the Hon'ble Court of Directors by Clive and others, 30th September 1766 Supplement.

† Malcolm's Life of Clive, Vol II, p. 268.

दुर्दशा और उसके साथ किये हुए विश्वासघात का स्मरण हो आया। तीन वर्ष पूर्व पलासी-समराभिनय के आरंभ में अपने जीवन के पहले अंक में नवयुवक सिराज के सिंहासन की रक्षा के लिए मीरजाफ़र को हम कुरान हाथ में लिये देखते हैं किन्तु पीछे दूसरे अंक में वही मीरजाफ़र अंग्रेजों की सहायता से सिराज का नाश करने का षड्यन्त्र रचता दिखाई देता है। आज ठीक उसी प्रकार, उससे भी अधिक लाचारी की अवस्था में अपने को बिकते देखकर मीरजाफ़र की मानसिक अवस्था क्या हुई होगी, इसकी कल्पना की जा सकती है पर उस समय भाग्य के इस आकस्मिक परिवर्तन को देखकर मीरजाफ़र के मुँह से कोई बात न निकल सकी। वह मुकट उतारकर धीरे-धीरे सिंह-द्वार पर विनीत भाव से आ खड़ा हुआ। इतिहासकार मैलीसन उसकी मानसिक स्थिति का वर्णन करते हुए बहुत ठीक लिखता है—

"निस्सन्देह उस महत्त्वपूर्ण प्रभात में बूढ़े मीरजाफ़र को तीन वर्ष से कुछ अधिक पहले के उस दिन की याद आई होगी, जब कि पलासी के रणक्षेत्र में, इन्हीं अंग्रेजों से गुप्त समझौता करके, उस मसनद के लिए, जिसे अब उसका एक सम्बन्धी उसी प्रकार के उपायों द्वारा उसके हाथों से छीन रहा था, उसने अपने स्वामी और आत्मीय सिराजुद्दौला के साथ विश्वासघात किया था। उसके मन में अवश्य यह बात आई होगी कि इतने नीच और कलङ्कपूर्ण ढंग से प्राप्त किया हुआ सिंहासन मेरे किस काम आया? सिराजुद्दौला से छीने हुए महल में बीतने वाले तीन वर्ष के समय में जो कष्ट और अपमान भोगने पड़े उसके सामने हमारे पिछले ५८ वर्षों के समस्त दुःख नगण्य हैं। यदि मैंने अपने बालक

सम्बन्धी और मालिक सिराज की प्रार्थना मानकर उसकी पगड़ी की लाज बचाने के लिए प्रयत्न किया होता तो आज मेरी कितनी इज़्ज़त होती ? आज जो विदेशी मुझपर हुकूमत चला रहे हैं, उनके हाथ यदि मैंने अपने देश को बेच न दिया होता और उनके विनाश में अपनी शक्ति लगाता तो मेरा देश बच गया होता, मेरे हाथ में असली ताक़त होती और मेरा नाम इज़्ज़त के साथ लिया जाता। किन्तु मेरी भूल के कारण आज लाल वर्दी वाले अंग्रेज़ सिपाही मेरे ही एक सम्बन्धी के झण्डे के नीचे, मुझे गद्दी से उतारने के लिए मेरा महल घेरे खड़े हैं ! मैंने सिराज के साथ जो व्यवहार किया था उसे देखते हुए क्या मीरक़ासिम मेरे साथ अधिक दयापूर्ण व्यवहार करेगा ? × × × ।"*

इस प्रकार छल-कपट और विश्वासघात की मूर्ति मीरज़ाफ़र का अन्त उसी के दिखलाये हुए उपायों से हुआ।

यह मानना पड़ेगा कि मीरजाफर ने कभी अंग्रेज़ों को धोका नहीं दिया। उसने स्वयं कष्ट और अपमान सहकर भी सन्धि की सब शर्तें पालन कीं। फिर भी मित्रता और हितैषिता की बातें करनेवाले अंग्रेज़ों ने उसे बिना किसी अपराध के, बिना सफाई का मौका दिये धोका दिया और उसके साथ अत्यन्त नीचतापूर्ण व्यवहार किया। ऐसी आचार-हीनता और जुल्म की मिसाल इतिहास में मिलना कठिन है। † स्वयं अंग्रेज़ इतिहासकारों ने

---

* Malleson's Decisive Battles of India, pp. 131–32.

† Surely, Cortez and Pizarro were not guilty of so base a treachery when they arrested Montezuma and the Inca Athahualpa, for they offered the Inca an

इसकी निन्दा करते हुए लिखा है—"अंग्रेज़ लोग बाइबिल चूमकर ईश्वर और ईसामसीह के पवित्र नाम पर मीरजाफ़र के साथ जिस धर्म-प्रतिज्ञा में आबद्ध हुए थे उसकी पूर्ति के लिए मीरजाफर के सिंहासन की रक्षा करने को बाध्य होते हुए भी अर्थ-लोभ से दूसरे के हाथ बेचकर गवर्नर एवं कौंसिल ने अंग्रेज-जाति को कलंकित किया।" * खुद कौंसिल के चन्द सदस्यों ने विलायत लिख भेजा था—"अंग्रेजों की धर्म-प्रतिज्ञा और उनका जातीय सम्मान चूर्ण कर मीरजाफ़र को सिंहासनच्युत किया गया है।"† पर जो कुछ किया गया और जो-कुछ आगे होने वाला था वह तो होकर ही रहा। अंग्रेज अधिकारियों की धोका-धड़ी और चालबाज़ियों के कारण बंगाल से भारतीय राज्य उठ-सा गया। लार्ड क्लाइव ने पार्लमेंट के सामने बड़े गर्व से कहा था—"मैं ऐसी स्थिति में जालसाज़ी करना आवश्यक समझता हूँ और काम पड़ने पर सौ बार इसे फिर करूँगा।"

× × ×

---

opportunity of answering the charges preffered against him before a tribunal.

'क्लाइव का गधा' दब्बू मीरजाफर के बाद साहसी, दृढ़निश्चयी, देशभक्त एवं गम्भीर मीरक़ासिम का बंगाल के रंगमंच पर प्रवेश हुआ। गद्दी पर बैठते ही मीरक़ासिम ने जहाँ एक ओर सन्धि के नियमों का पालन करना शुरू किया, वहीं चुपके-चुपके वह अपनी स्थिति सुधारने और शक्ति बढ़ाने के काम में भी लगा। महलों में राग-रंग एकदम बन्द हो गया। मानों किसी ने एकाएक सजीव विलास का गला घोंट दिया हो। शान-शौकत को फाँसी दे दी गई; हास्य-कौतुक निकाल बाहर किया गया। सादा जीवन बिताने के लिए जो ज़रूरी चीजें थीं, वही रक्खी गईं; राज्य के सब विभागों में भी खर्च घटा दिया गया।

अपने उद्देश्य की सफलता के लिए अंग्रेजों के महत्व को शासन से निकाल बाहर करना मीरक़ासिम को पहला कर्तव्य समझ पड़ा। उसने सोचा कि पहले ये बनिये मुगल-सिंहासन के आश्रय में पेट भरने की कोशिश करते थे। देश के शासन या देश-वासियों के सुख-दुःख से इन्हें कोई मतलब न था। यह बात बहुत दिनों की नहीं केवल ३–४ वर्ष पूर्व की है जब सिराजुद्दौला के अमलों तक के राजपथ पर चलते समय अंग्रेजों की अन्तरात्मा कांप उठती थी; बात-बात में अंग्रेज़ गुमाश्तों को हाथ जोड़े राजमहल तथा दरबार में खड़ा रहकर दीनता दिखानी और क्षमा माँगनी पड़ती थी। ज़रा भी असभ्य और उच्छृंखल व्यवहार करते ही हथकड़ी-बेड़ी से बँधकर नवाब की घुड़साल के अन्दर कारागृह का कष्ट भोगना पड़ता था। पर तीन ही वर्षों में क्या से क्या हो गया? मीरक़ासिम ने विचारकर देखा—केवल दो ग़लतियों के सहारे अंग्रेज़ हमारे कन्धों को दबाये हुए हैं। एक

इसकी निन्दा करते हुए लिखा है—"अंग्रेज लोग बाइबिल चूमकर ईश्वर और ईसामसीह के पवित्र नाम पर मीरजाफ़र के साथ जिस धर्म-प्रतिज्ञा में आबद्ध हुए थे उसकी पूर्ति के लिए मीरजाफर के सिंहासन की रक्षा करने को बाध्य होते हुए भी अर्थ-लोभ से दूसरे के हाथ बेचकर गवर्नर एवं कौंसिल ने अंग्रेज-जाति को कलंकित किया।" ※ खुद कौंसिल के चन्द सदस्यों ने विलायत लिख भेजा था—"अंग्रेजों की धर्म-प्रतिज्ञा और उनका जातीय सम्मान चूर्ण कर मीरजाफ़र को सिंहासनच्युत किया गया है।"† पर जो कुछ किया गया और जो-कुछ आगे होने वाला था वह तो होकर ही रहा। अंग्रेज अधिकारियों की धोका-धड़ी और चालबाजियों के कारण बंगाल से भारतीय राज्य उठ-सा गया। लार्ड क्लाइव ने पार्लमेंट के सामने बड़े गर्व से कहा था—"मैं ऐसी स्थिति में जालसाजी करना आवश्यक समझता हूँ और काम पड़ने पर सौ बार इसे फिर करूँगा।"

× × ×

---

opportunity of answering the charges preffered against him before a tribunal.

—*The Rise of Christian Power in India by B. D. Basu.*

※ Terren's Empire in Asia.

† "Thus was Jaffier Ally Khan deposed in breach of treaty founded on the most solemn oaths and in violation of the national faith."

—*Letter from some gentlemen of the Calcutta Council.*

'क्लाइव का गधा' दब्बू मीरजाफर के बाद साहसी, दृढ़निश्चयी, देशभक्त एवं गम्भीर मीरक़ासिम का बंगाल के रंगमंच पर प्रवेश हुआ। गद्दी पर बैठते ही मीरक़ासिम ने जहाँ एक ओर सन्धि के नियमों का पालन करना शुरू किया, वहीं चुपके-चुपके वह अपनी स्थिति सुधारने और शक्ति बढ़ाने के काम में भी लगा। महलों में राग-रंग एकदम बन्द हो गया। मानों किसी ने एकाएक सजीव विलास का गला घोंट दिया हो। शान-शौकत को फाँसी दे दी गई; हास्य-कौतुक निकाल बाहर किया गया। सादा जीवन बिताने के लिए जो ज़रूरी चीजें थीं, वही रक्खी गईं; राज्य के सब विभागों में भी खर्च घटा दिया गया।

अपने उद्देश्य की सफलता के लिए अंग्रेजों के महत्व को शासन से निकाल बाहर करना मीरक़ासिम को पहला कर्तव्य समझ पड़ा। उसने सोचा कि पहले ये वनिये मुगल-सिंहासन के आश्रय में पेट भरने की कोशिश करते थे। देश के शासन या देश-वासियों के सुख-दुःख से इन्हें कोई मतलब न था। यह बात बहुत दिनों की नहीं केवल ३–४ वर्ष पूर्व की है जब सिराजुद्दौला के अमलों तक के राजपथ पर चलते समय अंग्रेजों की अन्तरात्मा कांप उठती थी; बात-बात में अंग्रेज़ गुमाश्तों को हाथ जोड़े राजमहल तथा दरबार में खड़ा रहकर दीनता दिखानी और क्षमा माँगनी पड़ती थी। ज़रा भी असभ्य और उच्छृंखल व्यवहार करते ही हथकड़ी-बेड़ी से बँधकर नवाब की घुड़साल के अन्दर कारागृह का कष्ट भोगना पड़ता था। पर तीन ही वर्षों में क्या से क्या हो गया? मीरक़ासिम ने विचारकर देखा—केवल दो ग़लतियों के सहारे अंग्रेज हमारे कन्धों को दबाये हुए हैं। एक

तो मीरजाफ़र ने अंग्रेजी सेना की सहायता लेने तथा उसके लिए मासिक वेतन देने का वादा किया था और दूसरे राज-कोष की शक्ति से बहुत अधिक मूल्य देकर सिंहासन खरीदने को तैया हो गया था। इसके परिणाम-स्वरूप अंग्रेज़ कम्पनी का ऋण नवाब पर बढ़ता ही जा रहा था। इसलिए ऋण के बदले मीरक़ासिम ने बंगाल के तीन ज़िले अंग्रेज़ों को सौंप दिये और दूसरी ओर अपनी देशी सेना को सुसंघटित करना आरंभ किया थोड़े ही दिनों में उन्होंने यूरोपीय समर-प्रणाली से सेना को शिक्षित करने का प्रबन्ध कर लिया। साथही शासन की सुव्यवस्था करके आमदनी बढ़ा ली।

किन्तु अंग्रेज़ कर्मचारियों की उच्छृंखलता बराबर जारी थी। सम्राट् ने कम्पनी को आयात-निर्यात सम्बन्धी महसूल की माफी कर दी थी किन्तु धीरे-धीरे सभी अंग्रेज व्यापारी इस माफी के नाम पर कम्पनी के 'दस्तकों' (छूट-सम्बन्धी आज्ञापत्रों) का उपयोग करने लगे और इस प्रकार देशी व्यापारियों की अपेक्षा सस्ती चीजें बेचने में सफल हुए। भारतीय व्यापार का नाश होने लगा। बहुत जगह लोगों को अपनी चीजें बेचने के लिए मजबूर किया जाता और इन्कार करने पर कोड़े लगाये जाते। दुनिया का क़ायदा है कि वह फायदे के लोभ से सहज ही अन्धी हो जाती है। उस समय के अंग्रेज़ सौदागर भी अपने स्वार्थ के लिए अन्धे हो गये थे। यह देश उनका नहीं है, अथवा इसपर उनका अधिकार नहीं है, इसे शक्ति और स्वार्थ के नशे में वे जान-बूझकर भूल गये थे। वे इस देश में असहाय विदेशी बनियों की तरह आये थे पर इस देश की असीम धन-राशि

देखकर उनकी तृष्णा बढ़ती जाती थी और वे मतवाले हो उठे थे। उनके अत्याचारों से प्रजा पीड़ित होकर त्राहि-त्राहि कर रही थी।

मीरक़ासिम का जीवन स्वराज्य की स्थापना के लिए सतत प्रयत्नशील एक भारतीय शासक का जीवन था। प्रजा के दुःख उससे देखे न गये। उसने अंग्रेज़ों से बार-बार शिकायतें कीं पर कौन सुनता था ? अन्त में निरुपाय होकर उसे अंग्रेजों को दबाने का उपाय करना पड़ा। अंग्रेज़ों को भी इन बातों का पता चल गया अतः वे भी मीरक़ासिम से सजग हो गये।

इस संघर्ष का इतिहास बड़ा लम्बा-चौड़ा है और उसे यहाँ दोहराने से किसी विशेष लाभ की आशा नहीं की जा सकती। मीरकासिम ने अन्त में तंग आकर सारे व्यापार को कर-मुक्त कर दिया। इसके सिवा उसके पास दूसरा उपाय न था, पर इसे भी अंग्रेज़ सहन न कर सके। वे चाहते थे कि हम तो महसूल न दें पर दूसरों से जरूर लिया जाय। प्रजा-हितैषी मीरकासिम इसके लिए तैयार न हो सका। तब अंग्रेज़ों ने अपने पुराने अस्त्र का प्रयोग फिर शुरू किया। दरबारियों को फोड़ने और सरदारों को मिलाने लगे और अन्त में आन्तरिक कलह का आश्रय ले अपनी धोखेबाज़ी-कला के पाण्डित्य के बल पर उन्होंने विद्रोह की तैयारी कर ली। देश की बदकिस्मती और अंग्रेज़ों के सौभाग्य से 'क्लाइव का गधा' अभागा मीरजाफ़र अभी तक जीवित था। उसे ही पण्डों ने खड़ा किया और जिसे वे एक बार ज़ालिम, नालायक और काहिल कह चुके थे, उसे ही स्वार्थ-साधन के लिए फिर खड़ा किया गया।

तो मीरजाफ़र ने अंग्रेजी सेना की सहायता लेने तथा उसके लिए मासिक वेतन देने का वादा किया था और दूसरे राज-कोष की शक्ति से बहुत अधिक मूल्य देकर सिंहासन खरीदने को तैयार हो गया था। इसके परिणाम-स्वरूप अंग्रेज़ कम्पनी का ऋण नवाब पर बढ़ता ही जा रहा था। इसलिए ऋण के बदले मीरक़ासिम ने बंगाल के तीन ज़िले अंग्रेज़ों को सौंप दिये और दूसरी ओर अपनी देशी सेना को सुसंघटित करना आरंभ किया। थोड़े ही दिनों में उन्होंने यूरोपीय समर-प्रणाली से सेना को शिक्षित करने का प्रबन्ध कर लिया। साथही शासन की सुव्यवस्था करके आमदनी बढ़ा ली।

किन्तु अंग्रेज़ कर्मचारियों की उच्छृंखलता बराबर जारी थी। सम्राट् ने कम्पनी को आयात-निर्यात सम्बन्धी महसूल की माफी कर दी थी किन्तु धीरे-धीरे सभी अंग्रेज व्यापारी इस माफी के नाम पर कम्पनी के ' दस्तकों ' (छूट-सम्बन्धी आज्ञापत्रों) का उपयोग करने लगे और इस प्रकार देशी व्यापारियों की अपेक्षा सस्ती चीज़ें बेचने में सफल हुए। भारतीय व्यापार का नाश होने लगा। बहुत जगह लोगों को अपनी चीजें बेचने के लिए मजबूर किया जाता और इन्कार करने पर कोड़े लगाये जाते। दुनिया का क़ायदा है कि वह फायदे के लोभ से सहज ही अन्धी हो जाती है। उस समय के अंग्रेज़ सौदागर भी अपने स्वार्थ के लिए अन्धे हो गये थे। यह देश उनका नहीं है, अथवा इसपर उनका अधिकार नहीं है, इसे शक्ति और स्वार्थ के नशे में वे जान-बूझकर भूल गये थे। वे इस देश में असहाय विदेशी बनियों की तरह आये थे पर इस देश की असीम धन-राशि

देखकर उनकी तृष्णा बढ़ती जाती थी और वे मतवाले हो उठे थे। उनके अत्याचारों से प्रजा पीड़ित होकर त्राहि-त्राहि कर रही थी।

मीरक़ासिम का जीवन स्वराज्य की स्थापना के लिए सतत प्रयत्नशील एक भारतीय शासक का जीवन था। प्रजा के दुःख उससे देखे न गये। उसने अंग्रेज़ों से बार-बार शिकायतें कीं पर कौन सुनता था ? अन्त में निरुपाय होकर उसे अंग्रेजों को दबाने का उपाय करना पड़ा। अंग्रेज़ों को भी इन बातों का पता चल गया अतः वे भी मीरक़ासिम से सजग हो गये।

इस संघर्ष का इतिहास बड़ा लम्बा-चौड़ा है और उसे यहाँ दोहराने से किसी विशेष लाभ की आशा नहीं की जा सकती। मीरकासिम ने अन्त में तंग आकर सारे व्यापार को कर-मुक्त कर दिया। इसके सिवा उसके पास दूसरा उपाय न था, पर इसे भी अंग्रेज़ सहन न कर सके। वे चाहते थे कि हम तो महसूल न दें पर दूसरों से जरूर लिया जाय। प्रजा-हितैषी मीरकासिम इसके लिए तैयार न हो सका। तब अंग्रेज़ों ने अपने पुराने अस्त्र का प्रयोग फिर शुरू किया। दरबारियों को फोड़ने और सरदारों को मिलाने लगे और अन्त में आन्तरिक कलह का आश्रय ले अपनी धोखेबाज़ी-कला के पाण्डित्य के बल पर उन्होंने विद्रोह की तैयारी कर ली। देश की बदकिस्मती और अंग्रेज़ों के सौभाग्य से 'क्लाइव का गधा' अभागा मीरजाफ़र अभी तक जीवित था। उसे ही पण्डों ने खड़ा किया और जिसे वे एक बार ज़ालिम, नालायक और काहिल कह चुके थे, उसे ही स्वार्थ-साधन के लिए फिर खड़ा किया गया।

अंग्रेजों की इस धोखेबाजी से क्षुब्ध होकर मीर कासिम ने जो व्यंगपूर्ण पत्र उन्हें लिखा था उसमें उनके चरित्र का बड़ा अच्छा खाका है। उन्होंने लिखा था—"आप सज्जन-गण अजीब मित्र निकले। महात्मा ईसा की शपथ लेकर आप लोगों ने हमसे सन्धि की और हमसे इसलिए एक प्रदेश लिया कि उसमें हमारी मदद के लिए सदैव प्रस्तुत रहने वाली सेना रक्खी जायगी पर वस्तुतः आप लोगों ने हमारे विनाश-साधन के लिए ही सेना रक्खी थी।"

इसके बाद का इतिहास मीर कासिम की दृढ़ता, लगन, वीरता एवं देश-हितैषिता का इतिहास है। और अंग्रेजों का इतिहास छल प्रपंच, कूटनीति, जाल-साजी और शर्मनाक करतूतों का एक जखीरा है। जो लड़ाइयाँ दोनों पक्षों में हुई उनमें, कतिपय देशद्रोही भारतीयों के विश्वासघात के कारण मीर कासिम असफल हुआ और बार-बार के तूफ़ानी संघर्षों के बाद, अन्त में फक़ीर हो गया। अंग्रेजी शासन की नीति और 'स्पिरिट' जानने-समझने के लिए इस समय का इतिहास हमारे लिए बड़ा महत्वपूर्ण है क्योंकि 'क्लाइव का गधा' के गद्दी से उतारकर कलकत्ता पहुँचने के बाद के तीन-वर्षों का इतिहास अंग्रेजों की जैसी काली करतूतों से भरा है उसकी तुलना नहीं की जा सकती। दुनिया की किसी क़ौम का इतिहास इससे अधिक नीच, कलुषित और शर्मनाक कार्रवाइयों से भरा हुआ नहीं है। *

---

*" × × The annals of no nation records of conduct more unworthy, more mean, and more disgraceful

"१७७७ ई० को छठी जून को दिल्ली की सीमा पर एक टूटी कुटी के आँगन में एक अज्ञात पुरुष की मृत-देह धूल में लोट रही थी। उसे दफ़नाने की भी सामग्री न थी। कुटीमें एक जीर्ण शाल पाकर नागरिकों ने उसे ही बेच दफ़नाने की व्यवस्था की। जिस समय वह मृत शरीर क़ब्र में रक्खा जाने लगा, उसी समय न जाने किसने अकस्मात् चीखकर बता दिया कि यही बंगाल के अन्तिम स्वाधीन नरपति मीरकासिम हैं। वह आर्तनाद भी तुरन्त आकाश में विलीन हो गया।" ❀

'क्लाइव के गधा' दुर्बल और अफीमची मीरजाफ़र ने विश्वासघात की जो नीति इख्तियार की थी वह बराबर फूलती-फलती गई या यों कहिए कि विदेशियों द्वारा बराबर सींची जाती रही। मीरजाफ़र उसी नीति से पराजित हुआ और आगे चलकर डलहौज़ी ने भारतीय राजाओं की कमर इसी नीति की सहायता से तोड़ दी। आश्चर्य और दुःख इतना ही है कि सिराज का, अपना तथा मीरकासिम का, इसी नीति से नाश होता हुआ देखकर भी बुड्ढ़ मीरजाफ़र उर्फ़ 'क्लाइव का गधा' मीरक़ासिम के बाद फिर 'अंग्रेज़ों का गधा' बनने के लिए तैयार हो गया!

× × ×

---

than that which characterised the English Government of Calcutta, during the three years which followed the removal of Mir Jafar,"

—Col. Malleson.

❀ श्री अक्षयकुमार मैत्रेय।

कैसे यह राज्य-विप्लव हुआ; मीरक़ासिम ने देशी शासन के पुनरुत्थान के लिए क्या-क्या प्रयत्न किये, अगले पन्नों में, अपनी चुभती भाषा में प्रसिद्ध बंगाली इतिहासकार श्री अक्षयकुमार मैत्रेय ने यही विस्तार के साथ समझाया है। आशा है इससे लोग विदेशियों की नीति को ठीक तरह समझकर उससे सजग होने की चेष्टा करेंगे।

बस।

'त्यागभूमि' कार्यालय,
अजमेर
वसन्त-पंचमी—३-२-३०.

श्रीरामनाथलाल 'सुमन'

विषय-सूची

पृष्ठ

जब अंग्रेज आये—

जब अंग्रेज़ आये—

==

मीर क़ासिम

'तख़्तमुबारक'

पन्द्रह-बीस वर्ष पूर्व मुर्शिदाबाद के 'मुबारक मंज़िल' नामक राजमहल के खुले हुए चबूतरे पर एक पुराना राज-सिंहासन पड़ा था, जो बहुत दिनों के अयत्न और अनादर के कारण मैला हो रहा था। दिल्लीश्वर शाहजहाँ के द्वितीय पुत्र सुलतान शुजा ने एक दिन इसी सिंहासन पर बैठकर बंगाल में मुगल-राजशक्ति की पताका फहराई थी। उसी दिन से यह राज-सिंहासन (तख़्तमुबारक) पहले राजमहल और फिर ढाका में रहने के बाद मुर्शिदाबाद की मुगल-राजधानी का गौरव बढ़ाता रहा। दस-बारह वर्ष हुए लार्ड कर्ज़न महोदय की कृपा से मुर्शिदाबाद से मँगवाकर इसे कलकत्ते के 'विक्टोरिया मेमोरियल' में रख दिया गया है।

सिंहासन विशेष बड़ा नहीं है। सादे अलंकारहीन चार ऊँचे खंभों पर प्रतिष्ठित पत्थर के टुकड़े पर लिखा हुआ है—"यह परम मंगलास्पद राज-सिंहासन बिहार प्रदेशान्तर्गत मुँगेर नगर में हिजरी सन १०५२ के सुभान मास की २७ वीं तारीख को दासानुदास ख्वाजा नज़र बोखारी—द्वारा निर्म्मित हुआ।" ※ इसके बहुमूल्य रत्न-खचित मसनद पर बंगाल-विहार एवं उड़ीसा के नवाब और नाज़िम लोग गौरव-पूर्वक बैठकर देश का शासन-कार्य करते थे और बगल के कनकदण्ड पर चारु-चन्द्रातप झल-झल करता हुआ मुगलों की विभव-छटा को प्रकाशित करता था।

नवाब मन्सूरुलमुल्क सिराजुद्दौला शाहकुली मिरज़ामहम्मद हैबत जंगबहादुर ने अपने 'हीराझील' नामक सुन्दर राजमहल में रखकर थोड़े ही दिनों तक इसका गौरव बढ़ाया था। इसके सुख के दिनों का तभी से अन्त हो गया। उसके बाद और किसी ने इसकी रक्षा की चेष्टा नहीं की।

पीछे बहुत दिनों तक प्रखर सूर्य-ताप में नंगे शरीर पड़े रहने के कारण समय-समय पर गल-गलकर निकली हुई गैरिक धारा ने इसमें बहुतेरे निशान कर दिये, जो अब भी ज्यों के त्यों हैं। आगरा के मुगल-राजप्रासाद में जो बड़ा सिंहासन पड़ा हुआ है, उसमें भी इस प्रकार के अनेक चिन्ह पाये जाते हैं। मुर्शिदाबाद के आस-पास के मुसलमानों का ऐसा विश्वास है कि मुसलमानों के

※ मूल प्रतिलिपि यह है—"तैयार शुद तख़्त मुबारक बतारीख़ बिन तोहफ़्तम सहर सुभानुलमन अय्याम १०५२ बएहतमाम कमतरीन बन्दा ख़ाजा नज़र बोखारी कि मोकामे मुँगेर मिन् सूबा बिहार।"

अतीत गौरव को स्मरण करके ही यह 'तख्तमुबारक' नीरव रोदन करता रहा है गैरिक रेखायें उसी रोदन की अश्रु-धारा से बनी हैं। ❀

इस बहुमानास्पद राजसिंहासन के साथ मीरजाफ़र की कलंक-कहानी सदैव के लिए संयुक्त हो गई है। हिन्दू-मुसलमान कोई मीरजाफ़र की बात भूल नहीं सका है। मीरजाफ़र अब इस संसार में नहीं हैं; मुसलमान राज्य भी विस्मृति के समुद्र में विलीन हो गया है। सभ्यताभिमानी बृटिश राज्य के जुए को उतार फेंकने के लिए भी हम बूढ़े और थके बैल के समान छटपटा रहे हैं फिर भी अभी तक मीरजाफ़र की कलंक-कहानी हमारे स्मृति-पट पर ज्यों की त्यों लिखी हुई है।

हिन्दू, मुसलमान एवं अंग्रेज सभी जाति के इतिहासकारों ने मीरजाफ़र की दुष्टता की आलोचना की है। पाँच सौ वर्ष तक मुसलमानों के सामने झुकते-झुकते हिन्दू-संतान के लिए मुसलमानों का शासन अभ्यस्त हो गया था। उनमें से कोई राजा, कोई मन्त्री और कोई सेनापति होकर, मुसलमान राज्य के गौरवपूर्ण पदों को हस्तगत करके मुसलमान शासन की सहायता करता था। सिराजुद्दौला ने शासन-भार ग्रहण करते ही इन हिन्दू पदाधिकारियों की जड़ उखाड़ने को चेष्टा की; इसीसे हिन्दुओं ने

❀ The stone has reddish stains, due to the presence of iron; and it sometimes swells so much, that the water trickles over the edge. Then the stone is weeping, according to the natives, for the passing away of the glory of the Subahdari.

H. Beveridge.

बिगड़कर मीरजाफ़र का पक्ष ग्रहण करके सिराज का नाश कर डाला। फिर भला हिन्दू मीरजाफ़र की बात कैसे भूल जाँयगे?

मुसलमान तो देश के राजा ही थे। अंग्रेज हों या भारत-वासी, सभी नवाब के दरबार में भूमि तक माथा नवाकर प्रवेश करते थे। जो नितान्त नगण्य मुसलमान थे, उनके पद-भार से भी मेदिनी काँप उठती थी। मीरजाफ़र के ही नीच व्यवहार और अदूरदर्शिता से उनका वह पूर्व गौरव नष्ट हो गया अतएव मुसलमान भी मीरजाफ़र की कथा भूल नहीं सकते।

अंग्रेजों के सम्बन्ध में तो कुछ कहना ही निष्प्रयोजन है। विदेश से व्यापार करने आकर जिन्होंने ऐसा सुन्दर स्वर्ण-सिंहासन बिना विशेष प्रयास किये ही मुफ़्, प्रसाद-रूप में पाया, वे इतने थोड़े समय में इस बात को भूल जाने की कृतघ्नता कैसे कर सकते हैं?

× × × ×

अंग्रेज-शासन के समान मुसलमान राज्य में भी प्रतिभा का आदर था। इस प्रकार सम्मान प्राप्त करके कितने ही मामूली आदमी इतिहास में प्रसिद्ध हो गये हैं। मुरशिदकुली खाँ इसी प्रकार का एक नगण्य व्यक्ति था—जाति का ब्राह्मण, धर्म का मुसलमान और अवस्था में क्रीतदास। शिक्षा के कारण स्वाभाविक प्रतिभा का विकास होने के पश्चात् वह सम्राट औरंगजेब की आज्ञा से हैदराबाद के प्रधान मंत्री के पद पर नियुक्त हुआ। उन दिनों खुरासान के अफशार वंश का शुजाउद्दीनखाँ नामक एक और तरुण युवक हैदराबाद में निवास करता था। समय पर मुरशिदकुली की एक मात्र कन्या का विवाह इस तरुण-युवक

के साथ हुआ। पीछे जब मुरशिदकुली खाँ बंगाल-बिहार एवं उड़ीसा के नवाब-नाज़िम पद पर नियुक्त हुए तो शुजाखाँ को उड़ीसा का शासन-भार प्राप्त हुआ। शुजाखाँ की इस उन्नति का समाचार सुनकर उसके अनेक सम्बन्धी उड़ीसा में जाकर बस गये। इस प्रकार आये हुए लोगों में मिरजामुहम्मद नामक एक दरिद्र व्यक्ति का शुजाखाँ से विशेष घनिष्टता प्राप्त करने का प्रमाण मिलता है।

मिरज़ामुहम्मद के दो पुत्र थे—हाजी अहमद एवं अलीवर्दीखाँ। ये दोनों ही अपनी विद्या-बुद्धि और प्रतिभा के कारण बंगाल के इतिहास में अपनी कीर्ति-कहानी छोड़ गये हैं। ये थोड़े ही दिनों में उत्कल के नवाब के दरबार में सर्वस्व बन बैठे। अलीवर्दी को कोई बेटा न था, तीन लड़कियाँ-भर थीं। उन्होंने अपनी इन तीनों पुत्रियों का विवाह अपने भाई हाजीअहमद के तीनों पुत्रों के साथ कर दिया और दौहित्र सिराजुद्दौला को पोष्य-पुत्र के रूप में ग्रहण किया। हाजी अहमद के जामाता अताउल्ला एवं बहनोई मीरजाफ़र, इसी समय से अलीवर्दी के मुँहलगे मुसाहिब बन बैठे। अताउल्ला की बात इस समय बहुत लोग भूल गये हैं किन्तु मीरजाफ़र की कहानी भारतवर्ष के इतिहास में चिरस्मरणीय हो गई है।

मुरशिदकुलीखाँ को कोई पुत्र न था। जामाता शुजा एवं दौहित्र सरफ़राज़ ही उनके प्रेम-पात्र थे किन्तु अनेक कारणों से जामाता का ख्याल न करके दौहित्र सरफराज़ को ही राजसिंहासन का भार दे उन्होंने इस संसार से अवसर ग्रहण किया। किन्तु अलीवर्दी के बाहु-बल, हाजीअहमद के कुटिल कौशल

और अपने सौभाग्य से शुजाखाँ ने ही सिंहासन-लाभ किया। इससे अलीवर्दी की पदोन्नति हुई; वह पटना के नवाब बनाये गये।

शुजाखाँ की मृत्यु होने पर सरफराज़ सिंहासन पर बैठे किन्तु उनके भाग्य में तख़्तमुबारक पर अधिक दिन तक बैठना लिखा नहीं था। जमींदारों को मिलाकर चतुर अलीवर्दी ने सिंहासन की आशा से ससैन्य मुर्शिदाबाद की ओर कूच किया और सरफराज़ को धोखा देने के लिए लिख भेजा "मैं तो आपका दास हूँ। आपके सामने कुछ जटिल अभियोग उपस्थित करने के लिए ही आ रहा हूँ!" गिरियार प्रान्त के प्रकाश्य युद्ध में उसकी मीमांसा हुई—सरफराज़ मारे गये। अलीवर्दी ने शून्य सिंहासन पर अधिकार किया।

मीरजाफ़र तरुण युवक था। अलीवर्दी के इस असाधु व्यवहार से उसने जो शिक्षा ग्रहण की उसे इस जीवन में फिर भूल नहीं सका। उसने समझा कि सिंहासन-लाभ के लिए विश्वासघात वा प्रभु-हत्या करना निन्दनीय नहीं है अतएव जिस तरह से हो एक बार स्वार्थ-साधन करना ही पड़ेगा। सिंहासन पर अधिकार कर लेने के पश्चात् किसी को इस कार्य की आलो-चना करने का साहस नहीं होगा। प्रजा-रंजन करने से थोड़े ही दिन में इस बात को लोग भूल जायगे। उस समय देश की जो अवस्था थी उसे सामने रखकर मीरजाफ़र की इस भावना की परीक्षा करने पर जान पड़ता है कि उसका ऐसा सोचना नितान्त अनुचित वा अस्वाभाविक न था। जिस देश में जन्मदाता पिता को क़ैद करके सिंहासन पर अधिकार जमानेवाला औरंग-ज़ेब 'इस्लाम का जयस्तंभ' कहलाकर इतिहास में प्रसिद्ध है, उस

देश में आश्रयदाता शुजाखाँ के कुक्रियासक्त अयोग्य पुत्र को सम्मुख समर में मारकर सिंहासन पर अधिकार करना कैसे अन्याय कार्य कहा जा सकता है ? मीरजाफ़र ने भी ऐसा ही समझा। इतिहास में भी अलीवर्दी को धर्मशील राजा कहकर साधुवाद दिया गया है, ऐसी अवस्था में मीरजाफ़र की ऐसी धारणा असंगत कहकर भर्त्सना किये जाने योग्य नहीं है।

उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा में मीरजाफ़र चुपचाप दिन बिताने लगे। एक बार जब कुछ लोग बिगड़ खड़े हुए थे तो मीरजाफ़र ने अताउल्ला की सहायता से विद्रोह की घोषणा करने की चेष्टा की थी किन्तु अलीवर्दी के कौशल से उसमें सलफता न हुई। अलीवर्दी के समय में जो विफल हो गया था, वही सिराजु-द्दौला के समय में सफल हुआ। मीरजाफ़र ने कुछ अंश में सफलता तो अवश्य प्राप्त की किन्तु क्लाइव का हाथ धरकर केवल एकबार थोड़े दिनों के लिए 'तख्तमुबारक' का उपभोग कर सके। अधिक दिन तक उनका भाग्य न चमक सका। उसी समय से यह प्राचीन राजसिंहासन अयत्न और अनादर के साथ पड़ा सिसक रहा है।

× × × ×

जिस युद्ध के कारण यह इतिहास-प्रसिद्ध भाग्य-परिवर्तन हुआ, वह पलासी के उत्तर में बसे तेजनगर के पास १७५७ ई० २३ वीं जून बृहस्पतिवार को हुआ था। आज भी प्रत्येक बृहस्पति वार को इस युद्ध-क्षेत्र में कितने ही नर-नारियों का समागम होता है। युद्ध-क्षेत्र के अधिकांश चिन्ह भागीरथी के गर्भ में विलीन हो गये हैं किन्तु एक समाधिस्तूप अब भी देखा जा

सकता है। उस दिन दल के दल लोग आकर इसी स्तूप की की शुद्ध-शान्त चित्त से पूजा करते हैं। समाधि किसकी है, इस विषय में मतभेद है किन्तु इतना सभी स्वीकार करते हैं कि यह किसी प्रभुभक्त मुसलमान वीर का स्मृति-चिन्ह है। वह स्वामी की रक्षा के लिए सम्मुख समर में तलवार लेकर निहत हुआ था, अतएव आज भी लोग पीर की नाईं इस समाधि की पूजा करते हैं। पलासी के अतिरिक्त बंगाल में और कहीं इस प्रकार की वीर-पूजा प्रचलित है या नहीं, सो हम नहीं जानते।
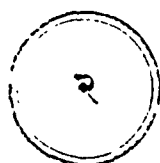
मोहमुद्गर

सिंहासन पाकर भी मीरजाफर सुखी न हो सके ! जिन अंग्रेज वणिकों की सहायता से राज्य पाया था, उनका व्यवहार देखकर अन्तरात्मा काँप उठा ! पहले जो नितान्त असंभव जान पड़ा था, वही अब प्रत्यक्ष दीख पड़ने लगा और जिसकी संभावना थी, वह एकबारगी असंभव हो गया !

अंग्रेज बनिये थे; लाभ की गन्ध पाकर ही वे अपनी मातृ-भूमि से इतनी दूर इस ग्रीष्म-प्रधान देश में आये थे। इस देश के सुख-दुःख या उन्नति-अवनति से उन्हें कोई मतलब नहीं था। अनुचित-उचित जिस उपाय से हो सके अपनी जेब भरना, और स्वदेश लौटकर शान्त-शीतल कुंजस्थित सुन्दर भवन में उस धन के भरोसे, अपनी कोमलांगी प्रेयसी के साथ सुख-पूर्वक शेष

जीवन बिताना ही उनका लक्ष्य था। अपने इस स्वार्थमय उद्देश्य की पूर्ति के लिए दया, धर्म एवं कर्तव्य-बुद्धि को थोड़ी देर तक ताक़ पर रख देने में उन्हें ज़रा भी लज्जा या संकोच न होता था। आजकल के कितने ही अंग्रेज इतिहास-लेखकों का सिर इन घटनाओं की याद करके लज्जा से नीचे झुक जाता है किन्तु उस समय के कितने ही अंग्रेज लेखकों ने इससे लज्जित न होकर साफ़-साफ़ लिख दिया है—"भारत तो सभ्य यूरोप नहीं है अतएव यहाँ रहने के समय धर्म-नीति के नियमों का पालन करने की आवश्यकता ही क्या है?" ❀

इस प्रकार के घृणित विचारों के कारण अर्थ ही उनका परमार्थ हो गया था। अर्थोपार्जन के लिए विभिन्न उपायों का (चाहे वे उचित हों वा अनुचित) प्रादुर्भाव उनके मस्तिष्क में होने लगा और मीरजाफ़र के गद्दी पर बैठते ही उनका खुल्लमखुल्ला उपयोग भी आरंभ हो गया।

मीरजाफ़र के साथ की जाने वाली गुप्त-सन्धि के द्वारा, कम्पनी के कर्मचारियों एवं कलकत्ता के निवासियों में से किसको

❀ It seems, indeed at this time to have been too generally thought that the ethics of Europe were not applicable to Asia; and their plainest rules violated without hesitation. Englismen, sometimes, manifested a degree of cupidity, which might rival that of the most rapacious servants of the worst oriental governments. They seem to have thought principally, if not solely, of the means of amassing fortunes, and to have acted as though they were in India for no other purpose.

Thornton Vol. I. 252.

किस प्रकार और कितना पुरस्कार मिलेगा, यह सब ठीक हो गया। सिराजुद्दौला के सतर्क गुप्तचर गण सदैव चारों ओर घूमा करते थे अतएव अंग्रेजों और मीरजाफ़र में परस्पर बातचीत करने के समय वाट्स साहब की ओर से एक मध्यस्थ नियुक्त करने की आवश्यकता हुई। वणिक्‌राज 'अमीचन्द' इस अध्यक्ष पद पर नियुक्त हुए, जो इस देश के इतिहास में साधाणतः 'धूर्त अमीचन्द' के नाम से मशहूर हैं। अधिकतर धूर्त अंग्रेज बनियों ने ही उन्हें यह अकीर्तिकर उपाधि प्रदान की है। उनका प्रकृत नाम अमीचन्द था जो विभिन्न लोगों के मुख से आमिचन्द, उमीचन्द, अमीर-चन्द एवं उमाचरण इत्यादि नाना रूपान्तरों को प्राप्त हुआ। अमीचन्द, बंगाल एवं विहार के प्रधान वाणिज्याधिपति होने के कारण अपनी विद्या-बुद्धि एवं अर्थ के बल से जिस प्रकार नवाब के दरबार में आदृत थे उसी प्रकार अंग्रेजों में भी उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। अंग्रेजों का हिमायती बनकर उन्होंने देशवा-सियों के साथ उनका वाणिज्य-सम्बन्ध स्थापित करा दिया था। उनके ही परिश्रम से अंग्रेजों ने अपने आरंभिक व्यवसाय में उन्नति की थी किन्तु लाभ का बटवारा होने के समय कुछ मनो-मालिन्य उपस्थित हुआ और नवाब-दरबार के साथ अधिक घनिष्टता रखने के कारण कुछ दिन के लिए वह अंग्रेजों के विराग-भाजन हो गये थे।

अंग्रेजों का शत्रु कहलाकर भी अमीचन्द ने कभी उनके साथ शत्रुवत् व्यवहार नहीं किया! अंग्रेजों के सन्देह में पड़कर वह कलकत्ता के फोर्ट विलियम में बन्दी हुए। अंग्रेजों के अत्या-चार से डरकर उनके घर की स्त्रियों ने असमय ही प्राण त्याग

किया। उनकी कलकत्ता की सुधा-धवल अट्टालिका कृतघ्न अंग्रेजों की कृपा (!) से जलाकर राख कर दी गई❀ किन्तु इतनी नीचता, कृतघ्नता और अत्याचार पर भी उनकी अंग्रेज-हितैषणा में कभी कमी न आई! अंग्रेज लोग जिस समय कलकत्ते के दुर्ग में घिरे हुए लड़ रहे थे उस समय संधि और शान्ति-स्थापना के लिए अमीचन्द ने ही मानिकचन्द को पत्र लिखा था।† कलकत्ते के ध्वंस हो जाने के पश्चात् अंग्रेज जिस समय अन्नाभाव के कारण पथ के भिखारी होकर दर-दर ठोकर खा रहे थे, अमीचंद ने ही उस समय अंग्रेजों की लाज बचाई थी।‡ अलीनगर की संधि के लिए जब अंग्रेज व्याकुल हो उठे थे, तब व्याकुलता के साथ अमीचंद ने ही अंग्रेजों का पक्ष समर्थन किया था। § सिराजुद्दौला जब अंग्रेजों की दुष्ट-बुद्धि का परिचय पाकर उनके व्यापार को नष्ट करने के लिए प्रयत्नशील हुआ था, तो अमीचंद ने ही ब्राह्मण के पैर छूकर शपथ करते हुए उनके

❀ See Orme's Indostan, Vol. II.

† Stewart's History of Bengal.

‡ When an order was published that such of the English as had escaped the Black Hole might return to their homes, they were supplied with provision by Omichand "whose intercession," says Orme "had probably procured their return."
Mill. Vol. III. 170.

§ His tales and artifices prevented Siraj Dowla from beleiving the representations of his most trusty servants who early suspected and atlength were convinced, that the English were confiderated with Jaffier--*Orme, Vol. II. 182.*

धन प्राण की रक्षा की थी ।* अंग्रेजों के अत्याचार एवं व्यवहार से शोक-सन्तप्त तथा क्षतिग्रस्त होकर जिस समय आँखों में आँसू भरे हुए वह इस लोक से प्रस्थान कर रहे थे, उस समय भी अंग्रेजों की कल्याण-कामना करते हुए एक दानपत्र लिख गये ।†

जब मीरजाफ़र के साथ लाभ का परिमाण निर्दिष्ट हो गया तो जो लोग आत्म-प्रकाश न करके छिपे-छिपे षड्यंत्र में लिप्त थे, उन लोगों को भी पुरस्कार पाने का विश्वास हुआ । उस समय अमींचंद ने भी अपने लिए पुरस्कार पाने का प्रस्ताव किया । उनको नवाब के दरबार में उपस्थित रहकर गुप्त-मंत्रणा में सहायता करने का काम मिला था, जिसमें शर्त्त थी कि किसी बात के प्रकट हो जाने पर (चाहे और लोग छोड़ भी दिये जाँय किंतु) उनको सब से पहले शूल पर चढ़ाकर सूली दी जायगी ! काम बहुत ही कठिन और भयानक था, अतएव अमींचंद ने वॉट्स से कहा कि कार्य के गुरुत्व को देखते हुए मुझे भी तीस लाख रुपये पुरस्कार मिलना चाहिए ।

इसी घटना के साथ अमींचंद के सर्वनाश का सूत्रपात

---

* Mr. Watts writes from Moorshidabad, that "Omichand told the Nabab that he had lived under the English protection these forty years and never knew them once to be guilty of breaking their word ; to the truth of which he took his oath by touching a Brahmin's foot, and that if a lie could be proved in England on any one, they were spat upon and never trusted."--*Select Committees' Proceedings, 25 February*

† Omichund, by his will, left Rs. 1500 to the Treasurer of the Founding Asylum, the same to the magdoalen,--both were paid.—*Long's Selections.*

हुआ। कलकत्ते की गुप्त-समिति को जब "धूर्त अमिचंद" (?) की इस अमार्जनीय (!) धृष्टता का परिचय प्राप्त हुआ तो उसके सभी सदस्य क्रोध और घृणा से अधीर हो उठे ! उन्होंने इसे अमीचंद का विशेष अपराध स्थिर किया और उन्हें पुरस्कार देने को कौन कहे, कलकत्ते के लुटे हुए धन की क्षतिपूर्ति का हिस्सा देने में भी असम्मति प्रकट की। अंग्रेज इतिहास-लेखक कहता है—"पाठक ! आप लोग इसे सुनकर हँसी न रोक सकेंगे, किन्तु उस समय उन्होंने (अमीचंद के साथ) सचमुच ऐसा ही व्यवहार किया !"[१] किंतु क्लाइव बड़ा चालाक था . आपस में झगड़ा करने से सारा भेद खुल जायगा, इसलिए उसने गुप्त-समिति के अंग्रेज सदस्यों के सामने प्रस्ताव उपस्थित किया कि—"इस समय अमीचंद की शर्त स्वीकार करलो, समय आने पर उसे इसका प्रतिफल दिया जायगा।" प्रस्ताव से सब सम्मत हुए; तब क्लाइव के परामर्श से दो संधि-पत्र लिखे गये ! एक लाल काग़ज़ पर था, जो जाली था। उसमें अमीचंद को तीस लाख रुपये देने की बात थी। दूसरा सादे काग़ज़ पर था; यह असली था; इसमें अमीचंद का कहीं नाम भी नहीं था। जल-सेनापति वाटसन ने जाली संधि-पत्र पर हस्ताक्षर करने में हिच-किचाहट प्रकट की अतएव [क्ला]इव के आदेश से लसिंगटन ने वाटसन का जाली दस्तख़त कर दिया।[२]

---

1 To men whose minds were in such a state, the great demands of Omichand appeared (the reader will laugh--they did literally appear) a crime. They were voted a crime ; and so great a crime, as to deserve to be punished, not only by depriving him of all reward. but depriving him of his compensation which was stipulated for every body--**MILL, VOL. III. 171.**

2 Clive. whom deception, when it suited his purpose. never cost a pang, proposed two treaties with Meer Jaffier should be drawn up and signed ; One, in which satis-

इस कलंक-कहानी का वर्णन करते समय अंग्रेज़ इतिहास-लेखकों का सिर लज्जा से नीचे झुक गया है। मीरजाफ़र के सिंहासनारूढ़ होने पर जगतसेठ के महल में यह संधि-पत्र सबके सामने पढ़ा गया। उस समय उसे सुनते ही अमीचंद घबरा-कर बोले—"तुम लोगों से भूल हुई है; यह कौन संधि-पत्र पढ़ रहे हो? मुझे तो जो दिखाया गया था, वह लाल क़ाग़ज़ पर था!" धूर्त क्लाइव ने समय पाकर गर्व के साथ कहा—"यह ठीक है कि तुम्हें लाल काग़ज़ पर लिखा हुआ संधि-पत्र ही दिखाया गया था; किन्तु अब तो देख रहे हो न, कि यह सादे काग़ज़ पर है?" इतना कहकर स्क्राफ्टन साहब की ओर इशारा करते हुए कहा—"अब क्या? सच्ची बात बता दो न?" स्क्राफ्टन ने मानो नाटक का अभिनय करते हुए कहा—"अमीचंद! तुम्हें जो संधि-पत्र दिखाया गया था वह जाली था—इस समय जो पढ़ा गया है, वही असली है! तुम एक कौड़ी भी न पाओगे!!"

इतिहास-लेखकों ने लिखा है कि यह बात सुनते ही अमीचंद बेहोश होकर ज़मीन पर गिर पड़े। सब लोगों ने उन्हें घर पहुँचा दिया। इस घटना के बाद थोड़े दिन तक और जीकर अभागे अमीचंद ने अपनी इहलोक-लीला संवरण की, किंतु उस दिन के बाद अंत तक एक दिन के लिए भी उनकी बुद्धि ठिकाने नहीं हुई! इस तरह धोखा खाकर उनका मोह भंग हो गया; किन्तु जिस मोह-मुद्गर ने अमीचंद का मोह भंग कर दिया, उससे मित्रों का अंतरात्मा भी काँप उठा!

faction to Omichund should be provided for, - which Omichund should see, another. that which should be in reality executed, in which he should not be named, to his honor be it spoken. Admiral Watson refused to be a party in this treachery. He would not sign the false treaty, and the Committee forged his name--IBID.
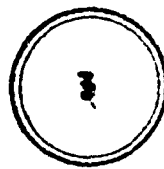
"भूते पश्यन्ति बर्बरा: ।"

जिन विचक्षण हिन्दू-मुसलमानों ने सिराजुद्दौला का सर्वनाश करने के लिए मुग़ल-राज-सिंहासन की जड़ काटने की चेष्टा की थी, उनका इसमें विशेष अपराध नहीं था, ऐसा आजकल के अनेक इतिहास-कार मानते हैं। उनकी दृढ़ धारणा थी कि सिराजुद्दौला ही सारे अनर्थों का मूल है; किसी प्रकार उसे सिंहासन-च्युत कर देने के साथ ही 'राम-राज्य' आ जायगा। उद्देश्य सिद्ध करने की तीव्रताड़ना से अन्धे मीर-जाफ़र और उसके साथियों ने किसी बात को भली-भांति विचार कर नहीं देखा; सब तड़ातड़ मैदान में उतर पड़े। चतुर अंग्रेज सौदागरों की जो हार्दिक इच्छा थी, सबने मिलकर मानो उसी-

को पूरा करने के लिए सन्धि-पत्र का कार्य पूरा किया ![1] दैवेच्छा से, 'जो रोगी को भावे सो वैद्य बतावे' वाली बात हो गई ।

एक दिन यह सन्धिपत्र कार्य-रूप में परिणत हो जायगा; एक दिन विजयोन्मादी बृटिश-वणिक सबको लात मारकर मुग़लों की गौरव-पताका उखाड़ फेंकेंगे और देश पर अपना अधिकार जमा लेंगे, किसीको भी यह सोचने-विचारने का अवसर न मिला। सबने यही सोचा कि सिराज को गद्दी से उतार देने के बाद, अगर कुछ गड़बड़ी होगी, तो इन बनियों से समझ लेंगे ।

पर जो होना था, हो गया । समझने या देखने का अवसर किसीको नहीं मिला । पलासी का अभिनय समाप्त होते ही अंग्रेज सेनापति कर्नल क्लाइव ने जगतसेठ के मंत्रणा-भवन में सन्धि की शर्तें पालन करने के लिए सबको बुला भेजा । उस समय सबने अनुभव किया कि केवल सिराजुद्दौला का ही सर्वनाश नहीं हुआ; सन्धि-पत्र के अक्षर-अक्षर में जो प्रलयङ्करी महाशक्ति छिपी हुई थी, उसके प्रबल पीड़न से मुसलमान-शासनशक्ति के मिट्टी में मिल जाने का सूत्र-पात हो गया। अब कौन उसकी गति रोकेगा ?

मुसलमानों ने शत्रु की भाँति भारतवर्ष पर आक्रमण करके इसपर अधिकार किया था अवश्य, किंतु सैकड़ों वर्ष से रहते-रहते वे इसे ही स्वदेश समझने लगे थे । आज उन्होंने अकस्मात् देखा कि विदेशी बनियों की समिति उनके चिरसुख-स्वरूप सिंहासन

1 *The plain-truth was that the so-called treaties were mere agreements patched up on the eve of a revolution. The English were in a position to demand anything; the Nawab-expectant could refuse nothing. There was not even a shadow of deliberation; for there was no time to haggle over terms.--EARLY RECORDS OF BRITISH INDIA, P. 316.*

को क्षणभंगुर काँच-पात्र के समान चूर्ण करने की शक्ति और अधिकार लिये उसके बग़ल में गर्व और दृढ़ता के साथ खड़ी है।

अंग्रेजों ने सोचा था कि इस गुप्त संधि के कारण कुबेर का ख़ज़ाना हमारे हाथ लगेगा। इस लोभ के कारण ही समरानल में रूपोन्मत्त पतंग की नाईं प्राण-विसर्जन करने को वे तैयार हुए थे। अंग्रेज़-सेनापति की आज्ञा से जब वह कुबेर-भाण्डार खोला गया तो उसकी असली हालत देखकर वह झुंझला उठा। धन-रक्षकों को डाटने-डपटने में त्रुटि नहीं हुई; मीरजाफ़र पर आँखें लाल करने में भी कुछ कमी नहीं हुई, और न बार-बार 'देहि-देहि' के अर्थ-लोलुप भीषण हुंकार से आकाश-मण्डल को कम्पित करने में ही किसी प्रकार की त्रुटि होने पाई; किंतु इतना होने पर भी जब किसी प्रकार अधिक-धन न मिल सका, तब क्लाइव को भी समझते देर न लगी कि धन पाने के लिए धर्म को पैरों से रौंदने पर भी कलंक ही हाथ लगा।[१]

अब वे दिन नहीं रहे! जो क्लाइव पृथ्वी तक झुककर हाथ जोड़े हुए नवाब अलीवर्दीख़ाँ के दरबार में डरते-डरते प्रवेश करता था; जो बच्चे सिराजुद्दौला के निकट भी अमीचंद या जगतसेठ का आश्रय लेकर काँपते हृदय से पैर उठाता था; जो अभी दो-चार घण्टे पहले तक मुर्शिदाबाद की सड़कों पर अकेले चलने में हिचकता था, आज विधि-विडम्बना-वश राज-मुकुट को अधिक दाम में बेचने का अधिकार लेकर श्वेतांग सेना का नायक बनकर उसीने गर्व के साथ राजमहल में प्रवेश किया! क्या मीरजाफ़र में

1 *In manufacturing the terms of the confederacy, the grand ... of the English appeared to be money.—MILL, VOL. III. p. 185.*

इतनी शक्ति है कि वह उसके मुँह पर सन्धि-पत्र को अस्वीकृत करदे ? सब निश्चेष्ट होकर असहाय विधवा के समान रोते हुए मानो क्लाइव की मनस्तुष्टि का यत्न करने लगे। अपनी असमर्थता दिखाकर 'क़िस्तबंदी' करने के लिए दीन भाव से सिर झुकाकर बैठने वाले वणिकों के अब वे दिन नहीं रहे !

विख्यात इतिहास-लेखक जेम्स मिल लिख गये हैं—"भारतीय राजाओं को जो विडम्बना भोगनी पड़ी थी, उसका प्रधान कारण राजकोष में अर्थाभाव ही था।" यह अर्थाभाव मीरजाफ़र को पत्थर से भी अधिक भारी और कठोर प्रतीत हुआ। पलासी की लड़ाई के पूर्व मीरजाफ़र की वैसी अवस्था नहीं थी। अलीवर्दी दान-शील व्यक्ति थे। राज-कर्मचारियों के हृदय से राजद्रोह की भावना दूर करने के लिए वह धन को पानी की तरह बहाते थे, इसीलिए वह अपने मरने के पश्चात् सिराज के लिए विशेष धन न छोड़ गये। सिराजुद्दौला भी, अपने राज्यकाल के प्रभात में ही कोलाहल में फँस जाने के कारण, राजकोष की उन्नति करने का अवसर न पा सका। ऐसी अवस्था में मीरजाफ़र ने अंग्रेज़ों को इतना अधिक रुपया देने का वचन क्यों दिया ? राजकोष में तो इतने धन के होने की जरा भी संभावना नहीं की जा सकती थी।

कुछ लोगों का अनुमान है कि मीरजाफ़र ने सोचा था कि जो लोग प्रतिहिंसा की भावना लेकर विद्रोही-दल में सम्मिलित होंगे वे चेष्टा सफल होने पर थोड़ा धन पाकर भी संतोष कर लेंगे। अंग्रेज लोग कठोरता-पूर्वक संधि-पत्र में स्वीकार किये हुए धन को पाने के लिए निर्मम हृदय से गर्जन-तर्जन करेंगे, मीरजाफ़र को इतनी दूर तक विश्वास नहीं हुआ था किंतु इस समय सबको

विवश होकर विश्वास करना ही पड़ा। ऐसे समय मीरजाफ़र ने निरुपाय होकर अंग्रेज-सेनानायकों को कुछ घूस देकर टरकाने और संधि-पत्र की बातों को दबा देने की बड़ी चेष्टा की, किंतु वह चेष्टा सफल नहीं हुई। अंग्रेज, जिस बुद्धि के बल से सात समुद्र पार के एक अपरिचित देश में यहाँ के व्यापार को नष्ट करके अपना व्यवसाय फैलाने आये थे, वह इतनी कुण्ठित नहीं थी कि सहज ही ऐसा सोनहला अवसर छोड़ देने को तैयार हो जाती।

ऐसे समय किसी-किसीने उपदेश किया, 'फिर देरी क्यों? अब तो काम निकल ही गया है, अतएव इन इने-गिने अर्थ-लोलुप अंग्रेज भिखारियों को लात मारकर, धक्का देकर, निकाल देने में क्या हर्ज है?' किंतु अभागे मीरजाफ़र के कर्म-दोष से वह रास्ता पहले ही बंद हो गया था। उसके राजधानी में प्रवेश करने के पूर्व ही धनवान नागरिकगण लूटे जाने के भय से अपना-अपना धन लेकर दूसरे शहरों को भाग गये। जो उस समय तक नहीं भागे थे, उन्होंने भी मीरजाफ़र के भय से क्लाइव की शरण ली। बहुत दिनों तक वेतन न पाने के कारण नवाब की सेना अलग विद्रोहोन्मुख हो उठी। पलासी-युद्ध के बाद वेतन मिलने की आशा से वह इतने दिनों तक शांत रही थी, किंतु विजय के पश्चात् भी वेतन न मिलता देख वह बिगड़ खड़ी हुई। इस प्रकार विद्रोही सेना से घिरा हुआ बेचारा असहाय मीरजाफ़र किस बूते पर अंग्रेजों को मार भगाने के लिए खड़ा होता? मन में चाहे अंग्रेजों के प्रति जैसा भी भाव रहा हो, किंतु घटना-चक्र में पड़कर अभागे मीरजाफ़र को चुपचाप सारा अपमान सहना पड़ा!

क्लाइव, इन बृटिश बनियों के सौभाग्य का सितारा था। अपनी प्रतिभा, कार्य-दक्षता, धूर्तता और साहस के कारण वह हमारे इस पतन-काल के इतिहास में चिरस्मरणीय हो गया है। जब सिराजुद्दौला के राजभण्डार को खाली कर देने पर भी वह अधिक न पा सका, तो उसे १७६०००० चाँदी एवं २३००००० सोने के सिक्कों, दो संदूक़ सोने की गुल्लियों, चार संदूक रत्नजटित गहनों और दो संदूक हीरे-जवाहिर पर ही संतोष करना पड़ा!

किसको कितना हिस्सा और पुरस्कार मिला, इसके सम्बन्ध में इतिहासज्ञों के अनेक मत दीख पड़ते हैं! ईस्ट इण्डिया कंपनी का नियमन करने वाली इंग्लैण्ड की महासभा (हाउस ऑव् कामन्स) ने कुछ दिनों बाद इसके सम्बन्ध में ठीक अनुसन्धान करने के लिए एक कमिटी बैठाई थी। उसके सामने गवाही देते हुए क्लाइव मुक्त-कण्ठ से स्वीकार कर गया है—" जब संधि-पत्र की सारी बातें तय हो चुकीं तब हमारी गुप्त समिति के सदस्य विचर साहब ने कहा कि 'केवल कम्पनी ही क्यों लाभ उठावेगी? सेना और गुप्त समिति के सदस्यों को भी पुरस्कार मिलने की व्यवस्था होनी चाहिए।' यह बात वाट्स साहब को मुर्शिदाबाद लिखकर भेज दी गई, किन्तु वाट्स साहब ने इसके सम्बन्ध में क्या किया, यह बात हमें पलासी-युद्ध के पहले तक कुछ भी मालूम न थी। हाँ, हम लोग इतना अवश्य जान गये थे कि किसीकी उपेक्षा न की जायगी। जब मुझे मालूम हुआ कि किसे क्या मिलेगा, तो मुझे भी एक स्वाधीन नरपति के निकट पुरस्कार ग्रहण करना कुछ विशेष गर्हित कार्य नहीं जान पड़ा! उस समय कम्पनी के साथ कर्मचारियों की कोई धर्म-प्रतिज्ञा भी

तो नहीं थी ! फिर अगर वह गर्हित ही कार्य रहा हो तो महासभा के साथ उसका क्या सम्बन्ध ?" कम्पनी को ऐसे नीच कार्य की निन्दा करनी चाहिए थी, किन्तु निन्दा करनी तो दूर, उलटे प्रसन्नता-पूर्वक उसने इस कार्य का अनुमोदन किया ।१

विचर साहब के दिये हुए हिसाब के देखने से जान पड़ता है कि खज़ाने के धन में से सबके यथायोग्य पुरस्कार बाँट लेने के पश्चात् जो धन बचा, उसे संधि-पत्र में लिखे हुए धन का आधा बताकर कम्पनी के खज़ाने में जमा किया गया और शेष आधा धन जमा करने के लिए 'कृपा करके' मीरजाफ़र को तीन बरस की मोहलत दी गई ।२

1 *Clive's Evidence before the Committee of the House of Commons, 1772.*

२ विचर साहब का दिया हुआ हिसाब यों है—

मि॰ ड्रेक (गवर्नर)	२८०००० रुपये	—कुल २८००००)
कर्नल क्लाइव—		
सभासद की हैसियत से	२८०००० रुपये	कुल २०८००००)
सेनाध्यक्ष की हैसियत से	२००००० रुपये	
पुरस्कार (दान के रूप में)	१६००००० रुपये	
मि॰ वाट्स—		
सभासद की हैसियत से	२४०००० रुपये	कुल १०४ ०००)
पुरस्कार वा दान के रूप में	८००००० रुपये	
मेजर कील पेट्रिक (Major Kil Patrik)		
अफ़सर की हैसियत से	२४०००० रुपये	कुल ५४००००)
पुरस्कार वा दान के रूप में	३००००० रुपये	
मि॰ मैनिंघम (Manningham)	२४०००० रुपये	,, २४००००)
मि॰ विचर (Beecher)	२४०००० रुपये	,, २४००००)

"भूते पश्यन्ति बर्व्वराः।"

पलासी का युद्ध समाप्त होने के पश्चात् सेनापति क्लाइव ने गवर्नर ड्रेक साहब के नाम जो पत्र भेजा था, उसे २५ जून को पाते ही कलकत्ता की अंग्रेज-मण्डली अपनी देव-दुर्लभ विजय-वार्ता पर आनन्दोन्मत्त हो उठी। एक वर्ष पूर्व इसी जून मास के अंतिम भाग में कलकतिये अंग्रेज सिराजुद्दौला के भय से जिस प्रकार काँप उठे थे, उसी प्रकार इस समय भाग्य पलट जाने के कारण पुरस्कार मिलने की लालसा से उनका हृदय खिल उठा। सभी जय-ध्वनि करते हुए सड़कों पर नाचने लगे। उस समय सबकी ज़बान पर एक बात थी, सबके हृदय में एक आनंदोच्छ्वास था। उस उच्छ्वास में कलह-विवाद भूलकर सभी थोड़ी देर के लिए मतवाले हो उठे। १

कलकत्ते की अंग्रेज-सभा ने तुरन्त, एक जहाज़ सजाकर समारोह के साथ, मैनिंघम साहब को यह सुसमाचार देने के लिए इंग्लैण्ड रवाना किया। इधर मुर्शिदाबाद के नूतन नवाब से मिला हुआ धन, सात सन्दूकों में भरकर सौ सुसज्जित नावों के एक

कौंसिल के ६ मेम्बरों में से प्रत्येक को एक लाख		,, ६०००००)
मि० वाल्श (Walsh)	५००००० रुपये	,, १९०००००)
मि० स्क्रेफ्टन (Scrafton)	२००००० रुपये	
मि० लशिंगटन (Lushington)	५००,०० रुपये	
मि० ग्राण्ट (Grant)	१००००० रुपये	
जल और स्थल सेना	६००००० रुपये	

1 *The comparison of the prosperity of this day with the calamities in which the colony was overwhelmed at this very season in the preceding year; in a word, this sudden reverse and profusion of good fortune INTOXICATED the steadiest minds, and hurried every one into the excesses of intemperate joy; even envy and hatred forgot their energies, and were reconciled, at least for a while, to familiarity and good will.— ORME VOL . 187*

बेड़े के सहारे, ब्रिटिश विजय-वैजयंती फहराते तथा विजय-वाद्य की ध्वनि से भगीरथी के दोनों किनारों को कँपाते हुए, क्लाइव की अध्यक्षता में नवद्वीप लाया गया और फिर अंग्रेज़ों के परमबंधु राज-राजेन्द्र कृष्णचंद्र भूप बहादुर की सेना द्वारा सुरक्षित होकर वहाँ से यथासमय कलकत्ते पहुँचा। १

इतिहास में इस प्रकार अकस्मात् भाग्य पलट जाने की घटना बहुत कम दीख पड़ती है। अंग्रेज़ों ने भी स्वीकार किया है कि इस विजय-वार्त्ता को सुनकर उनकी चित-वृत्ति जिस प्रकार विह्वल और उद्वेलित हो उठी थी, उस प्रकार के आनन्दोच्छ्वास का बहुत ही थोड़े युद्धों में उन्हें अनुभव हुआ। २

२६ वीं जुलाई को 'खिलअत'— वितरण के समारोह से मुर्शिदाबाद हँस उठा! क्लाइव ही उस समय कर्त्ता-धर्त्ता हो रहा था। उसके सम्बन्ध में और अधिक क्या कहें? सेनापति वाटसन ने एक सुसज्जित हाथी, दो सुसज्जित घोड़े के साथ एक सुवर्ण-खचित परिच्छद और शिरपेंच तथा एक रत्नजटि उष्णीशचूड़ा पाकर बड़े आदर और गौरव के साथ उसे सि पर रक्खा। पीछे रणतरी पर बैठकर धीरे-धीरे तोप-गर्जन जलस्थल को कंपाता हुआ अपने स्थान पर लौट गया। धीरे-धी अंग्रेजों की विजय की यह कहानी समस्त बंगाल में फैल गई

मीरजाफ़र के चरित्र के सम्बन्ध में दोनों अंग्रेज़ सेनापति

1 *Orme, vol. II. 187—188.*

2 *Few events in history have created a greater revulsion of feeling than the vic of Plassey. The people of Calcutta had been depressed not only by the capture o Factory, but by the utter loss of all their worldly goods. But now the disgrace forgotten in the triumph ; the poverty was forgotten at the sight of the treasure.—*
EARLY RECORDS OF BRITISH INDIA p. 26

"भूते पश्यन्ति बर्बराः।"

ने क्या विचार प्रकट किये, यही उस समय आलोचना का प्रधान विषय हो उठा। इतिहास में देखा जाता है कि क्लाइव और वाटसन दोनों इस सम्बन्ध में दो भिन्न मत प्रकट कर गये हैं। 'खिलअत' और पुरस्कार पाकर वाटसन ने मीरजाफ़र को लिखा था—"विशेष प्रसन्नता की बात तो यह है कि देश के प्रायः सभी व्यक्ति आपके राज्याभिषेक से आनंदित होकर यथा-योग्य आदर दिखला रहे हैं! सिराजुद्दौला को इस प्रकार जन-साधारण की शुभकामना पाने का सौभाग्य नहीं मिला!" १

इधर क्लाइव ने अपनी विलायत को चिट्ठी में लिखा—"वर्त्तमान नवाब बहादुर को ज़रा भी विद्या-बुद्धि नहीं है; जिस गुण से अपने सामन्तों एवं कर्मचारियों की सहानुभूति प्राप्त की जा सकती है या उनके हृदयों में अपने प्रति विश्वास और स्नेह-ममता उपजाई जा सकती है, उसका उनमें अत्यंत अभाव है! इन थोड़े ही महीनों के शासन-काल में देश अराजक हो उठा है; चारो ओर विद्रोहाग्नि जल उठी है। हमारी संरक्षकता के कारण ही मीरजाफ़र की रक्षा है!" २

यह अयोग्य नवाब अधिक दिन तक बंगाल-बिहार एवं

1 *But what pleases me beyond expression, is, to hear that all men rejoice in them (your health and prosperity); and while they acknowledge you are worthy of them, pray for their continuance. This is a satisfaction your predecessor never knew.—Letter to Meer Jafer from Admiral Charles Watson, commander of the Fleet belonging to the most Puissant King of Great Britain, Irresestible in battle.*

2 *In laying open the state of this government, I am concerned to mention that the Present Nabab is a Prince of little capacity, and not at all blessed with the talent of gaining the love and confidence of his principal officers. His management threw the country into great confusion in the space of few months, and might have proved of fatal consequence to himself but for our known attachment to him.—Clive's letter to the Court of Directors, 23 December 1757, para 2.*

उड़ीसा के राज-पद का संभोग न कर सका। उसके विरुद्ध भी षड्यंत्र का सूत्रपात हुआ। इस षड्यंत्र के कुचक्र में पड़कर मीरजाफ़र (नवाब सुजाउलमुल्क हाशिमद्दौला मीरमुहम्मद-जाफ़रअलीखाँ बहादुर महावत जंग) अपने प्रिय पुत्र मीरन के बाहुबल के भरोसे राज्य-रक्षा की चेष्टा करने के कारण (इतिहास में) 'क्लाइव का गधा' नाम से बदनाम हुआ; तब सबने मन में यह सोचकर इस झंझट से छुटकारा पाने की कोशिश की—"भूते पश्यन्ति वर्व्वराः।"

४
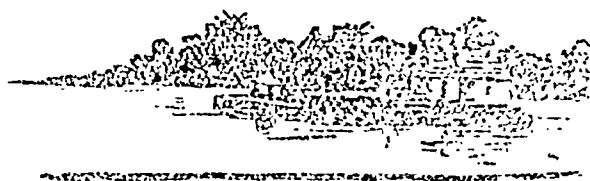
"क्लाइव का गधा !"

अंग्रेजों के लिए अपने सिर कलंक का टीका लगाकर भी अंग्रेजी-इतिहासों में मीरजाफ़र 'क्लाइव का गधा' कहलाकर अपमानित हुए हैं, किन्तु उनकी यह अकीर्तिकर उपाधि अंग्रेजों द्वारा दी हुई नहीं है। मिर्ज़ा शमशेरउद्दीन नामक उनके एक स्पष्ट-भाषी परिहास-रसिक बाल्य-सहचर थे। मिर्ज़ा साहब के नौकरों के साथ एक दिन क्लाइव के अंग्रेज़ों की कुछ कहा-सुनी हो गई। धीरे-धीरे यह बात भी मीरजाफ़र के कानों तक पहुँची। मीरजाफ़र क्लाइव की मनस्तुष्टि के लिए इतने व्यग्र रहा करते थे कि इस सामान्य बात के लिए भी मिर्ज़ा साहब पर क्रोध-प्रकाश करते हुए सबके सामने दरबार में बोले—"क्या अभीतक तुम्हें कर्नल साहब की मर्यादा

अवगत नहीं हुई ? उनके बन्धुओं का इस प्रकार अपमान करने का साहस तुमने क्यों किया ?" मिर्ज़ा, विनयावनत राजभृत्य की नाईं, कृत्रिम कातरता दिखाते हुए तुरन्त बोल उठे—"यह कैसी बात ? आप मेरे अन्नदाता हैं। जब मैं नित्य प्रातःकाल 'क्लइव के गधे' को तीन बार यथारीति सलाम करता हूँ, तो आप सहज ही समझ सकते हैं कि क्या मैं कर्नल साहब के मुँह की ओर दृढ़ता-पूर्वक देखने का भी साहस कर सकता हूँ ?"[1] इस प्रकार मिली हुई मीरजाफ़र की यह नई उपाधि धीरे-धीरे सर्वत्र फैल गई !

मिर्ज़ा साहब व्यंग्य करते हुए मीरजाफ़र को जो अकीर्तिकर उपाधि दे गये हैं, ऐतिहासिक सत्यानुसंधान-निपुण साहित्य-सेवीगण उसे ही मीरजाफ़र का वास्तविक परिचय बताकर समाज के सम्मुख रखते हैं।[2] धोबियों के गधे जिस प्रकार सुबह से शाम तक बोझा ढोकर संध्या-समय घास छोड़ और कुछ खाने को नहीं पाते, अंग्रेज़ों का बोझा ढोने जाकर, बंगाल-बिहार-उड़ीसा के सिंहासन पर पदार्पण करके भी, मीरजाफ़र को उसी प्रकार विडम्बना भोग करनी पड़ी ! मीरजाफ़र के इस अदृष्ट को स्वयं बुलाई हुई व्याधि कहकर, क्या अंग्रेज़, क्या बंगाली, सभी उससे उदासीन हो रहे, किसीने उससे ज़रा भी सहानुभूति न प्रकट की !

1 Meer Jaffer reproved him, saying. "Know you not the rank of the Colonel, that your people should dare to Insult any of his friends ?" The Mirza, putting on a look of submission, exclaimed, "My patron, how dare I even look the Colonel in the face with stediness, who every moring of my life, make three obeisances to his ASS !"—Scott History of Bengal, p. 376.

2 Mills' History of British India, vol. III.

सिराजुद्दौला ने सिंहासन की रक्षा के लिए राज्यकोष का अधिकांश धन पहले ही ख़र्च कर दिया था; जो कुछ मीरजाफ़र के हाथ लगा भी, वह अंग्रेजों का क़र्ज़ (?) चुकाने में स्वाहा हो गया—वेतन न पाने के कारण सैनिक लोग क्रुद्ध होकर दाँतों से ओठ चबाने लगे। राष्ट्र-विप्लव की सम्भावना से भयभीत होकर स्वार्थ-रक्षा के लिए कितने ही लोग गड़बड़ मचाने लगे; अतः मीरजाफ़र की रक्षा के लिए क्लाइव को सेना-सहित कुछ दिन तक राजधानी ही में रहना पड़ा। इन सब तथा अन्यान्य अनेक कारणों से एक प्रकार अंग्रेज ही सिंहासन के मालिक समझे जाने लगे। इससे पहले अंग्रेज़ मुर्शिदाबाद में दिखाई नहीं देते थे। जो लोग वाणिज्याधिकार प्राप्त करने के लिए कभी आते थे, वे भी बहुत संकोच से डरते हुए फूँक-फूँककर सड़कों पर क़दम रखते थे! पलासी-युद्ध के बाद ये ही (दीन-हीन भिखारी) अंग्रेज़ मुर्शिदाबाद के सर्वस्व हो उठे! १ तब फिर प्रजा का क्या अपराध? उसने देखा कि अंग्रेज़ ही वस्तुतः स्वामी हैं; मीरजाफ़र तो उनका गुलाम-मात्र है! यह सोचकर लोग अपनी स्वार्थ-रक्षा के लिए क्लाइव को सन्तुष्ट और अनुकूल करने को व्यग्र हो उठे। २ प्रधान-प्रधान हिंदू-मुसलमान अमीर-उमराओं तक ने क्लाइव के कृपा-कटाक्ष का भिखारी बनकर अंग्रेजों की पद-मर्यादा को सहसा सौगुना ऊँचा कर दिया।

1 *Before the capture of Calcutta, no Englishman appeared at Murshidabad, except as supplicants for trading privileges. Since the battle of Plassey, the English were lords and masters.—Early Records of British India, p. 263.*

2 *For the moment, the grandees at Murshidabad regarded Clive as the symbol of power, the arbiter of fate, the type of omnipotence. who could protect or destory at will. One and all were eager to propitiate Clive with presents; such has been the instinct of Orientals from the remotest antiquity.—Early Records of British India, p. 261.*

अपने अभाग्य से प्रजा की सहानुभूति न प्राप्त करके भी अपनी अवस्था को समझने में मीरजाफ़र को देर न हुई, किन्तु तबतक 'पासा हाथ से छूट चुका था !' अपनी अवस्था को भलीभाँति समझने पर भी वह उसका प्रतीकार न कर सके, उलटे सन्धि-पत्र में स्वीकार किये ऋण को चुका न सकने के कारण "चोर" बनना पड़ा। लोगों में प्रसिद्ध हो गया कि अन्तरंग महल में स्थित बेगमों के ख़ज़ाने की बहुमूल्य रत्नराशि को भी मीरजाफ़र ने मुन्शी नवकृष्ण की राय से अपहरण करके क्लाइव के हवाले कर दिया![1] वेतन न चुका सकने के कारण मीर-जाफ़र अपने सेवक-समूह में विश्वासघातक, शठ, प्रवंचक इत्यादि अकीर्तिकर सम्बोधनों से प्रसिद्ध होने लगे; अतएव प्रजा तथा अनुचर-वर्ग के विराग से भयभीत होकर अपने धन, मान एवं प्राण की रक्षा के लिए उन्हें अंग्रेज़ सेना की शरण लेनी पड़ी। जो मुसलमान आत्मीय अन्तरंग इतने दिन तक प्राण-पण से राजगद्दी पर बैठाने में सहायता करते आये थे, वे भी अवसर पाकर पूर्निया की फ़ौजदारी, पटना की नवाबी एवं मुर्शिदाबाद की दीवानी इत्यादि पदों पर अधिकार जमाने के लिए बार-बार उत्तेजित होने लगे।[२] हिन्दू अमात्यों को जब इसका पता लगा तो वे अपने अधिकार की रक्षा के लिए क्लाइव के शरणागत हुए! अंग्रेज़ों ने जब सन्धि-पत्र के सहारे कलकत्ते की ज़मींदारी ले ली तो उस समय मीरजाफ़र को विवश होकर लिख ही देना

1 It is also well-known that besides this treasury, there existed another in the Harem, which fact Meer Juffier concealed from Col. Clive, at the instigation of the Dewan and Colonels' Munshi.—Tarikh-i-Mansuri.

२ देखिए मुताखरीन।

पड़ा—" इस परवाने के द्वारा हुगली के ज़मींदारों, चौधरी लोगों तथा अन्य भूम्याधिकारियों को सूचित किया जाता है कि आज से वे कम्पनी के शासनाधीन हुए। वह (कम्पनी) बुरा या भला कैसा भी व्यवहार करे, बिना प्रतीकार किये उसे पालन करने की मैं आज्ञा देता हूँ।"[१] इतना ही नहीं, जगतसेठ के लाभ-मार्ग में काँटा डालकर अंग्रेज़ों को कलकत्ते में टकसाल खोलने की आज्ञा भी दे दी गई।[२] खोजा वाजिद का लाभ-जनक शोरे का व्यापार उखाड़कर विहार में शोरे के व्यवसाय का आधिपत्य अंग्रेज़ों को प्रदान करना पड़ा।[३] उपयुक्त अवसर पाकर अंग्रेज़ बनिये सदर्प अपने वाणिज्य-विस्तार में अग्रसर हुए।[४] नाना प्रकार से मीरजाफ़र का धन हड़प करके राज्यकोष शून्य कर देने पर भी उनका पेट न भरा। लवंग, पान, सुपारी, जिसी व्यवसाय में उन्होंने भारतीयों को दो पैसे की आमदनी देखी, उसीको हड़पने के लिए तैयार हो गये।[५] सिंहासन पर पदार्पण करने के बाद एक ही महीने के अन्दर

1 *Know then, Ye Zamindars &c that Ye are dependents of the Company, and that Ye MUST submit to such treatment, as they give you, WHETHER GOOD OR BAD, and this Is my express injunction.--Perwanah for the granted lands.*

2 *A Mint has been established in Calcutta ; continue coining gold and silver into Siccas and Mohurs, of the same weight and standard with those of Murshidabad ; the impression to be CALCUTTA ; they shall pass current in the Provinces of Bengal, Behar, and Orissa, and be received into the Cadjana : THERE SHALL BE NO OBSTRUCTION OR DIFFICULTY FOR KUSSOOR--Perwanah for the Mint.*

3 *At this time, through the means of Col. Clive, the Salt-peter lands of the whole province of Behar have been granted to the English company, * * * in the room of Coja Mahumed Wazeed.--Perwanah for the Salt peter of Behar.*

4 *Orme, II. 189.*

5 *As it is the nature of man to err with great changes of fortune, many, not content with the undisputed advantages accruing from the revolution, Immediately began to trade in Salt, & the other articles. which had hitherto been prohibited to all Europeans.-Ibid.*

मीरजाफ़र को इन सब अत्याचारों के विरुद्ध अभियोग उठाना पड़ा, किन्तु यह अभियोग केवल व्याकुल आर्त्तनाद एवं अरण्य-रोदन के ही रूप में परिणत होकर रह गया। उससे रोग का प्रतीकार नहीं हुआ, उलटे इसी समय से भविष्यत् में होने वाले सर्वनाश का सूत्रपात हुआ।[1]

स्वदेशवासियों के अन्न की रक्षा के लिए अंग्रेज बनियों के व्यापार की गति रोकने जाकर सिराजुद्दौला का सर्वनाश हुआ था; वही ऐतिहासिक तत्व धीरे-धीरे पुनः प्रकट होने लगा। जिन्होंने सिराजुद्दौला की उच्छृंखलता एवं शासन कार्य से असहिष्णु होकर आशा की थी कि नये नवाब (मीरजाफ़र) आयु में बड़े होने के कारण वृद्ध अलीवर्दी की उदार नीति का अनुसरण करके प्रजा-पालन करेंगे, वे भी मीरजाफ़र एवं मीरन के अत्याचार तथा अनाचार से मर्मपीड़ित होकर सिराजुद्दौला के साथ किये गये व्यवहारों की निन्दा तथा पिछले शासन की सराहना करने लगे।[2] देश की अवस्था बड़ी शोचनीय हो उठी।

मीरजाफ़र की दुर्दशा का कारण सोचकर, उसके कल्याण-साधन के लिए अंग्रेजों ने उपदेष्टा का आसन ग्रहण किया।

1 *Meer Jaffier complained of these encroachments within a month after his accession, which although checked for the present, were afterwards renewed; and at last produced much more mischief than even disinterested sagacity could have foreseen.* —*Ibid.*

2 *The greatest number of the principal people of the Provinces, disgusted with the bad qualities and tyranny of the late Nawab, had been pleased at his disposal, judging that as Meer Jaffier was advanced in years and had long served Mohubut Jung, he would follow his example; but upon his accession to power, experiencing his behaviour, and more particularly the cruel actions of his son Meerun, a Monster of his time, they now regretted the fall of Seraj-ad-Dowla, and the old saying of "Bless our Former Ruler" was renewed in the tongues of the wise and the simple.—Scott's History of Bengal, p. 379-80.*

राजकोष में रुपये का न होना ही सारे अनर्थों की जड़ है, यह सबने सहज ही समझ लिया। अभी तक पुर्निया और बिहार मीरजाफ़र अपने हाथ में नहीं कर सके थे; उनके प्राप्त करने में ही न जाने कितने धन-जन की आवश्यकता होगी, यह सोचकर लोगों के सिर चकरा गये। ऐसे समय खाली हाथ सिंहासन की रक्षा करना कितना दुरूह कार्य है, इसे सब समझ गये। उपयुक्त अवसर हाथ से न जाने देना चाहिए, यह सोचर चण्ट क्लाइव ने बेचारे बुद्धिहीन मीरजाफ़र को पट्टी पढ़ाई की 'सेना-विभाग में ही सबसे अधिक व्यय है; अतएव जब मैंने अपने ऊपर सिंहासन-रक्षा का भार ले ही लिया है, तो फिर इतनी अधिक सेना रखने का प्रयोजन ही क्या है ? आधी सेना बर्खास्त कर दीजिए।'[१]

व्यय कम करने के इस सरल उपाय का तात्पर्य समझने में मीरजाफ़र को विशेष सोचने की ज़रुरत नहीं पड़ी। 'मुझे पूरी तरह हाथ में करने के लिए ही ऐसी तदबीर बताई जा रही है,' यह आसानी से समझ में आ गया। किन्तु इतना साहस नहीं था कि इस सम्मति की अवहेलना करते। मीरजाफ़र से न तो इसे स्वीकार ही करते बना, न प्रकट रूप से इन्कार ही। इस द्विधा का कारण समझने में लोगों को देर न लगी। मीरजाफ़र का हृदय अपने-आप ही बुलाई हुई बला के भावी फल को सोचकर सिहर उठा। मीरजाफ़र ने अपना बन्धु समझकर जिस परम शत्रु को अपने घर का प्रवेश-द्वार दिखला दिया था, उसका यह कृत्य देख हृदय में उससे बदला लेने की नीति उदय

1- *In vain did Colonel Clive represent to him that, instead of drawing his treasury for keeping such an immense army on foot, he had better dismiss one half of them, and rely on the English.—Scrafton.*

हो गई है, इसे अंग्रेजों ने भी अनुमान से समझ लिया।[1] इस प्रकार मीरजाफ़र और क्लाइव दोनों स्वार्थी बन्धुओं में मन-मुटाव का उपक्रम हुआ। मौखिक आदर-अभ्यर्थना में तब भी त्रुटि नहीं हुई, किन्तु दोनों ही हृदय की बातें छिपाकर अपने इष्ट-साधन का आयोजन करने लगे।

सन्धि-पत्र का अवशिष्ट दायित्व-बंधन तोड़कर किस तरह फेंक दिया जाय, इसके लिए मीरजाफ़र नाना प्रकार का अनुसन्धान करने लगे। उनके इस अनुसन्धान की बात जानकर क्लाइव ने भी अपना पक्ष मजबूत करने का आयोजन आरंभ किया। क्लाइव को इस आयोजन के लिए कोई नई बात सीखनी नहीं पड़ी। जिस कौशल से सिराजुद्दौला के समान प्रबल प्रतापी एवं तेजस्वी नवाब को इतनी सरलता के साथ मिट्टी में मिला दिया गया, उससे मीरजाफ़र को उखाड़ फेंकने में कितनी देर लगती? उस समय राजभक्ति, स्वदेशप्रेम और स्वजातिरक्षा, दूर की बातें थीं—सभी अपने स्वार्थ के लिए एक-दूसरे के गले पर छुरी फेरने की तैयारी कर रहे थे। राज-कर्मचारियों में ही इस प्रकार की चरित्र-हीनता देखकर क्लाइव ने अपनी चालाकी से कुछ लोगों को अपनी ओर मिला लिया[2] और इस प्रकार मीरजाफ़र की सारी गुप्त-मन्त्रणाओं के जानने की सुविधा प्राप्त कर ली। गृहभेदी

1 *No sooner was Meer Jaffir advanced to the Subahship, then he began to feel his own strength; and look on us rather as rivals than allies; and his first thoughts were now to check our power and evade the execution of the treaty.--Scrafton.*

2 *(Meer Jaffir) formed his plan quite differently and seemed to think himself sufficiently powerful to dispute the remainder of the treaty; and to this he bent all his future politics;--the natural consequences of which was, that we were necessitated to strengthen ourselves, by forming a party in his own court to be a continual check upon him; a matter by no means difficult, in a country where loyalty and gratiude are ...es almost unknown.--Scrafton.*

विभीषणों की सहायता से अंग्रेज़ों की नवोदित राजशक्ति को बार बार मीरजाफ़र को पददलित करने का मौक़ा मिला। अब मीरजाफ़र ने समझ लिया कि मेरे पाप का घड़ा भर गया है। इतनी कठिनाइयों के बाद जो राजसिंहासन मिला; जिसके लिए दया-धर्म कर्त्तव्य-बुद्धि, स्नेह-ममता सबको पैरों-तले कुचलकर इस्लाम के नाम धब्बा लगाया, यहाँतक कि प्रियपुत्र मीरन के सिर पर हाथ रखकर, भगवान के पुण्यनाम पर पवित्र कुरान को स्पर्श करके, झूठी क़सम खाने में भी लज्जा न की, वही सिंहासन इस समय पैरों के नीचे है; किन्तु, हाय—सिंहासनारूढ़ शुजाउल्मुल्क हाशिमुद्दौला मीरमुहम्मद जाफ़रअलीख़ाँ बहादुर महब्बतजंग उस सिंहासन के मालिक नहीं हैं वरन् 'क्लाइव का स्नेहानुगलित, इशारे पर चलने वाला, घास खाकर दिन भर बोझा ढोने वाला, कंकालावशिष्ट, अभागा गधा' उसका अधिकारी है ! हाय !!
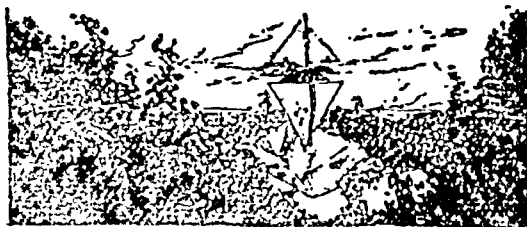
कर्म-फल

Every transaction since Plassey—the suppression of the risings within, repulse of the two formidable invasion from without, the crushing of the Dutch—had confirmed and strengthened the predominance of the English. Mr. Ja'far had become simply a tool in their hands, an unwilling tool, it is true, but a tool whom the circumstances of every year forced to be more submissive. Against this position the whole soul of Mir Kasim revolted.—*Col. Malleson.*

बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा के अन्तिम स्वाधीन नवाब का नाम मीरक़ासिम था। वह इस देश के इतिहास में क़ासिमअली के नाम से भी परिचित हैं। उनके अधःपतन के

बाद जिसे मसनद पर बैठने का अधिकार मिला, वह स्वाधीनभाव से शासन-दण्ड चलाने में समर्थ नहीं हुआ, इसीलिए कहता हूँ कि कासिमअली का इतिहास ही बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा के मुसलमान शासन का अन्तिम चित्रपट है।

पलासी-युद्ध के साथ ही मुसलमान शासन-शक्ति की जड़ उखड़नी शुरू हुई। अंग्रेज सेनापति के मीरजाफ़र को मसनद पर बैठाकर 'नज़र' देते और बंगाल, बिहार-उड़ीसा का 'सूबेदार' कहकर यथारीति अभिवादन करते हुए देखकर भी, लोगों को समझते देर न लगी कि मीरजाफ़र केवल नाम के लिए नवाब हैं, क्लाइव और उसके साथी ही वस्तुतः कर्त्ता-धर्ता एवं राज्य के भाग्य-विधाता हैं। बाद के अंग्रेज इतिहास-लेखकों ने लिखा है— "हमने पलासी-युद्ध में बाहुबल से बंगाल जीतकर भारतवर्ष में बृटिश-साम्राज्य की नींव डाली।" किन्तु सच पूछा जाय तो गुप्त संधि-पत्र ही हमारे पराभव और अंग्रेजों के साम्राज्य-संस्थापन का प्रधान कारण था। बाहु-बल का चमत्कार तो कहीं दीख नहीं पड़ता। अंग्रेजों के साथ षड्यंत्र करने के समय भी लोभान्ध मीरजाफ़र ने प्रकाश्य और गुप्त भाव से उन्हें जो आशातिरिक्त पुरस्कार देने का वचन दिया था, वही समय के फेर से मुसलमान शासन-शक्ति को शिथिल करके बृटिश साम्राज्य-विस्तार का कारण हो उठा। अज्ञान से अपने ही हाथों विनाश का बीज बोया गया।

सर्वस्व समर्पण करके भी मीरजाफ़र ऋण से छुटकारा न पा सके, उलटे सब-कुछ अंग्रेजों के चरणों में सौंप देने के कारण विप्लवमय राज्य का शासन करना भी उनके लिए असंभव हो

गया ! अवसर आया देख जब चतुर क्लाइव ने प्रधान-प्रधान मंत्रियों को अपनी ओर मिला लिया, तो मीरजाफ़र के हृदय से राज्य-शासन की संभावना तिरोहित होने लगी। १ इस विवाद में अग्रसर होने के लिए अपेक्षित साहस और अर्थबल ज्यों-ज्यों क्षीण होने लगा, मीरजाफ़र के राज्याभिनय की उत्कट अभिलाषा भी त्यों-त्यों विशादपूर्ण करुण-क्रन्दन के रूप में बदलने लगी। घड़ा थोड़ी ही दिनों में मुँह को आ गया !

कलकत्ता के अंग्रेज व्यापारी मुल्क का विपुल धन पाकर भी सन्तुष्ट नहीं हुए, उन्होंने जल-थल में अपने प्रबल आतंक के भरोसे स्वाधीन वाणिज्य-विस्तार के नये-नये रास्ते निकालकर दरिद्र भारतीयों के पेट का अन्न छीनना शुरू कर दिया। नवाब मुरशिदकुली ख़ाँ के समय में जो इच्छा सफल न हो सकी थी, और सिराजुद्दौला के समय में भी चेष्टा करके अंग्रेज बनिये जिसके लिए अपमानित हुए थे, इस समय अवसर पाकर उसी-को सफल करने के लिए कम्पनी का झण्डा उड़ाकर सबने ही बिना 'कर' दिये व्यापार करना आरंभ किया। २ शर्त्तनामे के अनुसार इस प्रकार का अन्तःवाणिज्य अंग्रेजों के लिए निषिद्ध था, इस प्रकार के वाणिज्य में हस्तक्षेप करने के साथ ही क़ानूनन वे रोके जा सकते थे। किन्तु रोकने की शक्ति और साहस देश में नहीं रह गया था, अतएव चारो ओर प्रबल विद्रोहाग्नि धधक

1 *We were necessitated to strengthen ourselves by forming a party in his own Court to be a continual check upon him ; a matter by no means difficult in a country where loyalty and gratitude are virtues almost unknown.*--SCRAFTON.

2 *As it is the nature of man to err with great changes of fortune, many, not content with the undisputed advantages accruing from the revolution, immediately began to trade in salt and other articles which had hitherto been prohibited to all Europeans.*

Orme, vol. II. 189

उठी। मुसलमानों की शासन-शक्ति चूर हो गई है, यह समझते किसी को देर न लगी!

जिन लोगों के बाहु-बल और शासन-कौशल पर भरोसा करके मुसलमान इतने दिनों तक बंगाल का शासन करते आये थे, वे मीरजाफ़र पर विश्वास न करके अपनी स्वार्थ-रक्षा के लिए व्याकुल हो उठे। कभी बाहु-बल से, कभी छल-कौशल से और कभी आँखें दिखाकर उनमें से कितने ही नवाब की शासन-क्षमता अस्वीकार करने लगे। पुर्निया शत्रु-संकुल; बिहार विद्रोहोन्मुख; राजधानी हाहाकारपूर्ण, राजकोष धन-रत्नहीन; शाहाज़ादा सिंहासन पर आक्रमण करने को तैयार— एक साथ ही इन सब अदृष्ट विडम्बनाओं के प्रबल आक्रमण ने मीरजाफ़र को उत्तरोत्तर अंग्रेज़ों का क्रीतदास बना दिया। बेचारा गले की फाँसी छुड़ा न सका। प्रत्येक घटना ने एक के बाद एक आक्रमण करके उसके पैरों को जकड़ दिया और इस प्रकार वह हिलने-डुलने योग्य भी न रह गया। राजमुकुट विडम्बना दीखने लगा; प्रकृत शासन-क्षमता की असमर्थता के कारण उपजी हुई चिन्ता के मारे बाल पककर पीले पड़ गये। जिन लोगों ने मीरजाफ़र के विश्वासघात-मय गुप्त षड्यंत्र में प्रधान रूप से सहायता की थी, उनमें से भी कोई-कोई सामने ही अपमान और घृणा दिखाने लगे।

अपनी भूल समझने में मीरजाफ़र को देर न लगी। गुप्तरूप से अंग्रेज 'बन्धुओं' का यह स्नेह-बंधन तोड़ने का आयोजन भी किया, किन्तु वह सफल न हो सका। एडमिरल वाटसन कुछ सज्जन थे; उनकी अकालमृत्यु हो जाने के बाद क्लाइव ने मीरजाफ़र

की घोर निन्दा से भरे हुए पत्र विलायत भेजने शुरू किये। इसी समय जावा के डच लोगों ने विद्रोह करने के लिए जहाज लेकर कलकत्ते की ओर प्रस्थान किया। अंग्रेजों ने समझा कि स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए मीरजाफ़र ने ही यह कुटिल कौशल किया है।[1] डचों का आक्रमण सफल नहीं हुआ किन्तु बेचारे मीरजाफ़र को उनके बदले प्रायश्चित्त करना पड़ा। उन्होंने एक हाथ से आँसू पोंछकर और दूसरे हाथ से क्लाइव के नाम एक बहुमूल्य जागीर का दान-पत्र लिखकर किसी प्रकार सिंहासन की रक्षा की।[2] इसके थोड़े ही दिन बाद वज्राघात से प्रियपुत्र मीरन की अकस्मात् मृत्यु हुई।

'मुर्शिदाबाद कहानी' नामक बंगला पुस्तक के लेखक ने लिखा है—"वज्राघात से मीरन की मृत्यु हुई, इसे कितने ही लोग सन्देहजनक मानते हैं।" इस जनरव का मूल क्या है, यह निस्सन्देह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। सिराजुद्दौला की नाईं मीरन भी उच्छृंखल युवक था; पिता के राज्याधिकार पाने के पश्चात् अपनेको मसनद का उत्तराधिकारी समझकर वह और भी दुर्वृत्त एवं निष्ठुर हो गया। लोगों का कथन है कि ढाका में उसीके आदेश से नौका के साथ डुबाई जाती हुई घसीटी और अमीना दोनों बेगमों ने वज्राघात द्वारा उसकी मृत्यु होने का अभिशाप दिया था. इसीलिए ऐसी घटना हुई। मीरन की इस प्रकार की मृत्यु में जो लोग सन्देह करते हैं, वे अपना कोई

1 *Malleson's Decisive Battles of India.*

2 *The complicity of Meer Jaffir in (the) Dutch Exepedition, was beyond all doubt. Indeed it might be conjectured that Clive got his JAXHIRA, not because he had defeated Shajada, but because Meer Jaffir was in mortal terror, lest Clive should punish him for his intrigues with the Dutch.—EARLY RECORDS OF BRITISH INDIA, P. 226.*

विश्वस्त मत प्रकाश नहीं करते। उस समय के प्रसिद्ध इतिहास-लेखक गुलामहुसेन ने तो बज्राघात से ही मृत्यु होने की बात लिखी है। राजमहल में इस अशान्त मुसलमान युवक की समाधि अब भी देखी जा सकती है।

मीरन की मृत्यु बंगाल के इतिहास की एक प्रसिद्ध घटना है। इसी समय से बंगाल के इतिहास में एक नये विप्लव का सूत्रपात हुआ। मीरन की मृत्यु के बाद शोक-संतप्त वृद्ध नवाब को प्रबोध देने वाला कोई नहीं रह गया। जिन लोगों ने परिश्रम करके मीरजाफ़र को गद्दी पर बैठाया था, उनमें से भी कितने ही देश-देशान्तरों को चले गये थे और कितने ही घर बैठे विलायत के इन विस्मयापन्न गोरे बनियों की कुतूहलोद्दीपक कहानी सुनाते हुए पलासी-युद्ध की अलौकिक वीर कहानी के वर्णन-लालित्य से अपने बन्धुओं का मनोरंजन करते थे।

इस समय जिन लोगों को कलकत्ते के अंग्रेजी दरबार में सदस्य का आसन मिला था, उनमें अधिकांश 'अर्थलोभी बन्धु' थे। वे अपना पेट भरने की आशा से मीरजाफ़र के अधःपतन की चेष्टा करने लगे। १७६० ई० की ८ वीं फ़रवरी को क्लाइव के विलायत चले जाने के कारण, कुछ दिन के लिए हालवेल साहब सभापति हुए। उस समय पीटर आमियट (Peter Amyatt), मेजर केलाड (Cailaud), समनर (Sumner) और मेगुयर (Macguire) सदस्य हुए। *

1 Governor Clive departing for Europe, the 8th of February, 1763, Mr. Holwel succeeded by his rank to the government; established committee en rusted with the conduct of all political occurrance with the Government consisted of the President, Peter Amyatt Esqr., Major Cailaud, W. B. Sumner Esqr, and W. Macguire Esqr.—INDIAI TRACTS, P. 22.

थोड़े दिनों के लिए अंग्रेजी दरबार का सभापति होकर हालवेल. गवर्नर हालवेल के नाम से, इतिहास में प्रसिद्ध हो गया है। उतने थोड़े समय के भीतर ही अपने कृत्य से वह अपनेको चिर-स्मरणीय बना गया है। वह पहले चिकित्सक बनकर अर्थोपार्जन के निमित्त भारतवर्ष आया था; पीछे इस व्यवसाय में सफलता की आशा न देख प्रयत्न करके कलकत्ते का 'कलेक्टर' (अर्थात् ज़मींदार) बन गया। इस पद पर रहने के समय धन और पद-गौरव दोनों की कमी नहीं थी, वरन् अपच हो गया था। सिराजुद्दौला ने जब कलकत्ते पर चढ़ाई करके क़िले को घेर लिया तो कलकत्ते के तात्कालिक अंग्रेज गवर्नर ड्रेक साहब और प्रधान-प्रधान सेनानायकगण प्राण लेकर भाग गये। उस समय कुछ चारा न देख दुर्गवासियों ने हालवेल साहब को ही अपना सेनपति चुना। हालवेल दुर्ग छोड़कर भागा नहीं, किन्तु दो दिन तक घोर परिश्रम करके भी जब रक्षा का कोई उपाय नहीं देखा तो अन्त में निरुपाय होकर आत्मसमर्पण करना ही पड़ा। 'काल-कोठरी' से छुटकारा पाकर भी बेचारे को दण्ड-स्वरूप मुर्शिदाबाद के जेलख़ाने में बहुत दिनों तक क्लेश भोगना पड़ा। छुटकारा पाने पर अपनी कष्ट-कथाओं में ख़ूब नमक-मिर्च लगाकर अंग्रेजों के सम्मुख उपस्थित करने के कारण कुछ दिनों के लिए वह 'दस में एक' हो गया। थाड़े ही दिनों बाद उसकी 'कीर्ति-कहानी' का परिचय पाकर विलायत के कम्पनी-नियन्ताओं ने जब उसपर सख़्ती आरंभ की, तो अपनी इज्ज़त बचाने के लिए इस्तीफ़ा देकर बेचारा स्वदेश को लौट गया। अपने त्यागपत्र में उसने लिखा था—"कम्पनी के स्वार्थ और संग्राम को रक्षा के लिए मैंने अ

नहीं किया ? किन्तु, कृतज्ञतापूर्वक धन्यवाद पाने के बदले, उलटे मुझे अपवाद ही अपवाद प्राप्त हुआ। उपकार का ऐसा फल पाकर अब मुझे इस्तीफा देना पड़ा रहा है !" जिसकी लेखनी से निकली हुई कालकोठरी-कहानी ने इतिहास-लेखकों का हृदय विचलित कर दिया, उसीकी लेखनी से निकला हुआ यह करुण विलाप उनको सहानुभूति और समवेदना प्राप्त करने में भी समर्थ न हो सका ![1]

हालवेल, औरों की भाँति अपने को नवाब का बन्धु कहकर धोखा नहीं देता था। वरन् समय-समय पर उन (नवाब) की यथेष्ट निन्दा करता था और अवसर पाते ही नवाब की शासन-क्षमता के प्रति आन्तरिक अवज्ञा प्रकाश करने में भी त्रुटि न करता था। क्लाइव के इंग्लैण्ड लौट जाने पर कलकत्ते के अंग्रेज़ी दरबार के प्रधान का पद प्राप्त करते ही उसके सारे गुप्त-संकल्प जागृत हो उठे। 'कालकोठरी' की करुण कहानी की सृष्टि करके सभ्य जगत् को रुलाने के कारण, मीरजाफ़र से पाये हुए धन-भाण्डार की बाँट के समय उसे एक लाख से अधिक नहीं मिला था। हालवेल उस समय निम्न सदस्य मात्र था, अतएव निरुपाय होकर अपमान की व्यथा चुपचाप विष की घूँट की नाईं पी गया। वही हालवेल इस समय अंग्रेजी दरबार का सर्वस्व होकर यदि प्रबल प्रतिहिंसा के तीव्र तेज से जल उठा तो इसमें क्या आश्चर्य ? हालवेल को

1 *The many unmerited and consequently unjust marks of resentment which I have lately recieved from the present Court of Directors, will not suffer me longer to hold a service, in the cause of which, my steady and unwearied zeal for the honor and interest of the Company, might have expected a more equitacle return.--Holwell's letter to the President, 29 September 1760. (INDIA TRACTS, P. 377--373).*

इस प्रज्वलित विद्वेषाग्नि में अभागा मीरजाफ़र पतंग के समान पतित हुआ !

नवाब को किसी प्रकार पदच्युत करके मुर्शिदाबाद का राजसिंहासन फिर अधिक मूल्य में बेचकर अपनी थैली भरना ही जिसका लक्ष्य हो उठा, उसको मीरजाफ़र पर कलंक लगाकर सिंहासन से हटा देने का समर्थन करने के लिए कहानी गढ़ने में क्या कठिनाई हो सकती थी? जिसने अपने हाथ से 'कालकोठरी-हत्या' का अलौकिक इतिहास रचकर समाज के सामने उपस्थित किया था, समय पाकर वही अपने अभ्यस्त हाथ से फिर 'इतिहास' लिखने बैठा !

अपने सुललित वचन-विन्यास-कौशल से, मानो आँसू बहाते हुए, हालवेल ने पुनः मीरजाफ़र के विरुद्ध एक हत्या-कहानी गढ़ डाली ! उसका नाम 'ढाका की हत्या-कहानी' है। अर्थ-संग्रह का नया-नया उपाय निकालने और उसके लिए नीति की मर्यादा का उल्लंघन करने में हालवेल कैसा सिद्ध था, इसे तात्कालिक अंग्रेजों ने अनेक स्थानों पर साफ़-साफ लिखा है। १

कालकोठरी-हत्या की सचाई-झुठाई के सम्बन्ध में अभी तक तर्क-वितर्क का अन्त नहीं हुआ। इतिहास का सरल सिद्धान्त सर्वत्र मान लेने की उदारता आज भी लोगों में नहीं दिखाई पड़ती। कलकत्ता के राजपथ की बग़ल में 'कालकोठरी हत्या' का स्मृति-

1 *Being blest with a genius, uncommonly fertile in expedients for RAISING MONEY and further unclogged by those silly notions of punctilion, which often stand in the way between some people and fortune, he had projected and put in practice several INFERIOR MANEUVERS ; but CHEFE D' SEUVRE, this master scheme, though formed almost as soon as he came to power, time did not allow him the honor of executing.—REFLECTION ON THE PRESENT STATE OF OUR EAST INDIAN AFFAIRS, P. 20.*

स्तंभ अब भी खड़ा है। इस 'कालकोठरी-हत्या-कहानी' को झूठा सिद्ध कर देने पर भी अभीतक कितनों ही ने विस्मय से, कुछ ने विराग से, और कुछ ने द्वेष के कारण, पूरी तरह उसकी झुठाई पर विश्वास नहीं किया है। किन्तु हालवेल की यह 'ढाका हत्या-कहानी' बिलकुल झूठी और स्वकल्पित है, इसमें किसी को कुछ सन्देह नहीं है। हालवेल के स्वदेशवासी राजकर्मचारियों ने ही लिखा है—"वह सर्वथा मिथ्या है; उसमें लेशमात्र सत्य नहीं।" १

हालवेल केवल कहानी गढ़कर ही चुप नहीं हुआ। मीर-जाफ़र को गद्दी से उतारकर किसको उसपर बैठाया जायगा और इस भाग्य-परिवर्तन के लिए कम्पनी और उसके सदस्यों के पेट में कितना धन जायगा, इत्यादि सारी बातें भी उसने स्थिर कर लीं। क्लाइव के इंग्लैण्ड लौट जाने पर वांसिटर्ट (Vansittart) गवर्नर नियुक्त हुआ। नये गवर्नर के आगमन की प्रतीक्षा में, अपना संकल्प पूरा करने का साहस न करके, हालवेल सतृष्ण नयनों से आशा-पथ की ओर देखता रहा। २ वांसिटर्ट कमजोर प्रकृति का पर बड़ा सज्जन और ईमानदार पुरुष था, किन्तु उसके दुर्भाग्य से उसके साथी बेईमान थे, अतएव, वह भी उनकी चाल में पड़ गया।

1 *In justice to the memory of the late Nabob Meer Jaffier, we think it incumbent on us to acquaint you that the horrible massacre with which he is charged by M. Holwell..... are CRUEL ASPERSIONs on the character of that Prince, WHICH HAVE NOT THE LEAST FOUNDATION IN TRUTH.--LETTER TO COURT, 30 th Sep. 1760. Supplement.*

२ विन्सेण्ट स्मिथ ने लिखा है:—*"During Clive's absense the Company's affairs in Bengal were ill-managed by Mr. Vansittart, a weak but tolerbly honest man who had the misforteune to be surrounded by colleagues not at all honest."*

जो सौभाग्यशाली मुसलमान राज-कर्मचारी, इन कुटिल कौशलों से सिंहासन पाने की आशा में मस्तक ऊपर किये हुए, मीर जाफ़र के अधःपतन की प्रतीक्षा कर रहा था, वह उस (मीरजाफ़र) का जामाता था—उसी का नाम इतिहास-विख्यात मीरक़ासिम है!
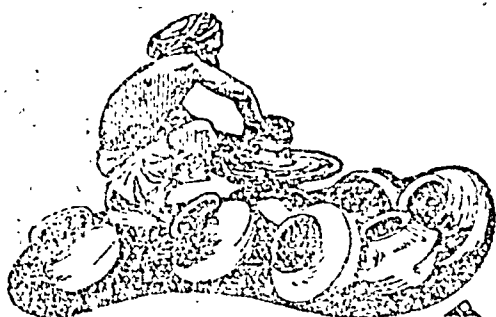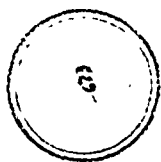
मूल्य-निरूपण

Admitted to the deliberations of the English councillors, Mir Kasim, feeling his way carefully, soon came to the conclusion that *there was not one amongst them who could not be bought.* His father-in-law had bought their predecessors, he could ascertain their price, and buy them.—*Col. Malleson.*

बंगालियों को चरित्रहीनता से लाभ उठाकर बृटिश वनियों की गुप्त मंत्रणा द्वारा सिराजुद्दौला को पराजित करने के उपरान्त, चारों ओर से बंगाल पर सतृष्ण दृष्टियों का सूत्रपात हुआ। फरासीसी लोग प्रतिहिंसा-ताड़ित अशान्त

हृदय से अंग्रेजों को निकाल बाहर करने की चेष्टा में लग गये; शाहजादा पितृ-सिंहासन से वंचित होकर साम्राज्य-लालायित अतृप्त अन्तःकरण से बंगाल-बिहार-उड़ीसा की सूबेदारी हथियाने की आशा से सेना संग्रह करने में व्यस्त हो गया; मरहठों की अश्वसेना ग्राम-नगर विध्वंस करने का अवसर ढूँढ रही है, ऐसी अफवाह जनता में जोरों से फैल गई।

ब्रिटिश वणिक मीरजाफर की रक्षा के लिए संगीन लेकर प्रासाद, शिविर एवं राजदुर्ग में मौजूद थे। उनके कर्मचारीवर्ग कम्पनी के वाणिज्य-व्यवसाय को शिथिल कर अपना पेट भरने की आशा से सौदागरी करने के लिए लालायित थे। मीर जाफर को हाथ में रखकर उनके नाम पर बंगाल-बिहार-उड़ीसा के भाग्य-निर्णय में सर्वस्व कर्ता-धर्ता के पद पर आरूढ़ होने की आशा से क्लाइव दुर्ग-निर्माण में शिथिलता कर रहा था। इन सब अवस्थाओं की जाँच कर विलायत की वाणिक-समिति सिहर उठी। उन लोगों का अधिकांश मूलधन दुर्ग-कार्य में नष्ट हो गया। यह उन लोगों का लक्ष्य नहीं था।[१] उन लोगों ने क्लाइव को बार-बार सतर्क करने में त्रुटि नहीं की। परन्तु उन लोगों के व्याकुल होने से क्या होता? बहुत दूर रहने के कारण बंगाल के अंग्रेजी दरबार के कार्य-प्रवाह को रोकने में वे लोग समर्थ नहीं हुए। कम्पनी के कर्मचारीगण राज्याधिकार प्राप्त करने की उत्तेजना के कारण वाणिज्य के रूखे कार्य को बढ़ाने में पहले की भाँति परिश्रम करने के लिए तैयार नहीं हुए।

इस नये नीति-परिवर्तन का अवश्यंभावी अशुभ फल

1 *Long's Selections from the Records of the Government of India.*

फलना आरंभ हो गया। हालवेल ने जिस समय अंग्रेजी दरबार का शासन-भार ग्रहण किया, उस समय कम्पनी के खज़ाने में रुपयों की बड़ी कमी थी। वे लोग व्याकुल-हृदय से धन-कुबेर जगतसेठ के पास ऋण के लिए प्रार्थना करने को बाध्य हुए। वारेन हेस्टिंग्स के द्वारा यह प्रार्थना जगतसेठ के निकट उपस्थित की गई पर वे ऋण देने को राज़ी नहीं हुए। यह संवाद पाकर गवर्नर हालवेल ने भविष्य में सेठ-वंश का सर्वनाश करने की धमकी दी, पर ऋण न पा सके। हालवेल ने वारेन हेस्टिंग्स को लिख भेजा-"ऐसा समय भी आ सकता है जबकि सेठजी को कम्पनी का आश्रय लेने के लिए लालायित होना पड़ेगा। उस दिन उन्हें शैतान के हाथ अपने को समर्पित करके मुसीबत झेलनी पड़ेगी। यह बात उन्हें अच्छी तरह से समझा दीजिएगा!"[१] इस समय कम्पनी की आर्थिक अवस्था ऐसी खराब होगई थी कि मीरक़ासिम ने समझा—यही अवसर है!

पहले राज-विप्लव में शत्रु-मित्र सभी की आँखें खुल गई थीं। बंगालियों की दुर्बलता का मूल क्या है, इसे अंग्रेज लोग समझ गये थे। अंग्रेजों की दुर्बलता का मूल क्या है, इसे भी बंगालियों ने समझ लिया था। इस प्रकार मैदान में किसी को किसी प्रकार की हिचकिचाहट करने का कोई कारण नहीं रह गया। मीरकासिम जानते थे, अंग्रेज कर्मचारी रुपयों के दास हैं, मूल्य-निर्णय करने पर उन सभों को खरीद लेना संभव है। मीरजाफर ने एक दल को मूल्य देकर खरीदा था।

1 A time may come, when they may stand in need of the Company's protection, in which case they may be assured THEY SHALL BE LEFT TO SATAN to be buffeted.—LETTER form J. Z. Holwell to Mr. Warren Hastings, dated Fort William May 8, 1760.

जामाता मीरकासिम एक और दल का मूल्य निर्णय कर उसे खरीदने की चेष्टा में प्रवृत्त हुए। इस प्रकार स्वार्थ के चरणतल में गुप्त संधिपत्र की धर्म-प्रतिज्ञा को वलिदान कर अंग्रेज और बंगाली पुनः गुप्त मंत्रणा में लिप्त हुए।

मीरजाफर के विरुद्ध जाल बिछाया गया। किस कौशल से मीरजाफर का सिंहासन मीरकासिम के हाथ आ गया, यह अतिशय आश्चर्य की घटना है। जिन सब घटना चक्रों में फँसकर मीरजाफर सिंहासनच्युत हुए थे, उनका ऐतिहासिक विश्लेषण करने पर अनेक रहस्य प्रकट होते हैं।

मीरकासिम अंग्रेजों का विश्वास नहीं करते थे। वह भी सिराजुद्दौला की तरह अंग्रेजों को घृणा करने की शिक्षा से शिक्षित हुए थे। सिराजुद्दौला देश का राजा था। वह हृदय के आवेग से अधीर होकर शैशव काल में ही अंग्रेजों से द्वेष करने लगा था। मीरकासिम केवल राज-कर्मचारी थे। उन्हें अनुराग-विराग करने का कोई प्रयोजन नहीं था। अतः अंग्रेज लोग उन्हें अपना मित्र ही समझते थे,। वह भी स्वार्थ-सिद्धि की आशा से अंग्रेजों के इस भ्रम को दूर नहीं करते थे। स्वयं कर्नल क्लाइव ने भी मीरकासिम को अंग्रेजों का अकृत्रिम मित्र समझ उनकी पदोन्नति के लिए सिफारिश का पत्र स्वदेश भेजा था। यही मीरकासिम की पदोन्नति का प्रथम सोपान था!

क्लाइव की विलायत-यात्रा के बाद, सेनापति के पद पर अभिषिक्त होकर, केलड गवर्नर हालवेल के प्रधान सदस्य हुए थे। इस परिवर्तन के तीन महीने के भीतर ही मीरकासिम की आशा के सफल होने का सूत्र-पात हुआ। गवर्नर हालवेल ने ५ मई

को सेनापति केलड को लिखा—"मीरकासिम के लिए कर्नल क्लाइव ने जो अनुरोध किया था वह भी लिखे देता हूँ। इस सम्बन्ध में नवाब को भी पत्र लिखा है। जैसा समय है, उससे राजा रामनारायण की प्रभुभक्ति और कार्य-दक्षता में संदेह करने का कारण मालूम होता है। नवाब शायद शीघ्र ही उन्हें और उनके अधीनस्थ अन्य राजकर्मचारियों को पदच्युत करेंगे। हमारे साथ इस विषय में आपका मतभेद न हो तो, आप कासिम अली की पदोन्नति की चेष्टा करें, इसमें मैं विशेष अनुगृहीत हूँगा।"

इस पत्र में कासिमअली की पदोन्नति के लिए हालवेल की व्यग्रता देखकर, उसका मूल कारण जानने का कुतूहल किसे न होगा? उन दिनों प्रतिभा के प्रति आदर दिखलाने के लिए अंग्रेज किसीकी पदोन्नति की चेष्टा नहीं करते थे। उस समय स्वार्थ ही सब कार्यों का प्रधान प्रवर्त्तक था। गवर्नर होने के बाद ही संयोग-वश हालवेल की मीरकासिम से भेंट हुई। मीरकासिम उस समय मरहठों की गति रोकने के उद्देश से ससैन्य मेदिनीपुर प्रान्त में गये थे। हालवेल से साक्षात् कर उन्होंने उनकी सहायता से पटना की नवाबी हासिल करने की चेष्टा की थी और चेष्टा के सफल होने पर हालवेल को यथासाध्य पुरस्कार प्रदान करने का प्रलोभन देने में भी त्रुटि नहीं की थी। केवल पटना की नवाबी पाकर ही सन्तोष करने का उनका विचार नहीं था। कारण, चतुर मीरकासिम ने हालवेल के अभिप्राय से अनुमान कर लिया था कि अंग्रेज शीघ्र ही अकर्मण्य मीरजाफर को पदच्युत कर देंगे एवं शाहज़ादा को दिल्ली के सिंहासन पर बैठाकर, उसके फर-

मान की दोहाई दे अन्य किसी को भी नाममात्र का नवाब बनाकर स्वयं बंगाल–बिहार–उड़ीसा की नवाबी करेंगे। यह बात कासिमअली को अच्छी न लगी, इसीसे वह उसे दूर करने के लिए व्याकुल हो उठे। इस समय पटना की नवाबी पा लेने पर, उनको अपने कार्यक्रम में सुविधा होने की संभावना थी। क़ासिमअली पहले इसके लिए हालवेल की शरणागत हुए। अंग्रेजों के मीरजाफर को पदच्युत करने की बात सुनकर क़ासिमअली की इच्छा और भी बलवती हो उठी। उन्होंने हालवेल के मूल्य का निर्णय कर हालवेल की सहायता से ही मीरजाफर को पदच्युत करने का आयोजन आरंभ किया।

इस प्रकार के गुरुतर कार्य में हस्तक्षेप करने पर कम्पनी एवं कम्पनी के कर्मचारी वर्ग के लाभ की सम्भावना थी। मीरजाफर की भांति अकर्मण्य अफीमची नवाब को पदच्युत करने का प्रस्ताव उपस्थित करने पर अंग्रेजी दरबार के सदस्यगण उसमे सम्मत होंगे कि नहीं, इसका निर्णय करना ही हालवेल का प्रधान कार्य था! सदस्यों की सम्मति प्राप्त कर लेने पर, मीरकासिम की सहायता से बिना खून बहाये, राज्य-विप्लव करने में विशेष कठिनता न होगी, यह समझने में हालवेल को विलम्ब नहीं हुआ; किन्तु इस कार्य में अग्रसर होने के पहले अंग्रेज सेनापति कर्नल केलड को अपने पक्ष में मिला लेना आवश्यक था। हालवेल ने इसके लिए केलड को लिखा—"दो दिन के लिए एक बार कलकत्ता आइए; आपके साथ हमलोगों को विशेष परामर्श करने की आवश्यकता है। शाहजादा न्यायसंगत सम्राट् हैं। यह देश उन्हींका है। फिर भी उनके विरुद्ध अस्त्र धारण किया गया है। किसीके

लिए—मीरजाफर के लिए ? उसकी शासन-नीति की तो जितनी ही आलोचना करता हूँ, उतना ही आपके पहले आक्षेप की सत्यता का अनुभव करता हूँ। आपने सत्य ही कहा था— "मीरजाफ़र की शासन-नीति ऊपर से नीचे तक खोखली है; उसका अधःपतन, उसके वंश का अधःपतन अनिवार्य है। उसकी सहायता करके क्या होगा ?"

पर हालवेल का उद्देश्य सिद्ध नहीं हुआ। केलड हालही में विलायत से भारतवर्ष आये थे। भारतवर्ष की कूटनीति उस समय भी सेनापात की शिक्षा-दीक्षा विफल करने में समर्थ नहीं हुई थी। उन्होंने हालवेल के पत्र को युक्तिसंगत नहीं समझा वरन् सरल भाव का पत्र समझकर सरल भाव से ही उत्तर भेज दिया—

"आपका २४ तारीख का पत्र पाकर मैं अनुगृहीत हुआ। कलकत्ता आने का प्रयोजन क्या है ? हम लोग इस समय जिसके पक्ष का समर्थन कर रहे हैं वह अच्छा आदमी नहीं है, इसमें सन्देह नहीं परन्तु उसकी अपेक्षा अच्छा आदमी मिलेगा कहाँ ? उसके लिए चेष्टा करने पर सम्भव है और कठिनाइयों में फँसना पड़े। देश में शांति स्थापित करने में ही हम लोगों का लाभ है; उसके द्वारा वाणिज्य की श्रीवृद्धि होगी ! हम लोग राज-विप्लव का आह्वान कर एवं उसे घसीट लाकर पुनः अशान्ति को क्यों पैदा करें ? अशान्ति मचाये विना राज-विप्लव करना असम्भव है। यदि आप ही आप राज-विप्लव संगठित होने का सूत्रपात हो जाय, तो उसे नीरव होकर सह लेना भी हम लोगों के पक्ष में बुद्धिमत्ता का कार्य नहीं होगा एक आदमी को पदच्युत कर और एक आदमी को मसनद पर बैठाने से लाभ क्या है ? हो

स्वीकार करने को बाध्य होंगे। कम्पनी को केलड का ही परामर्श ग्रहण करना उचित था; उससे वाणिज्य की श्रीवृद्धि होती, विश्वास-घात की कलंक-कालिमा से इतिहास न कलंकित होता; मीर-कासिम भी अंग्रेजों को नष्ट करने के प्रयत्न करने का अवसर न पाते। परन्तु केलड का यह मत शीघ्र ही बदल गया। हालवेल का और एक पत्र पाकर वह अपने पूर्वोक्त सरल मत के विरुद्ध हालवेल की ओर कुछ-कुछ खिंच गये। हालवेल के लिखे हुए इस दूसरे पत्र का पता नहीं लगता। किस तर्क से उन्होंने केलड को अपने पक्ष में खींच लिया था, यह भी आज ज्ञात नहीं है। केवल केलड के प्रत्युत्तर में उसका कुछ आभास मिलता है, जो इस प्रकार है—

"आपका २५ ता० का लिखा पत्र मिला। आपने जो प्रस्ताव किया है, उसके अनुसार कार्य करने में कोई आपत्ति नहीं है—हेस्टिंग्स एक बार वृद्ध नवाब को समझा कर देखें। मैं भी छोटे नवाब के साथ (मीरन) बातें करके देखूँगा। परन्तु देखिए, फिल-हाल हम लोग पटना नहीं जा सकेंगे। वर्षाकाल में धीरे धीरे अच्छी तरह सोच-समझकर निरापद पथ से यात्रा करनी होगी। उस समय हम लोग विशेष विचार करके कर्त्तव्य का निर्णय कर सकेंगे। जिससे हम लोगों का गौरव नष्ट न हो, हम लोगों के देश और मालिकों का सब प्रकार से लाभ हो, उसी उपाय का अवलंबन करना उचित है। परन्तु मीरजाफ़र पर एकबारगी यह प्रकट कर देना उचित नहीं होगा।"

इस प्रत्युत्तर के पढ़ने से स्पष्ट ही मालूम होता है कि हाल-वेल के पत्र से कर्नल केलड के मन में मीरजाफ़र के सम्बन्ध

सकता है कि वह भी ऐसा ही अकर्मण्य शासन-कर्ता निकले। हो सकता है, वह भी इसी प्रकार कुक्रियासक्त हो। किन्तु यदि वह मीरजाफर की भांति निर्बोध और कापुरुष न हो, तो उसे अपनी इच्छानुसार शासन करने देना हम लोगों के पक्ष में बड़ा कठिन होगा। मीरजाफर ने ही डच लोगों को बुलाया था, यह निस्सन्दिग्ध रूप से प्रमाणित नहीं होता और मीरजाफर पर सन्देह करने का कारण ही क्या रह गया है ? उसे हम लोगों की इच्छा के अनुसार चलाने का आयोजन करना ही होगा। शाहजादा के लिए मैं भी विशेष व्यथित हूँ। किन्तु यह सब करने का इस वक्त समय नहीं है। मराठे और जाट अयोध्या के वजीर के साथ मिल गये हैं; अब्दाली (अहमदशाह) रण में विजय प्राप्त करके भी, सच पूछिए तो, उन लोगों को परास्त नहीं कर सका। मुझे मालूम होता है, पठानों ही को भारतवर्ष से भागना पड़ेगा।" १

जो लोग निःस्वार्थ होकर सरल भाव से इस समय की घटनाओं की आलोचना करेंगे, वे केलड के इस पत्र की प्रत्येक बात

1 *Bad as the man may be, whose cause we now support, I cannot be of opinion that we can get rid of him for a better, without running the risk of much greater inconveniences attending on such a change.......No new revolution can take place without a certainty of troubles.........It is very possible we may raise a man to the dignity, just as unfit to govern, as little to be depended upon and in short as great a rogue as our Nobab, but perhaps not so great a coward, nor so great a fool and of consequence much more difficult to manage......As to the breach of his treaty by introducing the Dutch last year, that was never so clearly proved, I believe, but as to admit of some doubt—EXTRACTS from the Letter from John Cailland to the Honble J. Z. Holwell Esq. President and Gorenor of Fort William, dated Camp at Bal-Kissens Gardens, 29th May, 1760.*
यह लम्बा पत्र अंशतः उद्धृत और भाव-मात्र अनुवादित है। मूल पत्र *First Report 1712* एवं *India Tracts* नामक ग्रंथ में मिलता है।

स्वीकार करने को बाध्य होंगे। कम्पनी को केलड का ही परामर्श ग्रहण करना उचित था; उससे वाणिज्य की श्रीवृद्धि होती, विश्वास-घात की कलंक-कालिमा से इतिहास न कलंकित होता; मीर-कासिम भी अंग्रेजों को नष्ट करने के प्रयत्न करने का अवसर न पाते। परन्तु केलड का यह मत शीघ्र ही बदल गया। हालवेल का और एक पत्र पाकर वह अपने पूर्वोक्त सरल मत के विरुद्ध हालवेल की ओर कुछ-कुछ खिंच गये। हालवेल के लिखे हुए इस दूसरे पत्र का पता नहीं लगता। किस तर्क से उन्होंने केलड को अपने पक्ष में खींच लिया था, यह भी आज ज्ञात नहीं है। केवल केलड के प्रत्युत्तर में उसका कुछ आभास मिलता है, जो इस प्रकार है—

"आपका २५ ता० का लिखा पत्र मिला। आपने जो प्रस्ताव किया है, उसके अनुसार कार्य करने में कोई आपत्ति नहीं है—हेस्टिंग्स एक बार वृद्ध नवाब को समझा कर देखें। मैं भी छोटे नवाब के साथ (मीरन) बातें करके देखूँगा। परन्तु देखिए, फिल-हाल हम लोग पटना नहीं जा सकेंगे। वर्षाकाल में धीरे धीरे अच्छी तरह सोच-समझकर निरापद पथ से यात्रा करनी होगी। उस समय हम लोग विशेष विचार करके कर्त्तव्य का निर्णय कर सकेंगे। जिससे हम लोगों का गौरव नष्ट न हो, हम लोगों के देश और मालिकों का सब प्रकार से लाभ हो, उसी उपाय का अवलंबन करना उचित है। परन्तु मीरजाफ़र पर एकबारगी यह प्रकट कर देना उचित नहीं होगा।"

इस प्रत्युत्तर के पढ़ने से स्पष्ट ही मालूम होता है कि हाल-वेल के पत्र से कर्नल केलड के मन में मीरजाफ़र के सम्बन्ध

में नाना प्रकार की आशंकायें उत्पन्न हो गई थीं। वह साधारण भाव से हालवेल के प्रस्ताव से सहमत होने पर भी आत्मगौरव नष्ट कर किसी कार्य में हस्तक्षेप करने को तैयार नहीं थे। बाद को यह संकल्प भी नष्ट हो गया।

युवराज मीरन ने वैद्यराज राजवल्लभ को दीवान बनाया था। कायस्थ राजवल्लभ और उनके पिता महाराज दुर्लभराम मीरजाफ़र के अधःपतन-साधन में असफल हो क्लाइव की कृपा से भागकर कलकत्ता में समय बिता रहे थे। इसी समय सहसा मीरन की मृत्यु हो जाने से राज-विप्लव का सुयोग उपस्थित हुआ।

राजवल्लभ पटना की नवाबी प्राप्त करने की चेष्टा में लगा। दुर्लभराम शाहज़ादा का 'फ़रमान' लाकर अंग्रेजों को दीवानी दे स्वयं सेनानायक होने की मंत्रणा में लगे। वान्सिटार्ट ने कलकत्ता का गवर्नर होकर आने पर भी, यह सब झगड़ा सामने देख कुछ दिन हालवेल को ही सब कार्यों का भार दे रक्खा। मीरकासिम हालवेल के प्रेमपात्र हुए; उनके लिखे हुए अनेक पत्र हालवेल और गवर्नर को मिलने लगे जिनमें उन्होंने अंग्रेजों की कल्याण-कामना में शरीर, मन, वाणी से नियुक्त रहने की बातें बार-बार लिखी थीं। १

इस समय मुर्शिदाबाद की अवस्था बड़ी ही शोचनीय हो गई थी। पुत्र-शोक की तीव्र-ताड़ना से मीरजाफ़र और भी अकर्मण्य हो गये थे। अंग्रेजों को संधि के अनुसार जो रुपया देना था, वह

1 In this period Mr. Holwell received frequent letters from Mir Cossim Ally Khan, containing the strongest professions and assurances in favour of the Company, if by our support, he was promoted to the succession of the Dewanee and other posts enjoyed by late Chuta Nobob, his brother-in-law---INDIA TRACTS, P. 88.

दिया नहीं जा सका क्योंकि ढाका प्रदेश का राज—कर संगृहीत नहीं हुआ। अंग्रेजों के व्यापार-संबन्धी अत्याचार से शुल्क-विभाग की आय लुप्त हो रही थी; वेतन न पाकर सेना विद्रोही हो गई थी; इन सब दुर्दशाओं में पड़कर वृद्ध नवाब जामाता के ऊपर ही निर्भर रहने को बाध्य हुए। मीरकासिम ने समय देखकर हालवेल को उत्तेजित करने में त्रुटि नहीं की।

संकल्प-सिद्धि के लिए क़ासिमअली को कलकत्ता जाने की आवश्यकता हुई, परन्तु कलकत्ता जाने से वृद्ध नवाब के मन में सन्देह उत्पन्न हो सकता था। अतएव कोई उपाय निकालने का भार हालवेल के ऊपर पड़ा। अपनी उर्वर कल्पना के ही कारण हालवेल इतिहास में अमर हो गया है। उसने सरकारी पत्र-द्वारा नवाब को सूचित किया कि सामरिक परामर्श के लिए क़ासिम-अली को कलकत्ता आने की विशेष आवश्यकता है। उद्देश्य सिद्ध हो गया। मीरजाफर ने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया।[1]

कासिमअली कलकत्ता आये। कर्नल केलड भी कलकत्ता में उपस्थित हुए। अंग्रेजी सरकार का कर्तव्य क्या है, इसका निर्णय करने के लिए हालवेल ने एक दीर्घ मन्तव्य प्रस्तुत किया। खोजा पिद्रू के साथ कासिमअली का विशेष सौहार्द था; हालवेल ने उसीको कम्पनी के पक्ष का मध्यस्थ दलाल नियुक्त किया। कासिमअली के साथ बातचीत कर हालवेल ने सब ठोक-पीटकर देख लिया। फिर दरबार लगा।

1 *These matters being debated in committee it was judged eligible to obtain permission for Kasim Ali Khan's paying a visit to Calcutta, a circumstance he himself intimated in a letter to the Governor and Mr. Holwell. The times gave good pretences for it....To gain this point, the Governor and Mr. Holwell wrote to the Subah with good success.—INDIA TRACTS. P. 89.*

इस दरबार का पूरा विवरण मिलता है। इसमें सब सदस्य उपस्थित नहीं थे; सब लोगों को उपस्थित होने का अवसर भी नहीं दिया गया। जो लोग मन्त्रणा में नहीं थे, हालवेल ने उन लोगों को दरबार की बातें जरा भी नहीं जानने दीं। इसके लिए इंग्लैण्ड में इस दरबार के विरुद्ध अभियोग लगाया गया। महासभा में साक्षी देते समय मेजर कारनाक ने कहा था—"सब लोगों के उपस्थित रहने पर कभी इस प्रकार की विश्वास-घातकता का अभिनय न हो सकता।" हालवेल के कौशल से ही अंग्रेजों का नाम कलंकित हुआ। भव्य भारत का इतिहास मलीन हो गया। कलकत्ता के राजपथ के बगल में हाल-वेल की स्मृति बनाये रखने के लिए अन्धकूप (Blackhole) हत्या का जो संगमर्मर-निर्मित मन्दिर है, उसमें हालवेल की यह सब कीर्ति-कहानी चिरजीवी रहेगी। 'हालवेल कौन था ?'—भविष्य में लोग जिस समय यह बात जानने की आशा से इतिहास का उद्घाटन करेंगे उसी समय अन्धकूप (Blackhole)-हत्या की बात, ढाका की हत्या की बात, पलासी के युद्ध की बात, मीर-जाफर के मुकुट-मोचन की बात, हालवेल के पद-त्याग की बात एवं उसके समकालिक सहयोगी अंग्रेजों की लेखनी से लिखित हालवेल की धन कमाने की बात जन-समाज में प्रकाशित हो जायगी।

१७६० ई० की १५ वीं सितम्बर को कलकत्ता में इस विख्यात गुप्त दरबार का अधिवेशन हुआ। उसमें वांसिटर्ट सभापति और कर्नल केलड, समनर, हालवेल एवं मेकग्वायर उपस्थित थे। इस दरबार की सब बातें व्यक्त नहीं हुईं; सभापति

महाशय ने मीरकासिम को अंग्रेजों के रुपये की कमी की बात सुनाकर सबको यह जताने की चेष्टा की कि अपनी आर्थिक दुरावस्था को दूर करने के लिए ही मीरकासिम से * रुपयों की शर्त कराई जा रही है।

गुप्त समिति के सदस्यों ने अपने सामने दो रास्ते देखकर, मार्ग स्थिर करने का भार सभापति के ऊपर छोड़ दिया। दुर्लभराम से परामर्श करने का भार हालवेल पर पड़ा। उस रात को दोनों ही अपने-अपने कार्य को पूरा करने में लगे। हालवेल ने दुर्लभराम से भेंट की। वांसिटर्ट की भी मीरकासिम के साथ बातचीत हुई। इस गुप्त भेंट मुलाक़ात के समाप्त होने पर शाहज़ादा के साथ सन्धि करने का कलकत्ते के अंग्रेज दरबार का पूर्व संकल्प बदल गया। मीरकासिम का पक्ष लेना ही स्थिर हुआ। मीरकासिम सभी को यथायोग्य पुरस्कार देने को तैयार हो गये। सदस्यों ने पहले पुरस्कार स्वीकार करने में नाहीं-नूहीं

* इस दरबार का विवरण अविकल उद्धृत किया जाता है—

Fort William, Sept. 15th, 1760
At a Select Committee
Present
The Hon'ble Henry Vansittart, Esqr., President.
Colonel Cailaud.
Wm. Brightwell Sumner.
J. Zephaniah Holwell.
William Mac Guire Esqr.

Resolved unanimously, that the entering into an alliance with the Prince is a necessity and expedient measure. The president is accordingly desired to press Cassim Aly Khan on the subject of our expenses and our great distress for money, so as to draw from him some proposal of means for removing those difficulties by which probably we may be able to form a judgment, whether he might not be brought to join this negotiation, and in procuring the Nabab's consent.

की। किन्तु पीछे उत्तर के समय मीरकासिम की सम्मान-रक्षा के बहाने उसे ग्रहण करने को प्रस्तुत हो गये।[१]

1 Revolution in favor of Cassim. 1760.

Mr. Sumner	...	£ 28000
,, Holwell	...	£ 30000
,, M'c Guire	...	£ 20625
,, Smith	...	£ 15354
Major York	...	£ 15354
General Caillaud	...	£ 22916
Mr. Vansittart	...	£ 58333
5000 G. Ms	...	£ 8750
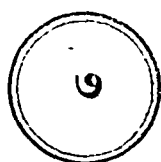
मुकुट-मोचन

A tool, a cipher in the hands of the foreigners for whom he had betrayed his master, Mir Jafar was allowed to rule, never to govern: Well for him that he did not possess the power to dive into futurity and behold the representative of his name and office, an unhonored Pensioner of the People, he had called into subdue his country!

—Col. Malleson.

अंग्रेज, इतिहास में, स्वदेशभक्त कहलाकर प्रसिद्ध हैं। स्वदेश की स्वाधीनता की रक्षा और गौरव-वर्द्धन के लिए अकातरचित्त प्राण देकर वे इतिहास में अक्षय कीर्ति संचय कर गये हैं। अभागा मीरजाफ़र अपने स्वार्थ के लिए

देशद्रोह में लिप्त होकर अंग्रेजों की भाग्योन्नति में सहायक बनकर भी अंग्रेजों की श्रद्धा पाने में समर्थ नहीं हुआ। तब या अब किसी समय अंग्रेज मीरजाफर-जैसे देशद्रोहियों को आदर और श्रद्धा की दृष्टि से नहीं देख सकते। यदि मीरजाफ़र स्वदेश-रक्षा के लिए अंग्रेजों से लड़ा होता, तो उस समय कर्तव्यवश वे भले ही उसकी अवहेलना करते, पर उनके हृदय में उसके लिए आदर अवश्य होता। देश-द्रोही मीरजाफ़र को घृणा करने के लिए वे स्वभाव से विवश थे। वे मीर-जाफ़र को नाममात्र के लिए नवाव वनाकर स्वयं ही बंगाल के भाग्य का शासन करते थे, क्योंकि एक देश-द्रोही नवाब की अधीनता में रहना वे अपना अपमान समझते थे। ऐसी अवस्था में मीरजाफ़र को पदच्युत करने में उन्हें क्या ममता हो सकती थी ?

मीरजाफ़र को सिंहासन देकर फिर क्यों ले लिया गया, इस रहस्य का उद्घाटन करते हुए कुछ समय वाद हालवेल ने लिखा था—"मीरजाफ़र और उसके पुत्र मीरन की बात ही क्या ? उन्हें तो सिंहासन न देकर सूली पर चढ़ा देना ही अधिक न्याय संगत कार्य होता।"[१] अंग्रेजों ने दया करके इस 'न्याय-संगत कार्य' (सूली) को छोड़ दिया, सो बात नहीं है। उन्होंने अपने सामयिक स्वार्थ की रक्षा के लिए ही मीरजाफ़र को फाँसी के तख्ते की ओर न ले जाकर राजसिंहासन पर बैठाने की व्यवस्था की थी; किन्तु अब उनका वह स्वार्थ बहुत-कुछ सध गया था; हाथ में शक्ति आ गई थी, पहले की स्थिति नहीं थी अतएव

1 *Meer Jaffier Aly Khan, and his son Miran, were more deserving a HALTER than ...bakship of Bengal.--HOLWELL (INDIA TRACTS) P. 102.*

सिंहासन पर क़ब्जा कर लेने में किसी को कुछ आपत्ति नहीं हुई।

अपने कर्तव्य का निर्णय करने में अंग्रेज़ खूब वाग-वितण्डा से काम लेते हैं; किन्तु कर्तव्य-निर्णय के पश्चात्, संकल्प-साधन के समय आपस का सब भेद-भाव भूलकर एकाग्र मन से कार्य करते हैं। उस समय वे एक शरीर, एक प्राण और एक शक्ति होकर स्वार्थरक्षा में अग्रसर होते हैं। इसी गुण के बल से, अंगुली पर गिने जाने योग्य बनियों की समिति ने बंगाल, विहार एवं उड़ीसा के विस्तृत मुग़ल-राजसिंहासन को बेचकर अपनी थैली भरने का साहस किया, अन्यथा उनका तात्कालिक बाहुबल ऐसे गुरुतर कार्य में हस्तक्षेप करने की हिम्मत नहीं कर सकता था—हिम्मत करना तो दूर रहा, स्वप्न भी नहीं देख सकता था।

कई वर्षों बाद मीरजाफ़र के मुकुट-मोचन के रहस्य की जाँच करने के लिए विलायत की महासभा ने बहुत आडम्बर किया![1] कलकत्ते के अंग्रेज कर्मचारियों ने भी दो दल में विभक्त होकर वाद-विवादपूर्ण पुस्तकों का प्रचार करके इस रहस्य का उद्घाटन करने में सहायता की[2] किन्तु मुकुट-मोचन के समय किसी ने भी प्रकट रूप से बाधा उपस्थित करने की चेष्टा नहीं की थी।

किसी-किसी का कहना है कि उस समय गवर्नर और सेनापति का गुप्त संकल्प बहुतों को मालूम नहीं था और जिन्हें यह

1 *First Report. 1772.*
2 *Vansittart's Memorial.*
Vansittart's Narrative.
Letter from certain Gentlemen.
Holwell's Refutation of the same.
इत्यादि—इत्यादि

बात मालूम थी, वे भी जानते थे कि मीरजाफ़र ही नवाब रहेंगे, केवल शासन-कार्य के शृंखलाबद्ध और सुव्यवस्थित करने के लिए मीरक़ासिम को नायब नवाब बनाया जा रहा है, मीरन नायब नवाब था ही; उसके स्थान पर मीरक़ासिम को नियुक्त करने में किसीको क्या आपत्ति हो सकती थी? नवाब से साक्षात् करने के लिए गवर्नर के आगमन की बात सुनकर मुर्शिदाबाद के निवासियों का भी कुछ सन्देह नहीं हुआ।

गवर्नर वांसिटर्ट एवं सेनापति केलड के क़ासिमबाज़ार की अंग्रेजी कोठी में आकर टिकने पर, नये गवर्नर के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिए, पहले नवाबबहादुर ही क़ासिमबाज़ार आये। पहली भेंट में केवल शिष्टाचार की बातें हुईं; गवर्नर ने अपने गुप्त संकल्प के सम्बन्ध में कोई बात प्रकट न की। द्वितीय दर्शन के समय मीरजाफ़र ने सुना और समझा कि शासन-व्यवस्था से प्रजा असन्तुष्ट है, अतएव कार्य-कुशल कर्मचारी नियुक्त करके सुशासन की स्थापना के लिए ही 'बन्धुओं' का शुभागमन हुआ है। तीसरे दर्शन से पूर्व, प्रभात-काल में पलंग से उठने के साथ ही झरोखे की ओर नज़र गई तो देखा कि चारों ओर फैली हुई अंग्रेज सेना के बीच मीरकासिम की रणपताका उड़ रही है और सिंह-द्वार पर गवर्नर का पत्र हाथ में लिये हुए स्वयं सेनापति केलड सशस्त्र उपस्थित हैं [1]। मीर जाफ़र को समझते देर न लगी कि अब समय पूरा हो गया है। हाथ में तलवार लेकर आत्मरक्षा करने वा लड़ते-लड़ते रणक्षेत्र में कट

1 *A glance from the window of his palace showed him the redcoated English soldiers rallying round the standard of his kinsman in revolt against him*—COL. MALLESON'S DECISIVE BATTLES OF INDIA, P. 140.

मरने की इच्छा एक बार मन में उदय हुई, किन्तु पुत्र-शोकार्त्त वृद्ध नवाब का यह संकल्प शीघ्र ही बदल गया। १ वही अंग्रेज, वही कुटिल कौशल—वही राज-प्रासाद! मीरजाफ़र सोचकर काँप उठे। जीवन की ममता जाग उठी; सिराज की दुर्दशा की याद कर अतीत के अपराधों का स्मरण हो आया। २

तीन वर्ष पूर्व पलासी-समराभिनय के विचित्र रंगमंच पर अपने जीवन के पहले अंक में बालक सिराजुद्दौला के सिंहासन की रक्षा के लिए हम वृद्ध मीरजाफ़र को कुरान हाथ में लिये तैयार देखते हैं, किन्तु पीछे दूसरे अंक में वही मीरजाफर अंग्रेजों की सहायता से बालक सिराजुद्दौला का नाश करने को शत्रु-नेता की कल्याण-कामना में ध्यानमग्न दिखाई देता है। आज ठीक उसी प्रकार, उसी मूल्य में अपने को बिकते देखकर मीरजाफ़र की मानसिक अवस्था क्या हुई होगी, इसकी कल्पना अनेक इतिहास-लेखकों ने की है, परन्तु उस समय भाग्य के इस आकस्मिक परिवर्तन को देखकर मीरजाफ़र के मुँह से कोई बात न निकल सकी। वह मुकुट उतारकर धीरे-धीरे सिंहद्वार पर विनीत भाव से आ खड़े हुए। इसी स्थान पर मीरजाफर के

1 *You have thought proper to break your engagements. I would not mine. Had I such designs, I could have raised twenty thousand men and faught you If I pleased. My son the Chuta Nabab (Miran) forewarned me of all this.*—मीरजाफ़र के मुंह से अंग्रेजों के प्रति कही हुई यह पहली साहस-युक्त बात है, जो मालकम-रचित क्लाइव के जीवन-चरित में दीख पड़ती है।

2 *Well, indeed, that eventful morning, might the thoughts of the old man have carried him back to a period little more than three years distant, when.. on the field of Plassey, he, too, in secret compact with these same English, had betrayed his kinsman and master to obtain the seat which another kinsman was now by similar means wresting from him.*—DEECISIVE BATTLEE OF INDIA, P. 139.

लिए कलकत्ता में रहकर अंग्रेजों के आश्रय में जीवन-बिताने की व्यवस्था भी स्थिर हुई। यहाँ की विचित्र घटनाओं का वर्णन करते हुए कलकत्ता के अंग्रेज सदस्यों में से किसी-किसीने लिखकर विलायत भेजा—"अंग्रेजों की धर्म-प्रतिज्ञा और उनका जातीय सम्मान चूर्ण कर मीरजाफ़र को सिंहासनच्युत किया गया है।"१

मीरजाफ़र के मुर्शिदाबाद छोड़कर कलकत्ता जाने और अंग्रेजों का आश्रय ग्रहण करने के समय से आज तक इतिहास-लेखक दो दलों में विभक्त होकर कोई मीरजाफ़र की और कोई अंग्रेजों की निंदा करते आ रहे हैं। एक दल कहता है—"अंग्रेज लोग बाइबल चूमकर ईश्वर और ईसामसीह के पवित्र नाम से मीरजाफ़र के साथ जिस धर्म-प्रतिज्ञा में आबद्ध हुए थे उसकी पूर्ति के लिए मीरजाफर के सिंहासन की रक्षा करने को बाध्य होते हुए भी अर्थ-लोभ से दूसरे के हाथ बेचकर गवर्नर एवं कौंसिल ने अंग्रेज जाति को कलंकित किया है।"२

दूसरे दल का विश्वास है कि सब अपराधों का कारण मीरजाफर ही है। वे लोग कहते हैं—"इस प्रभात में मीरजाफर को पलासी की बात अवश्य ही याद आई होगी। पलासी के मैदान में उनके स्नेह-भाजन तरुण नरपति ने जिस प्रकार सकरुण अनुरोध से मुकुट-रक्षार्थ उन्हें उत्तेजना दी थी उस दिन

1 *Thus was Jaffier Aly Khan deposed in breach of a treanty founded on the most solemn oaths and in violation of the national faith.—LETTER FROM SOME GENTLEMAN OF THEC ALCUTTA COUNCIL.*

2 *He was the sworn and blood-knit ally of the Company, and if ever men were bound by decency to maintain atleast the form of good faith the Governor and Council of Calcutta was so bound—TERREN'S EMPIRE IN ASIA.*

इस बात पर ध्यान देकर राजभक्ति का कर्त्तव्य पूरा करने से आज मीर जाफ़र बंगाल, विहार और उड़ीसा के उद्धारकर्ता सेनापति कहलाते और स्वदेश में कितना आदर, कितना गौरव प्राप्त करते; उनका देश भी सब तरह से कितना सुरक्षित रह सकता !" १

दोष किसका है, इसका सूक्ष्म विचार कर एक निश्चय पर पहुँचना असंभव है। उस समय कौन किसका विश्वास करता था ? विप्लव पर विप्लव होने से बंगाल के अन्नक्षेत्र की भांति राजनैतिक पुण्य-क्षेत्र भी कण्टकवन के समान हो रहा था। वैसे समय में, वैसे देश में मीरजाफर क्या बहुत कम लोग देश की चिन्ता करते थे। स्वार्थत्याग और आत्म विसर्जन द्वारा सिराजुद्दौला के सिंहासन की रक्षा कर मीरजाफ़र स्वदेश के उद्धारकर्ता कहलाकर गौरव-लाभ करते, या कुछ ही दिनों के भीतर अन्य विप्लव में अथवा निर्मूल सन्देह में पड़कर पदच्युत होते, इसके विषय में भी कुछ निश्चित नहीं था। ऐसी परिस्थिति में रहकर, जन समाज देश के लिए मरने, देश के लिए जीने और देश के लिए सर्वस्व विसर्जन करने की शिक्षा नहीं पा सकता। मीरजाफ़र को भी वैसी शिक्षा प्राप्त करने का अवसर नहीं मिला था उस समय अंग्रेजों का अपराध कितना भी अधिक हो, इतिहास में उसे छिपाने में त्रुटि नहीं की जाती थी। कौन किसका

1 *He could not contrast his position, threatened by the men to whom he had sold his country, with that which he would have occupied it at Plassey, he had been loyal to the boy relative who had, in the most touching terms. Implored him to defend his TURBAN. With the prestige of having been the main factor in the destruction of the Insolent foreigners who had since dictated to him he would have wellded a real power; his country would have been secure.—DECISIVE BATTLES OF INDIA, P. 140.*

विश्वास करता; कौन धर्म-प्रतिज्ञा की रक्षा के लिए स्वार्थ त्याग करने को तैयार होता? समय और सुयोग ही सब कार्यों का संचालक हो गया था। मीरजाफ़र संधिपत्र को अस्वीकार कर प्रतिज्ञा-भंग करने योग्य समय और सुयोग पाकर, उसे कदाचित हाथ से न जाने देते; बाहुबल से अंग्रेज़ों को भगाने का समय और सुयोग पाने पर, कदाचित् अंग्रेज-बन्धु के गले का हार होकर उनके आदेश पालन के कारण इतिहास में 'क्लाइव का गधा' नाम से न परिचित होते। उन दिनों समय और सुयोग के अभाव से जो मित्र मित्र की भांति हाथ मिलाते थे, समय और सुयोग पाते ही वे शत्रु बनकर प्राण-हरण करने में भी हिच-कते नहीं थे। ऐसे मित्र को उस समय के अंग्रेज़ एवं भारतीय मौखिक शिष्टाचार की रक्षा के लिए मित्र कह कर पुकारते थे। ऐसी अवस्था में, इतने दिन बाद, हम लोगों को सूक्ष्म विचार कर, अंग्रेज़ों को निर्दोष साबित कर मीरजाफ़र को अपराधी ठहराना, अथवा मीरजाफ़र को निर्दोष कह अंग्रेजों को अप-राधी ठहराना और इसके अनुसार इतिहास की रचना करना शोभा नहीं देता! दोनों ही का गुण-दोष एक समान है, दोनों ही ऐतिहासिकों की दृष्टि में चिरकाल से कलंकित हैं! दोनों ही राज-विद्रोही हैं।

अंग्रेज़ सुयोग पाने पर, मीर जाफ़र को नाम-मात्र का नवाब रखकर, इस देश के सब-कुछ बन गये; सिंहासन पर पदा-र्पण करने के पूर्व मीरजाफ़र क्या, प्रतिभाशालिनी रानी भवानी को छोड़कर और किसी ने उस प्रकार की आशंका नहीं की थी। उस समय सिंहासन पाने के लिए सभी रुपयों के जोर से

लट्ठबाज़ों की तरह ठीके पर सैन्य-संग्रह कर रहे थे। मीरजाफ़र ने सोचा कि हम भी उसी प्रकार की सहायता अंग्रेज़ों से पा रहे हैं, इसलिए अंग्रेज़ों से बन्धु-भाव से बात करने में हर्ज क्या है? पर सिंहासन पर बैठते ही अंग्रेज बन्धुओं की चालाकी और कूटनीति देखकर मीरजाफ़र बिलकुल निराश और निरुपाय हो गये और उनको गति रोकने की चेष्टा करने का साहस न कर सके। मीरन उत्तेजना दे रहा था। मीरजाफ़र के बाद के करुण विलाप से स्पष्ट मालूम होता है कि मीरन ने उनको सतर्क करने में त्रुटि नहीं की थी, किन्तु भाग्य दोष से भ्रम-संशोधन की सुविधा और उसका सुयोग नष्ट हो गया था। मीरकासिम इस सुअवसर के लिए ही चुपचाप ओठ चबा रहे थे। कोई जानता नहीं था, आकार-प्रकार से भी अनुमान करने का अवसर नहीं मिला, किन्तु मीरकासिम इस कलंक को दूर करने के लिए सुअवसर की प्रतीक्षा अधीर होकर कर रहे थे।

सरल भाव से सम्मुख रण में विदेशी वणिक-समिति का दर्प चूर्ण कर ससुर के सिंहासन को स्वाधीन कर देने पर कासिम-अली की स्मृति कलंकित न होती। पर ससुर के दृष्टांत का अनु-सरण कर षड्यंत्र में लिप्त होकर कौशल से सिंहासन पर अधि-कार करने के कारण किसीने उनके गुप्त संकल्प की ओर ध्यान देने का कष्ट नहीं उठाया वरन् उनको भी मीरजाफ़र को तरह निन्दा करने को रख छोड़ा। क़ासिमअली के इस कलंक को अकारण कहने का कोई उपाय नहीं है!

तथापि मीरजाफ़र और मीरक़ासिम के अपराध के रूप का विचार करने पर कुछ कहा जा सकता है। सिराजुद्दौला के
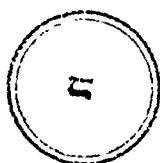
नये नवाब

In a short time (Mir Kasim) came to hate (the English) with all the intensity of a bitter and brooding hatred He had full reason to do so; for the annals of no nation contain records of conduct more unworthy, more mean, and more disgraceful than that which characterised the English Government of Calcutta during the three years which followed the removal of Mir Jafar. —*Col, Malleson.*

किस उद्देश्य से अंग्रेजों ने मीरजाफ़र को सिंहासन-च्युत किया, इसका कोई कुछ अनुमान न कर सका। उन लोगों (अंग्रेजों) ने धर्म की शपथ करके मीरजाफ़र के साथ

समय में अंग्रेज केवल सौदागर थे, मुसलमान सिंहासन के प्रकृत अधिकारी थे। उस समय सिराजुद्दौला को सिंहासन-च्युत करने की चेष्टा करना मीरजाफ़र के लिए स्वजाति-विद्रोह था। कुरान छूकर सिंहासन की रक्षा करने की प्रतिज्ञा कर अवसर मिलने पर विपरीत व्यवहार करने के कारण उनपर स्वधर्म-द्रोह का अभियोग लग सकता है। मीरजाफ़र के समय में अंग्रेज़ केवल वणिक ही नहीं कहे जाते थे वरन् एक प्रकार से उन लोगों का ही सिंहासन पर अधिकार था। ऐसे समय मीरक़ासिम का सिंहासन को स्वाधीन करने की चेष्टा करना स्वजाति-द्रोह नहीं कहा जा सकता। मीरक़ासिम ने कुरान हाथ में लेकर प्रतिज्ञावद्ध होकर किसी के साथ विपरीत व्यवहार नहीं किया। अतएव उनका कार्य स्वधर्म-द्रोह के नाम से भी निन्दनीय नहीं हो सकता। तथापि ससुर एवं जामाता के सिंहासन की प्राप्ति का उद्देश्य पृथक् होने पर भी, पथ एक ही था। वह पथ सर्वथा निन्दनीय है, कुरान हाथ में लेकर प्रतिज्ञा भंग करने से मीरजाफ़र का पक्ष और भी निन्दनीय हो गया है।

मीरजाफ़र और मीरक़ासिम इस समय निन्दा एवं प्रशंसा के परे परलोक में हैं। उस समय उन लोगों के कार्य की समालोचना करने की स्वाधीनता नहीं थी, पर इस समय उसको वहुत पीछे छोड़ गौरव से उज्ज्वल नवयुग का आविर्भाव हुआ है। इतिहास ने इस समय समालोचना की स्वाधीनता प्राप्त कर सत्य-समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त की है। इस समय इस पूरी कहानी की आलोचना का अवसर उपस्थित हुआ है।
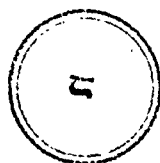
नये नवाब

In a short time (Mir Kasim) came to hate (the English) with all the intensity of a bitter and brooding hatred He had full reason to do so; for the annals of no nation contain records of conduct more unworthy, more mean, and more disgraceful than that which characterised the English Government of Calcutta during the three years which followed the removal of Mir Jafar.

—*Col, Malleson.*

किस उद्देश्य से अंग्रेजों ने मीरजाफ़र को सिंहासन-च्युत किया, इसका कोई कुछ अनुमान न कर सका। उन लोगों (अंग्रेजों) ने धर्म की शपथ करके मीरजाफ़र के साथ

सन्धि की; हाथ धर कर उसे सिराजुद्दौला के शून्य सिंहासन पर बिठाया, और उन्हीं लोगों ने सबसे पहले मीरजाफ़र को 'बंगाल-बिहार-उड़ीसा' का सूबेदार कहकर सबके सामने सिर नवा-कर 'नज़र' दी थी। गुप्त या प्रकट किसी प्रकार से कभी चिर-सौहार्द्र प्रकाश करने में भी कोर-कसर नहीं हुई। अब उन्हीं अंग्रेजों, मीरजाफ़र के उन्हीं बन्धुओं की ऐसी लीला देखकर सब लोग आश्चर्य-चकित हो उठे। इस कुकृत्य से इतिहास में अंग्रेजों का नाम कलंकित हो गया। ऐसे नीच व्यवहार के सम्बन्ध में अनेक अंग्रेज-लेखक भी तात्कालिक अंग्रेज-समाज का यथेष्ट तिरस्कार कर गये हैं।

इस देश के लोग बहुत दिनों से अपने व्यक्तिगत सुख-दुःख की समस्या लेकर उसीको हल करने में जीवन की सारी शक्ति लगाते आये थे और अबतक भी वही हाल है। भारत-वासियों ने जिस भाव से गाँवों में रहने का ढंग इख्तियार किया था, उससे राजधानी में होने वाली राजनैतिक कूट चालों को जानने वा समझने की कोई संभावना न थी। वे लोग इन राज-नैतिक परिवर्तनों से होने वाली लाभ-हानि का विचार करने की इच्छा न रखते थे; राजा और प्रजा का पारस्परिक सम्बन्ध जानने तक का उन्हें अवसर न मिलता था। वे अपने गाँव के जमींदार को नियत कर देकर खेती करते और अपने परिवार के पालन-पोषण में ही लगे रहते थे। इस देश में यही साधारण प्रजा की जीवन-यात्रा की सनातन पद्धति हो रही थी। अतएव विदेशी बनिये हमारे देश में आकर इस प्रकार की उलट-फेर क्यों कर रहे हैं, इस बात का कारण जानने और समझने की

किसी ने कुछ उत्सुकता न प्रकट की १। इतना ही नहीं, कितने ही हिन्दुओं ने तो मीरजाफ़र के इस अधःपतन पर दो-चार शास्त्र-वाक्य दुहराकर एवं पुराने ज़माने के हिन्दू राजाओं की साधुता के लम्बे चौड़े क़िस्से स्मरण करके ही इस विषय की सभी आलोचना समाप्त कर दी। इस प्रकार बिना रक्तपात अथवा प्रतिरोध के ही इतना महत्वपूर्ण राज विप्लव हो गया। किसी-किसी अंग्रेज़ लेखक ने इसे हमारी नपुंसकता और कायरता कहकर अंग्रेज़ों के इस जघन्य एवं अमनुष्योचित कृत्य पर पर्दा डालने का यत्न किया है। इस प्रकार अंग्रेज़ी इतिहासों में हमारा चिरशान्तिप्रिय, सरल स्वभाव भी नितान्त उपहास की सामग्री बन गया है!२

इसमें कोई सन्देह नहीं कि देशवासियों ने इस अभूतपूर्व परिवर्तन का प्रतिरोध नहीं किया, किन्तु यह याद रखना चाहिए कि इस राज-विप्लव ने कुछ समय के लिए अंग्रेज़ों की राजशक्ति को शिथिल करने का उपाय और स्पष्ट कर दिया। बेचारा मीरजाफ़र तो अंग्रेज़ों का यह घृणित नशा उतार ही नहीं सकता था किन्तु मीरक़ासिम के लिए अंग्रेज़ शक्ति को चूर्ण करने की चेष्टा करना सरल हो गया।

मीरजाफ़र स्वार्थ साधन के लोभ से अंग्रेज़ों की सहायता

1 The people of Bengal cared nothing about the change of Nawabs; and thus the English could already depose and set up Nawabs at Will.—EARLY RECORDS OF BRITISH INDIA P. 273.

२ लेखक की बातों से मेरा विरोध है। शान्ति-प्रियता की एक सीमा हुआ करती है और वह जब उस सीमा से आगे चली जाती है तो असमर्थता या कायरता के ही नाम से पुकारी जाती है। —अनु०

ग्रहण करने को बाध्य हुए थे। अंग्रेजों की सहायता से सिंहासन पाने पर उन्हींकी सहायता से राज्य-रक्षा करने को वचन-बद्ध होकर ही मीरजाफ़र साहस करके सिराजुद्दौला के विरुद्ध षड्यंत्र में शामिल हुए थे। अतएव प्रकट वा गुप्त-रूप से अंग्रेजों को नष्ट कर डालने की चेष्टा करना उनके लिए असम्भव था। मीरक़ासिम ने भी स्वार्थ-सिद्धि के लिए ही अंग्रेजों की प्रभुता स्वीकार की थी, किन्तु इन बनियों की सहायता से सिंहासन हाथ में करके अपने बाहुबल और अपनी व्यवस्था-शक्ति के सहारे राज्य का शासन करने का भलीभांति निश्चय करके ही मीरक़ासिम अपने श्वसुर के विरुद्ध षड्यन्त्र में लिप्त हुए थे। सिंहासन प्राप्त कर लेने के बाद गुप्त वा प्रकट-रूप से मीरक़ासिम के लिए हमारी शक्ति को नष्ट करने की कोशिश करने की सम्भावना हो सकती है, इस बात को भलीभांति विचार कर देखने की बुद्धि उस समय के अंग्रेज-समाज में पैदा नहीं हुई। अपने स्वार्थ-साधन के लिए उन्मत्त मनुष्य वा समाज में सदैव ऐसी ही अविचारशीलता देखी जाती है। अंग्रेज मीरक़ासिम को भी मीरजाफ़र का ही संस्करण समझ कर निश्चिन्त हो गये।

मीरजाफ़र और मीरक़ासिम दोनों ने ही स्वार्थ-सिद्धि के लोभ से निन्दनीय पथ में पैर रक्खे थे, किन्तु इतना तो स्पष्ट ही दीख पड़ता है कि दोनों के स्वार्थ में भेद था। मीरजाफ़र का स्वार्थ था—'व्यक्तिगत सुख-संभोग'; मीरक़ासिम का स्वार्थ था—'आत्मविसर्जन द्वारा मुग़ल-राजशक्ति की प्राण-प्रतिष्ठा'। मीरजाफ़र को स्वार्थ-साधन के लिए सिंहासन पाकर भी अंग्रेजों को गले लगाना पड़ा था। किन्तु मीरक़ासिम को सिंहासन

पर पदार्पण करने के साथ ही 'गले की फाँसी' तोड़कर फेंक देने को सचेष्ट होना पड़ा।[1] मीरकासिम का यह गुप्त संकल्प यद्यपि पीछे इतिहास में भली-भांति व्यक्त हुआ, किन्तु दुर्भाग्य-वश उस समय अंग्रेज उसे न जान सके। उन लोगों की कार्य-प्रणाली चाहे जितनी ही घृणित रही हो, किन्तु केवल इतनी सी बात के लिए मूर्ख कहकर उनका तिरस्कार नहीं किया जा सकता। मीर-जाफ़र को अन्तःकरण से घृणा करके भी वे लोग उसके नज़दीक बन्धु के रूप में ही परिचित थे। मीरकासिम भी, सर्वान्तःकरण से इन अंग्रेज बनियों को घृणा करने पर भी, बहुत दिनों तक उनके बन्धु ही समझे जाते थे। यदि मीरकासिम के गुप्त संकल्प का पता चल गया होता तो कदाचित् कलकत्ते का अंग्रेजी दरबार अपने जाति-भाइयों का नाश करने में सहायक होने की कोशिश न करता। वांसिटर्ट का कर्म-फल समय पाकर आत्म-द्रोहके रूप में फूट गया था। किन्तु वह बेचारा जान-बूझ कर इस आत्मद्रोह में सहायक नहीं हुआ था। पुराने नवाब अंग्रेजों के हाथ की कठपुतली थे, किन्तु काल-क्रम से इस बार अंग्रेजों के लिए ही नये नवाब के हाथ की कठपुतली बनने का अवसर उपस्थित हुआ। इस घटना का मूल्य है—अंग्रेजों की अज्ञता और मीरक़ासिम का शासन-कौशल! इस घटना में वांसि-टर्ट या अंग्रेजी दरबार के स्वदेश-द्रोह का संसर्ग नहीं था।

सिराजुद्दौला को अधःपतित करने की चेष्टा करते समय अंग्रेजों ने सोचा था कि राज-विप्लव से चारों ओर हमारा

1 From the first Meer Cossim was bent on emancipating himself from English.—EARLY RECORDS OF BRITISH INDIA. P. 273.

अबाध वाणिज्य स्थापित हो जायगा; हमारी शक्ति और दृढ़ता-पूर्वक प्रतिष्ठित होगी; राज्य-कार्यादि में हम लोगों की पदोन्नति का सूत्रपात होगा, और साथ ही बंगाल विहार-उड़ीसा में राम-राज्य का दृश्य दीख पड़ेगा। मीरजाफ़र के गद्दी पर बैठते-बैठते ही यह मोह-निद्रा भंग हो गई! अंग्रेजों ने स्वप्न से एकाएक उठे हुए व्यक्ति की भांति आश्चर्यमयी दृष्टि से देखा कि युद्ध के झगड़ों में लिप्त होने के कारण व्यापार चौपट हो रहा है; शक्ति सुदृढ़ होने की जगह अर्थाभाव से कोठियों के टूटने की नौबत आ गई है; पदोन्नति के स्थान पर सर्वनाश का सूत्रपात हो रहा है; और रामराज्य की शान्ति के बजाय अफीमची वृद्ध मीर-जाफर एवं उनके कुक्रियासक्त अशान्त पुत्र मीरन के शासन-कौशल से देश में चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है।

उस समय अपने कुकृत्य का परिणाम सोचकर कितने ही अंग्रेज सिहर उठे। किसी प्रकार अपनी ग़लती का परिष्कार करना आवश्यक हो गया। सेनापति क्लाइव ने इसकी भनक विलायत की कार्य-कारिणी समिति के कान में भी डाल दी थी। ज्यों-ज्यों मीरजाफ़र पर असन्तोष बढ़ने लगा, त्यों-त्यों मन में विश्वास होने लगा कि मीरजाफ़र की अयोग्यता ही सारे अनर्थों की जड़ है; अतएव नवाब को दूर करने के साथ ही वाणिज्य चमक उठेगा। मीरजाफ़र को गद्दी से उतार देने में कोई कठि-नाई नहीं थी। अंग्रेजों ने ही मीरजाफ़र को नवाब बनाया था, अतएव उनकी जिह्वा हिलने पर मीरजाफ़र को भिखारी होते कितनी देर लग सकती थी? किन्तु अयोग्यता की यह आलो-चना पिछले नवाब तक ही उठकर रह गई, नये नवाब की

योग्यता-अयोग्यता के विषय में किसीने आँखें खोलकर सोचने की तकलीफ़ न की। अच्छा अवसर आया देख मीरक़ासिम ने पुरस्कार का लोभ दिखाकर स्वार्थ सिद्ध कर लिया। अंग्रेज़ों ने उस ग़लती का सुधार करने जाकर दूसरी ग़लती कर दी।

मुग़ल-शासन-शक्ति की प्राण-प्रतिष्ठा करना ही मीरक़ासिम का प्रधान संकल्प था, अतएव अंग्रेज़ों का दमन करना ही उनका पहला और प्रधान उद्देश्य हुआ। उस समय भारतवर्ष के सभी प्रान्तों में राज-विप्लव हो रहे थे। दिल्लीश्वर का शासन-क्षमता एकदम नष्ट हो गई थी। दाक्षिणात्य प्रदेशों में, अयोध्या में, उत्तर-दक्षिण पूर्व-पश्चिम, सर्वत्र बाहुबल एवं छल-कौशल की ही प्रधानता दिखाई देती थी। इस समय बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा से यूरोपीय शक्ति को उखाड़ फेंकने पर यह देश मुर्शिदाबाद के नवाब-वंश के स्वाधीन राज्य में लाया जा सकता है, अलीवर्दी इसे बार-बार व्यक्त कर चुके थे। इसी उपदेश ने सिराज को अंग्रेज़ों से लड़ाकर उसे सिंहासनच्युत किया था। कर्मचारियों एवं मित्रों के अनुकूल होने पर अलीवर्दी की आशा को सफल कर दिखाना कोई असंभव बात नहीं है, इसी विश्वास ने मीर-क़ासिम को भी विचलित कर दिया। अतः अंग्रेज़ों का दमन करना ही उनका पहला और प्रधान लक्ष्य हो उठा। वह इसके लिए सब प्रकार का आत्म-त्याग करने का संकल्प करके सिंहासन पर बैठे थे। सिंहासन पर बैठते ही इस उद्देश्य को पूरा करने का मार्ग सुगम और स्पष्ट हो जायगा, इसी विश्वास से न्याय-अन्याय के तराजू को उन्होंने थोड़े दिनों के लिए अतल जलमें बहा दिया था।

पर सिंहासन पर बैठने के पहले मुग़ल-शक्ति की प्राण-प्रतिष्ठा

करना जैसा सरल मालूम होता था, सिंहासन पाने के बाद उतना सरल बोध नहीं हुआ। मीरकासिम को जल्दी ही समझ में आ गया कि "इतनी कठोर प्रतिज्ञा करके और इतने परिश्रम तथा कौशल से जो राज-सिंहासन मैंने खरीदा है वह सुन्दर पत्थरों का रूपान्तर मात्र है। राज-कोष में धन नहीं है; [1] सेना अलग वेतन न मिलने से विद्रोही हो रही है; कर्मचारी और साथी लोग घर भरने और लूटने में लगे हैं। अंग्रेज़ों के भय से किसी को कुछ कहने वा उचित दण्ड देने में अशक्त होकर 'क्लाइव के गधे' मीर मुहम्मद जाफ़रखाँ बहादुर मुग़ल-राजशक्ति का पहले से ही मूलोच्छेद कर गये हैं। अब क्या उसकी प्राण-प्रतिष्ठा की जा सकती है ?"

ऐसी अवस्था में लोग साधारणतः निराश होकर असंभव के साथ युद्ध करना छोड़ देते हैं और सदैव के लिए चुप होकर बैठ रहते हैं; किन्तु मीरक़ासिम की प्रकृति ऐसी नहीं थी; सांसारिक व्यवहार में उनकी बुद्धि बहुत तेज़ थी और लोक-चरित्र को ठीक-ठीक समझने में उन्होंने अत्यधिक सफलता प्राप्त की थी। कार्य-कुशलता, निर्भयता एवं अपना उद्देश्य पूरा करने योग्य उपाय ढूँढ़ निकालने में वह पण्डित थे। विपत्ति में धैर्य, वैर-निर्यातन में कठोरता तथा संकल्प-साधन में अक्षुण्ण अध्यवसाय इत्यादि गुणों के लिए इतिहास में वह प्रसिद्ध हैं [2]। स्वभावानुसार वह

1 *To meet all these demands, he found in the treasury only about 50,000 rupees and plate and jewels to the amount of between 3 and 4 lakhs more.—BROOME'S RISE AND PROGRESS OF THE BENGAE ARMY, VOL. I., 316.*

2 *He was a man of considerable ability, far above the ordinary run of his countrymen, active and energetic, an excellent man of business and attentive to all details himself he was shrewd and of quick discernment, expert in estimating the characters f those with whom he had to deal, and where his own immediate interest or passions*

अविचलित हृदय से, सारी कठिनाइयों का दमन करके, संकल्प-साधन में अग्रसर हुए।

अंग्रेजों के गृह-कलह ने मीरकासिम का पथ सरल कर दिया। मीरजाफ़र के सिंहासन-च्युत होकर कलकत्ता पहुँचने पर अंग्रेज-दरबार में बड़ा विचार उठा। एक दल मीरजाफर के लिए आँसू बहाने और उनका समर्थन करने में व्यस्त हुआ, तो दूसरे दल ने मीरकासिम की योग्यता की प्रशंसा करके सभा-स्थल को कँपाना शुरू किया। दोनों दलों को, एक दूसरे के भ्रम, त्रुटि और अपराध खोजने में लगा देख, कार्यकुशल नये नवाब को समझते देर न लगी कि यही उपयुक्त अवसर है। वह गवर्नर के दल से मिल गये क्योंकि उस समय उसी दल का प्राधान्य था। अब मीरक़ासिम को अपने संकल्प-साधन का मार्ग पहले से स्पष्ट और सरल मालूम पड़ने लगा।

अफ़ीमची, दुर्बल-चित्त और विश्वास-घातक बूढ़े मीरजाफ़र को कोई भी सच्चरित्र नहीं समझता था;[१] फिर भी उनको पद-च्युति की समस्या लेकर अंग्रेज-मण्डली में ऐसा कलह क्यों उपस्थित हुआ, यह एक ऐतिहासिक विस्मय का विषय है। दोनों दलों की विवादपूर्ण कटुता ने इतिहास के अनेक पन्ने काले किये; इतने दिनों बाद उसमें से सच्ची बात खोज निकालने की चेष्टा व्यर्थ

...are not concerned, he appears to have had the good of the province generally at heart, and to have administered the government both in the Judicial and Revenue Departments with vigour and justice.—BROOME'S RISE AND PROGRESS OF THE BENGAL ARMY, VOL. I. 315.

1 He who could pledge the most solemn oaths of fidelity to a sovereign of whose throne he was about to take possession, could scarcely be regarded as a pattern of moral excellence—THORNTON'S HISTORY OF THE BRITISH EMPIRE IN INDIA, VOL. I., 408

६

का भ्रम है। मीरजाफ़र को गद्दी से उतारने की आवश्यकता आ पड़ी थी इसे स्वीकार किया जा सकता है; किन्तु इस पद-च्युति के मूल में व्यक्तिगत स्वार्थ एवं धन-लोभ की यथेष्ट मात्रा भी दीख पड़ती है। यदि मीरजाफर को सिंहासन से उतारने में पुरस्कार की गन्ध न होती तो इस अंग्रेज़ बनियों की बदनामी से इतिहास कलंकित न हुआ होता।

गवर्नर वांसिटर्ट के अंग्रेज़ कोर्ट का नेतृत्व ग्रहण करने से पहले ही गवर्नर हालवेल और सेनापति कैलड ने मीरजाफ़र के सिंहासन से उतारने की सारी व्यवस्था ठीक कर रक्खी थी। अंग्रेज़-कोर्ट का सभापति हो जाने पर वांसिटर्ट ने हालवेल के कूटोपदेश को मानकर खुले दरबार में इस विषय को उठाने के बजाय कुछ सदस्यों से गुप्त परामर्श करके मीरजाफ़र को सिंहासन-च्युत कर दिया। मीरकासिम ने इन्हीं थोड़े सदस्यों को पुरस्कार देने का वचन दिया था अतः पता चलने पर कोर्ट के अन्य सदस्यों ने पुरस्कार से वंचित हो ईर्ष्या-वश यह गृह-कलह उपस्थित किया था, ऐसा ही अधिकांश अंग्रेज़ इतिहास-लेखकों का विश्वास है। १ वांसिटर्ट एवं उसके साथियों के विरुद्ध मीर-जाफ़र का पक्ष लेने वाले दल में आमियट, एलिस, मेजर कर्नाक, स्मिथ और वेरलेस्ट नाम के पाँच सदस्य थे। अंग्रेज़-कोर्ट के

1 Notwithstanding the obvious advantages already obtained and the improved prospects held out by the change, the personal interests of the opponents led them to condemn the whole proceeding, and a series of disgraceful disputes commenced, which were finally productive of the desruction of those concerned and of the most disastrous consequences to the interests of the Company generally. from which they were only rescued by the gallantry of the Army and the ability of its leaders.—BROOME'S RISE AND PROGRESS OF THE BENGAL ARMY, VOL. I.. 313.

सदस्यों में हालवेल के बाद आमियट का ही प्रभाव एवं महत्व था। हालवेल के पद-त्याग के पश्चात् उसीके गवर्नर होने की सम्भावना थी, किन्तु उसके इस प्राप्य पद पर वांसिटर्ट ने पदार्पण किया, अतएव वह क्रुद्ध हो उठा। एलिस यद्यपि पुराना सदस्य नहीं था, फिर भी उसने पटना की गुमाश्तगीरी पाने की इच्छा अपने हृदय में रख छोड़ी थी। वांसिटर्ट ने इस पद पर मेग्युअर को नियुक्त कर दिया अतएव वह भी असन्तुष्ट हो गया। मेजर कर्नाक शायद विलायत से प्रधान सेनापति के पद पर नियुक्त होकर भारतवर्ष आये थे। किन्तु वांसिटर्ट ने कुछ दिनों के लिए केलड को ही उक्त पद पर नियुक्त करके उसे पटना का कर्त्ता-धर्त्ता बना दिया और कर्नाक की उपेक्षा की, अतः उसने भी अपमान का अनुभव किया। स्मिथ एवं वेरलेस्ट पुराने सदस्य थे, किन्तु गुप्त परामर्श द्वारा अपनी उपेक्षा से असन्तुष्ट हो वे भी वांसिटर्ट के विरोधी-दल में सम्मिलित हो गये। १ जिन इतिहास-लेखकों ने वांसिटर्ट का पक्ष नहीं लिया है, उनका कथन है कि वांसिटर्ट की सारी कार्रवाई अन्यायपूर्ण एवं अभद्रोचित थी; लालच में पड़कर ही उसने ऐसे कार्य में योग दिया।

1 Foremost among the opponents of Mr. Vansittart, who was rendered generally unpopular by his having been brought from another Presidency, was Mr. Amyatt, the Senior Member of Council next to Mr Holwell; this gentleman never forgave the fact of his own supercession; he was supported by Mr. Ellis, who had just arrived from England and Major Carnac, a man of violent passions, and who took offence at Mr. Vansittart's refusal to appoint him to succeed Mr. Amyatt at Patna, a situation which was conferred on Mcguire; Major Carnac joined this party, his pride having been wounded by Mr. Vansittart's resolution to retain Col. Callaud in the command of the troops until affairs were settled. Mr. Smyth, and Mr. Verelest took the same side, considering themselves slighted as members of Council in not having been officially informed of the arrangements in contemplation which were entirely conducted by the Select Committee.--BROOME'S RISE AND PROGRESS OF THE BENGAL ARMY. VOL I., 218.

१७६० ई० के सितम्बर महीने में मीरकासिम के साथ जो शुभ सन्धि-पत्र लिखा गया, उससे अंग्रेजों को अनेक बातों में कम्पनी के लाभ की आशा हुई। पलासी-युद्ध के पूर्व मीरजाफ़र ने अंग्रेजों को जो धन देने की प्रतिज्ञा की थी, वह अभी तक पूरी तरह चुकाया नहीं गया था और मीरजाफ़र की व्यवस्था में वह शीघ्र वसूल हो जायगा, इसकी भी कोई आशा न थी। उधर शाहज़ादा अलग बंगाल पर आक्रमण करने की चेष्टा कर रहा था; मीरजाफ़र जैसे अकर्मण्य नवाब से उसकी गति रोकने के लिए सेना और धन एकत्र करने तथा अंग्रेज़ों के वाणिज्य-व्यवसाय की रक्षा करने की आशा भी व्यर्थ ही थी। कम्पनी का कार-बार अर्थाभाव से अस्त-व्यस्त कर रहा था। मीरकासिम के सधि-सूत्र से ये बातें दूर हो जायँगी, ऐसा विश्वास दिलाकर गवर्नर का दल राज-विप्लव सम्पन्न करने में दृढ़तापूर्वक अग्रसर हुआ। कम्पनी का कल्याण-साधन करना ही प्रधान लक्ष्य था; कम्पनी का सर्वनाश करके रुपया मारना किसी का उद्देश्य नहीं था; काग़ज़-पत्र दिखलाकर यह बात यहाँ के और विलायत के कर्मचारियों तथा अधिकारियों को समझा देने तथा उन्हें अपने पक्ष में मिला लेने में गवर्नर-दल को कठिनाई नहीं हुई। इस प्रकार विरोधी-दल को ही हारना पड़ा।

कलकत्ता-दरबार में गवर्नर का पक्ष ही प्रबल रहा; प्रतिवादियों ने एक लम्बा-चौड़ा शिकायतनामा अपने मन्तव्य के साथ विलायत भेजा, किन्तु बंगाल-बिहार और उड़ीसा में वांसिटर्ट के मतानुसार ही सारा कार्य चलने लगा। गवर्नर-दल सभी बातों मीरकासिम का पक्ष समर्थन करने लगा।

नये नवाब (नासिरुल्मुल्क, इमतियाजुद्दौला, मीरमुहम्मद, कासिमअलीखाँ, नसरतजंग बहादुर) सिंहासन पर बैठने के साथ ही अर्थ-संचय, विद्रोह-दमन, शाहज़ादा के प्रतिरोध तथा प्रजा-रक्षा के लिए उपाय खोज निकालने में व्यस्त हो गये। 'इन सब कार्यों के मूल में अंग्रेजों का कल्याण निहित है,' ऐसा विश्वास दिलाकर वांसिटर्ट दल मीरकासिम का पक्ष लेने लगा; अतः चतुर नये नवाब इन छिद्र-पथों से ही अपनी संकल्प-सिद्धि का आयोजन करने लगे।

अर्थ-संग्रह के लिए मीरकासिम ने जिन उपायों का अवलम्बन किया, उनसे किसीको आश्चर्य न हुआ। उनके आदेश से मुग़ल-राजप्रासाद का इतिहास-विश्रुत विलास-तरंग एकबारगी समाप्त हो गया—नृत्य-गीत स्तम्भितभाव से अवसन्न होकर दूर जा खड़ा हुआ; हास्य-कौतुक राजप्रासाद से बहिष्कृत कर दिया गया; ऐश्वर्य की छटा और नवाबी लक़दक़ को फांसी दे दी गई; अगणित दास-दासियों की संख्या परिमित हो गई। जो व्यर्थ थीं, वे निकाल बाहर की गई—जिन चीज़ों के न रहने से काम ही नहीं चल सकता, वही रह गईं। अन्यान्य सभी विभागों में व्यय घटाकर अर्थ-संग्रह का उपाय किया गया। राजपूत-राजशक्ति की प्राण-प्रतिष्ठा के लिए महाराणा प्रताप पत्तों पर रूखी-सूखी रोटियाँ तथा फल-मूल खाते एवं तृण-शय्या पर शयन करते थे; मुग़ल-राजशक्ति की प्राण-प्रतिष्ठा की आशा से मीरकासिम ने अपने सुख-सम्भोग की सारी व्यवस्था तोड़कर सादा जीवन बिताना आरम्भ किया। इस विषय में मीरकासिम की कोटि के किसी दूसरे नरपति ने बंगालके सिंहासन पर पैर नहीं रक्खा!
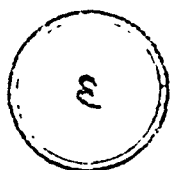
अंग्रेज़ बनियों की ज़मींदारी-प्राप्ति

Mir Kassim was shrewd and of quick discernment.

—*Broome's Bengal Army.*

मीरजाफर के असंगत वात्सल्य-वश कितने ही छोटे राजकर्मचारी बंगाल-बिहार-उड़ीसा के सर्वेसर्वा हो उठे थे। मीर जाफर के दुर्दिन में वे अधिकांश राजकर दबाकर बैठ रहे। इन लोगों में कीनूराम, मन्नूलाल तथा चिकनलाल के नाम इतिहास में प्रसिद्ध हैं। इन तीनों ने बहुत ही छोटे पद से नवाब-सरकार में प्रवेश किया था, किन्तु मीरजाफ़र के भाग्य-विकास के साथ-साथ इन सबकी ऐसी पदोन्नति हुई कि अनेक समय मन्त्रियों को भी इनका मुँह जोहना पड़ता था! स्वार्थ-साधन

ही इन सबका एकमात्र लक्ष्य था; अतः मीरजाफ़र के इस अधःपतन-काल में अपरिमित धन-राशि पर हाथ साफ़ कर वे निरापद स्थान को खिसक जाने का यत्न कर रहे थे। चतुर नवाब ने इन सबको गिरफ़्तार करके हिसाब लेने का आदेश किया।

उस समय का इतिहास देखने से पता चलता है कि राजाओं की कृपा-दृष्टि हो जाने के कारण, नितान्त अयोग्य व्यक्ति के ऊपर भी राज्य का सबसे गुरुतर ज़िम्मेदारी का पद छोड़ दिया जाता था। मीरजाफ़र के शासन-काल में भी ऐसा ही हुआ। राज्य-शासन के जटिल विषयों का भार योग्यतर कर्मचारी को न देकर इन सामान्य भृत्यों के ऊपर छोड़ दिया गया था। गिरफ़्तार होने के बाद हिसाब ठीक-ठीक समझाने की बात तो दूर रही, राज्य-सम्बन्धी प्रश्नों के उचित उत्तर देने में भी वे असमर्थ रहे। नवाब मीरकासिम की आज्ञा से इनका एवं इनके अधीनस्थ राज-कर्मचारियों को निकाल दिया गया और इन सबके पास जो कुछ सम्पत्ति निकली, सब राज्य-भण्डार में जमा करली गई। इस समय धन की चारों ओर खींच थी — मुर्शिदाबाद की नवाब-सेना वेतन न पाने से अधीर हो उठी थी; शाहज़ादा की गति रोकने के लिए पटना में कर्नल केलड की अधीनता में जो गोरी सेना थी, वह तनख़्वाह न पाने से बिगड़ रही थी; बिहार की नवाब-सेना भी वेतन न मिलने से अशान्त हो रही थी। गद्दी पर बैठकर मुर्शिदाबाद के इतिहास विख्यात राज-कोष में केवल पचास हज़ार रुपये देख नये नवाब मीरकासिम ने दांतों-तले अँगुली दबाई और क्रोध से ओठ चबाने लगे। जो कुछ रत्नादि मिले थे, उन्हें नक़द बेच डाला, किन्तु उतने से क्या हो सकता था? इस समय राज्य

का धन हड़प करने वाले इन राज-कर्मचारियों को गिरफ़ार करके गबन के रुपयों का उद्धार किया गया।

इस प्रकार बहुत ही थोड़े समय में मीरकासिम ने अपनी चतुराई और शासन-कौशल से रिक्त ख़ज़ाने की पूर्ति का उपाय किया। यह उन्हींका काम था कि ऐसी कठिन परिस्थिति में शासन हाथ में लेकर एक महीने के अन्दर ही उन्होंने मुर्शिदाबाद की नवाबी सेना को शान्त किया; अंग्रेज-वणिक-समिति को ढाई लाख की सहायता देकर उनकी मद्रास की कोठी को डूबने से बचाया, और पटना में रहनेवाली नवाबी सेना के लिए पाँच लाख तथा गोरी सेना के लिए दो लाख अर्थात कुल सात लाख रुपये कर्नल केलड के पास भेज दिये।[1]

नये नवाब की धन-संग्रह-पद्धति कितने ही लोगों को नई और असुविधाजनक प्रतीत होने लगी। पदच्युत राजकर्मचारी असंतुष्ट हो उठे; निकाले हुए दास-दासीगण जगह-जगह घूमने लगे; जिन लोगों का अनुचित रीति से एकत्र किया हुआ धन छीनकर राज-कोष में डाल दिया गया, वे बेईमान भी हाहाकार करके निन्दा-जनक तथा भ्रमपूर्ण बातें लोगों में फैलाने लगे। थोड़े ही दिनों में नये नवाब के विरुद्ध अंग्रेजों के पास अनेक शिकायतें आईं। मीरकासिम के सिंहासन पर बैठने के समय जिन लोगों ने विरोध किया था, वे इन छोटी-छोटी घटनाओं को लेकर अपने मत की पुष्टि तथा गवर्नर-दल को नीचा दिखाने की चेष्टा करने लगे। गवर्नर इत्यादि प्रमुख सदस्य भलीभांति जानते थे कि कैसे दुरूह समय में मीरकासिम ने सिंहासन ग्रहण किया

1 Vansittart's Narrative. Vol I., 140

है तथा इस समय रुपये की कितनी जरूरत है, अतएव उन लोगों ने किसी प्रकार भी नये नवाब का विरोध नहीं किया। इतना ही नहीं, वांसिटर्ट ने तो स्पष्ट ही कह दिया कि 'मीरकासिम देश के स्वाधीन शासक हैं; यह उन्हीं का देश है; अतएव वह किस प्रकार धन एकत्र कर रहे हैं, विदेशी बनियों की समिति को इसका छिद्रान्वेषण करने का अधिकार क्या है?'

मीरजाफ़र के शासन-काल में अंग्रेज ही राज्य के कर्त्ता-धर्ता हो उठे थे। राज्य-शासन के प्रत्येक कार्य में हस्तक्षेप करना उन्होंने आरम्भ कर दिया था; वे भी जानते थे और प्रजा भी जानती थी कि अंग्रेज ही असली शासक हैं। मीरजाफ़र ने भी प्रकारान्तर से यह बात स्वीकार कर ली थी। इस विश्वास को सब लोगों के मन से हटाकर मुग़ल-शक्ति की स्वाधीनता के लिए ही मीरकासिम अग्रसर हुए थे; अतः अंग्रेज गवर्नर ने जिस समय साफ़ शब्दों में कह दिया कि 'नवाब ही दण्ड-मुण्ड के कर्ता हैं; अतएव वह किस प्रकार शासन का कार्य कर रहे हैं, इसका छिन्द्रान्वेषण करने का विदेशी बनियों को क्या अधिकार है' उस समय मीरकासिम का पथ और सरल हो गया। पलासी युद्ध के पश्चात् अंग्रेज-शक्ति धीरे-धीरे बंग, विहार एवं उड़ीसा के शासन-कार्य पर कब्जा करती जा रही थी,; किन्तु वांसिटर्ट के न्यायोचित व्यवहार तथा राजनैतिक असावधानी से वह कमजोर हो पड़ी। ऐसा सुयोग पाकर चतुर नवाब मीरकासिम अपने को सब तरह स्वाधीन तथा अंग्रेजों के साथ सर्वांश में पदाश्रित बनियों का सा व्यवहार करने की चेष्टा करने लगे।

इस चेष्टा में ही मीरकासिम के शासन-कौशल का परिचय

का धन हड़प करने वाले इन राज-कर्मचारियों को गिरफ़ार करके गबन के रुपयों का उद्धार किया गया।

इस प्रकार बहुत ही थोड़े समय में मीरकासिम ने अपनी चतुराई और शासन-कौशल से रिक्त ख़ज़ाने की पूर्ति का उपाय किया। यह उन्हींका काम था कि ऐसी कठिन परिस्थिति में शासन हाथ में लेकर एक महीने के अन्दर ही उन्होंने मुर्शिदाबाद की नवाबी सेना को शान्त किया; अंग्रेज-वणिक-समिति को ढाई लाख की सहायता देकर उनकी मद्रास की कोठी को डूबने से बचाया, और पटना में रहनेवाली नवाबी सेना के लिए पाँच लाख तथा गोरी सेना के लिए दो लाख अर्थात कुल सात लाख रुपये कर्नल केलड के पास भेज दिये।[1]

नये नवाब की धन-संग्रह-पद्धति कितने ही लोगों को नई और असुविधाजनक प्रतीत होने लगी। पदच्युत राजकर्मचारी असंतुष्ट हो उठे; निकाले हुए दास-दासीगण जगह-जगह घूमने लगे; जिन लोगों का अनुचित रीति से एकत्र किया हुआ धन छीनकर राज-कोष में डाल दिया गया, वे बेईमान भी हाहाकार करके निन्दा-जनक तथा भ्रमपूर्ण बातें लोगों में फैलाने लगे। थोड़े ही दिनों में नये नवाब के विरुद्ध अंग्रेजों के पास अनेक शिकायतें आईं। मीरकासिम के सिंहासन पर बैठने के समय जिन लोगों ने विरोध किया था, वे इन छोटी-छोटी घटनाओं को लेकर अपने मत की पुष्टि तथा गवर्नर-दल को नीचा दिखाने की चेष्टा करने लगे। गवर्नर इत्यादि प्रमुख सदस्य भलीभांति जानते थे कि कैसे दुरूह समय में मीरकासिम ने सिंहासन ग्रहण किया

1 Vansittart's Narrative. Vol I., 140

है तथा इस समय रुपये की कितनी जरूरत है, अतएव उन लोगों ने किसी प्रकार भी नये नवाब का विरोध नहीं किया। इतना ही नहीं, वांसिटर्ट ने तो स्पष्ट ही कह दिया कि 'मीरकासिम देश के स्वाधीन शासक हैं; यह उन्हीं का देश है; अतएव वह किस प्रकार धन एकत्र कर रहे हैं, विदेशी बनियों की समिति को इसका छिद्रान्वेषण करने का अधिकार क्या है ?'

मीरजाफ़र के शासन-काल में अंग्रेज ही राज्य के कर्त्ता-धर्ता हो उठे थे। राज्य-शासन के प्रत्येक कार्य में हस्तक्षेप करना उन्होंने आरम्भ कर दिया था; वे भी जानते थे और प्रजा भी जानती थी कि अंग्रेज ही असली शासक हैं। मीरजाफ़र ने भी प्रकारान्तर से यह बात स्वीकार कर ली थी। इस विश्वास को सब लोगों के मन से हटाकर मुग़ल-शक्ति की स्वाधीनता के लिए ही मीरकासिम अग्रसर हुए थे; अतः अंग्रेज गवर्नर ने जिस समय साफ़ शब्दों में कह दिया कि 'नवाब ही दण्ड-मुण्ड के कर्ता हैं; अतएव वह किस प्रकार शासन का कार्य कर रहे हैं, इसका छिन्द्रान्वेषण करने का विदेशी बनियों को क्या अधिकार है' उस समय मीरकासिम का पथ और सरल हो गया। पलासी युद्ध के पश्चात् अंग्रेज-शक्ति धीरे-धीरे वंग, विहार एवं उड़ीसा के शासन-कार्य पर कब्जा करती जा रही थी,; किन्तु वांसिटर्ट के न्यायोचित व्यवहार तथा राजनैतिक असावधानी से वह कमज़ोर हो पड़ी। ऐसा सुयोग पाकर चतुर नवाब मीरकासिम अपने को सब तरह स्वाधीन तथा अंग्रेजों के साथ सर्वांश में पदाश्रित बनियों का सा व्यवहार करने की चेष्टा करने लगे।

इस चेष्टा में ही मीरकासिम के शासन-कौशल का परिचय

मिलता है। पहले अंग्रेज बनिये वाणिज्य-लोभ से बंगाल में पदार्पण करके मुग़ल-सिंहासन के आश्रय में पेट भरने की व्यवस्था करते थे। देश के साथ, शासन-क्षमता के साथ, देशवासियों के सुख-दुःख के साथ, मुगल-गौरव के उत्थान-पतन के साथ, उनका कोई सम्बन्ध नहीं था। यह बहुत दिन पहले की बात नहीं है। मीरकासिम के सिंहासन पर बैठने के केवल तीन वर्ष पहले नवाब सिराजुद्दौला के अमलों तक के राज-पथ में चलते समय अंग्रेज बनियों की अन्तरात्मा काँप उठती थी; बात-बात में अंग्रेज गुमाश्तों के हाथ जोड़े राजमहल तथा दरबार में खड़ा रहकर दीनता दिखानी और क्षमा मांगनी पड़ती थी। ज़रा भी असभ्य और उच्छृंखल व्यवहार करते ही हथकड़ी-बेड़ी से बंधकर नवाब की घुड़साल के अन्दर कारागृह का कष्ट भोगना पड़ता था। पर तीन ही वर्षों में कैसा भाग्य बदल गया ? मीरकासिम ने विचारकर देखा कि केवल दो गलतियों के सहारे ही अंग्रेज मुगलों के कन्धे को दबाये हुए हैं। मीरजाफर कुक्षण में उनको (अंग्रेजों की) सेना-सहायता ग्रहण करने तथा उस सहायता के लिए मासिक तनख्वाह देने को प्रतिज्ञाबद्ध हुए थे एवं कुक्षण में ही उन्होंने राजकोष के सामर्थ्य से अधिक मूल्य देने की प्रतिज्ञा करके सिंहासन खरीदा था। उनकी इन गलतियों से अंग्रेजों का ऋण न चुकने योग्य हो उठा था, एवं अंग्रेज-सेना की सहायता बिना राज्य-रक्षा करना असम्भव-सा हो गया था। मीरकासिम को समझते देर न लगी कि मुगल-राजशक्ति की प्राण-प्रतिष्ठा करने के लिए इन द्विविध अमंगलों को नष्ट करना होगा; अंग्रेजों का ऋण, जैसे हो, जल्दी से चुका देना होगा और यूरो-

पीय प्रणाली से देशीसेना का संगठन करके अंग्रेज-सेना की सहायता की आवश्यकता दूर करनी होगी। इसमें समय एवं धन की आवश्यकता थी। कासिमअली धीरे-धीरे इसी पथ पर आगे बढ़ने की चेष्टा करने लगे।

राजकोष में आशानुरूप धन एकत्र हो जाने पर मीरकासिम अंग्रेजों को कर्ज अदा करने में विलम्ब न करते, किन्तु वह जानते थे कि इतना धन शीघ्र संग्रह नहीं किया जा सकेगा; व्यय में कमी करके, आय बढ़ाकर, कष्ट-संचित धन, एक-एक कौड़ी दे देने पर भी पूर्ण रूप से चुकने की आशा नहीं है। जबतक देशी सेना का यूरोपीय युद्ध-प्रणाली से संगठन नहीं होता; जबतक सामरिक अस्त्र शस्त्र इस देश में ही तैयार करने का उपाय नहीं होता, तबतक राज्य-रक्षा के लिए विवश हो, मासिक-वेतन देकर अंग्रेज-सेना रखनी ही पड़ेगी और इस तनख्वाह की रक़म को लेकर सदा कलह मचा रहेगा;—आज यह, कल वह कहकर अंग्रेज-सेनापति तनख्वाह की मात्रा बढ़ाते ही जायँगे, इन सब असुविधाओं को दूर करने के लिए राजनीति-चतुर मीरक़ासिम ने सोच-विचारकर एक उपाय निकाला। उन्होंने अंग्रेजों से एक नई सन्धि कर ली।

अंग्रेजों के ऋण को क़िस्त में उचित समय पर अदा न कर सकने के कारण मीरजाफ़र समय-समय पर नदिया, बर्दवान इत्यादि ज़िलों से रुपये वसूल कर लेने का भार अंग्रेजों पर डाल देते थे। वे लोग ज़मींदारों पर सख्ती करके प्राप्य धन ले लेते थे। इसका फल कभी अच्छा न होता था—देश पीड़ित होता था और अंग्रेजों की शक्ति बढ़ती थी, फिर भी आशानुरूप अंग्रेजों

का ऋण अदा नहीं होता था। इस प्रकार अंग्रेज-ऋण के लिए समग्र राज्य को ऋण के जाल में बाँध रखने की अपेक्षा, तीन ज़िलों को स्थायी रूप से अंग्रेजों को सौंपकर शेष राज्य को पूर्ण रूप से स्वाधीन कर लेने में अपने उद्देश्य की पूर्ति देख मीरक़ासिम ने वर्दवान, मिदनापुर और चटगाँव, 'बन्दोवस्त' कर अंग्रेजों को दे देने की इच्छा प्रकट की। इस बन्दोवस्त की शर्तों का सार यही था कि 'इन तीन स्थानों से जो आमदनी होगी, वह अंग्रेजों की होगी; उसके अतिरिक्त वे नवाब-सरकार से एक कौड़ी भी न पावेंगे। इन स्थानों से राजकर वसूल हो या न हो, इसके लिए भी नवाब-सरकार जिम्मेदार न होगी।' गवर्नर-दल के अनुकूल होने के कारण अंग्रेज-कोर्ट ने इस प्रस्ताव से सहमति प्रकट की। यह कार्य सब तरह से अंग्रेजों के लिए कल्याण-प्रद है, यह सोचकर सभने ही मन में आनन्द प्रकट किया। अंग्रेजों को इतनी सरलता से इस प्रकार की व्यवस्था स्वीकार कर लेते देख मीर-क़ासिम को भी यथेष्ट आनन्द हुआ।

अंग्रेजों के आनन्द का कारण यह था कि इतने दिन बाद उनका एक स्वतन्त्र राज्य हुआ। मीरक़ासिम के आनन्द का कारण यह था कि तीन स्थानों के बदले बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा की अंग्रेजों के हाथ से मुक्ति हुई।

नवाब क़ासिमअली की प्रसन्नता के और भी कारण थे। मरहठों के पिछले हमले में मिदनापुर तथा वर्दवान उजड़-से गये थे—अधिकांश गाँव जन-शून्य हो गये थे; कितने ही उपजाऊ खेत निर्जन वन के रूप में बदल गये थे और जमींदार तथा राजा लोग अबाध्य-से हो रहे थे। उन लोगों को ताड़ित करके सुशासन

स्थापित करने और नियमित रूप से राजकर वसूल करने में समय और अर्थ की आवश्यकता थी। सेना तथा धन का नाश करके शान्ति स्थापित कर लेने पर भी इन दोनों स्थानों से अधिक आमदनी की आशा नहीं थी। रहा चटगाँव, सो उसकी बात तो सदैव से ही निराली रही है। बंगाल में मुग़ल-शासन के आरम्भ से ही वहाँ सदा युद्ध-कलह होता रहता था; अराकानाधिपति के साथ न जाने कितने युद्धों में लोगों को जूझना पड़ा था, पीछे मग एवं फिरंगी दस्युदल सीमान्त में जगह-जगह अड्डा बनाकर जल तथा स्थल पथ से उसे लूट रहे थे। इन मग एवं फिरंगी डाकुओं के मारे चटगाँव में शान्ति नहीं थी अतएव शासन-कार्य चलाने योग्य आमदनी होने की आशा भी वहां से नहीं थी। ऐसी अवस्था में चटगाँव हाथ से निकल जाने पर नवाब सरकार की कुछ हानि नहीं थी—इसीलिए मीरक़ासिम अपने प्रस्ताव पर अंग्रेजों की सम्मति पाकर प्रसन्न हुए थे। उनके प्रत्येक कार्य से उनकी अद्भुत राजनीतिज्ञता का परिचय मिलता है।

दोनों पक्ष की सम्मति से यह सारी व्यवस्था सन्धिपत्र में लिखी गई।[1] तीनों जिले मीरक़ासिम ने अंग्रेजों को सौंप दिये।

1 *For all charges of the Company and of the said army, and provisions for field &c, the lands of Burdwan, Midnapur, and Chittagong shall be assigned, and Sunuds for that purpose shall be written and granted. The Company is to stand all losses, and receive all the profits of those countries; and will demand no more than the three assignments aforesaid.—CLAUSE FIFTH OF THE TREATY CONCLUDED BETWEEN MR. VANSITTART, THE GENTLEMEN OF THE SELECT COMMITTEE AND THE NABAB MEER MOHAMAD KASSIM ALI KHAN, DATED THE 27 TH OF SEPTEMBER, 1760.*

अर्थात्, कम्पनी तथा उपर्युक्त सेना के सारे खर्चों, ऋण तथा युद्ध के रसद आदि के बदले वर्द्धमान, मिदनापुर और चटगाँव के ज़िले स्थायी रूप से कम्पनी को दे दिये जायँगे। इसके लिए संनद लिखकर स्वीकृत कर

इसी संधि से बंगाल के साथ अंग्रेजों का स्थायी और प्रकट सम्बन्ध हुआ एवं इन स्थानों की अराजकता धीरे-धीरे दूर होने लगी।

लिये जायँगे। इन स्थानों में जो कुछ घाटा या लाभ होगा, उसकी ज़िम्मेदार कम्पनी ही होगी और वह इन स्थानों के अतिरिक्त अपने ऋण या व्यय के लिए नवाब-सरकार से कुछ और नहीं माँग सकेगी।"

—मि० वान्सिटर्ट, सिलेक्ट कमेटी के सदस्यों तथा नवाब मीर मुहम्मद कासिमअलीखाँ के बीच २८ सितम्बर सन् १८६० को हुई सन्धि की पाँचवीं धारा।
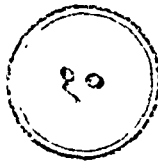
विद्रोह-दमन

"The brunt of the fight fell upon the English, conduct of his own troops whenever they were brought under fire convinced Mir Cassim of the necessity of a reform in his army as stringent as that which he had introduced into his treasury" —*Col. Malleson.*

मीरजाफर की शासन-शिथिलता से अवसर पाकर सीमान्त प्रदेश के अधीनस्थ राजा और जमींदार लोग प्रायः सावधान और स्वतंत्र हो उठे थे। इसी समय शाहजादा शाहआलम के भारत-सम्राट् बनने की इच्छा से सेना सजाकर उत्तर-पश्चिम के अनेक देशों में घूमने के बाद बिहार में उपस्थित होने पर विद्रोही जमींदार-दल के लिए नवाब-सर-

कार की उपेक्षा करना और सहज हो रहा था। मीरक़ासिम के सिंहासन पर बैठने के समय बिहार प्रदेश के अधिकांश स्थान तथा मिदनापुर, बर्दवान और वीरभूमि नवाब-सरकार की शासन सीमा से बाहर हो रहे थे, अतएव मिदनापुर और बर्दवान पाकर भी अंग्रेज निरुद्वेग रूप से कर वसूल करने में समर्थ नहीं हुए; बल्कि विद्रोह-दमन करने के लिए अंग्रेज़ और नवाब-सेना को सबसे पहले मिदनापुर की यात्रा करनी पड़ी।

कर्नल केलड के पटना की ओर प्रस्थान करने के पश्चात् ही कैप्टन मार्टिन ह्वाइट की अधीनता में गोरी एवं काली सेना तथा कुछ गोलंदाजों ने मिदनापुर प्रान्त की ओर यात्रा की। दूसरी ओर सेनानायक बनकर मीरकासिम ने स्वयं ही अंग्रेज सेनापति मेजर यार्क एवं उसकी सेना के साथ बर्दवान की तरफ प्रस्थान किया। १ कैप्टन मार्टिन को मिदनापुर में युद्ध छेड़ने की आज्ञ-

बनाकर अड़ी हुई थी। असदुज्जमाखाँ युद्ध-विद्या के पण्डित थे। अपने प्रबल प्रताप से उन्होंने वीरभूमि का नाम सार्थक कर रक्खा था। उनकी बीस सहस्र पैदल और पाँच हजार अश्वारोही सेना कड़वा में छावनी डाले हुए है, सुनकर उनकी गति-विधि का पता लगाने के उद्देश्य से नवाब-सेना कुछ दिनों के लिए दुधगांव में पड़ाव डालने को बाध्य हुई।

मीरकासिम एवं मेजर यार्क ने दुधगाँव तथा कैप्टन व्हाइट ने बर्दवान के उत्तर में छावनी डाल दी। शत्रु-सेना की गति-विधि का पता लगाकर दोनों सेनाओं को लेकर एकही साथ असदुज्जमाँ पर आक्रमण करना तय हुआ। उधर कैप्टन व्हाइट को उत्तर-पूर्व से वीरभूमि की ओर अग्रसर होने का आदेश मिला।

कैप्टन व्हाइट दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ने लगे। असदुज्जमाँ ने जिस स्थान पर शिविर डाल रक्खा था, वह स्वभावतः ही दुर्गम था; सामने से आक्रमण होने की संभावना बहुत ही कम थी अतः वह निश्चिन्त होकर ससैन्य समय बिता रहे थे। ऐसे ही समय कैप्टन व्हाइट की सेना ने सहसा उनकी छावनी का पार्श्व-भाग भेद कर भीतर प्रवेश किया। इस प्रकार के अकस्मात् आक्रमण से जो होना चाहिए असदुज्जमाँ की सेना का भी वही हाल हुआ। उसमें भगदड़ पड़ गई; लोग इधर-उधर भागने का प्रयत्न करने लगे; किन्तु इसी समय मेजर यार्क और मीरकासिम ने दोनों ओर से आक्रमण किया। इस प्रकार भागती हुई विद्रोही सेना सहज ही पराजित हुई।[1] यों वीरभूमि तथा बर्दवान के

[2] Broome's Rise and Progress of the Bengal Army: Vol. I, 318.
देखिए 'सैरुलमुताखरीन'— द्वितीय भाग, १२३ पृष्ठ।

कार की उपेक्षा करना और सहज हो रहा था। मीरक़ासिम के सिंहासन पर बैठने के समय बिहार प्रदेश के अधिकांश स्थान तथा मिदनापुर, बर्दवान और वीरभूमि नवाब-सरकार की शासन सीमा से बाहर हो रहे थे, अतएव मिदनापुर और बर्दवान पाकर भी अंग्रेज निरुद्वेग रूप से कर वसूल करने में समर्थ नहीं हुए; बल्कि विद्रोह-दमन करने के लिए अंग्रेज़ और नवाब-सेना को सबसे पहले मिदनापुर की यात्रा करनी पड़ी।

कर्नल केलड के पटना की ओर प्रस्थान करने के पश्चात् ही कैप्टन मार्टिन ह्वाइट की अधीनता में गोरी एवं काली सेना तथा कुछ गोलंदाजों ने मिदनापुर प्रान्त की ओर यात्रा की। दूसरी ओर सेनानायक बनकर मीरकासिम ने स्वयं ही अंग्रेज सेनापति मेजर यार्क एवं उसकी सेना के साथ बदवान की तरफ प्रस्थान किया। १ कैप्टन मार्टिन को मिदनापुर में युद्ध छेड़ने की आवश्यकता न पड़ी; अंग्रेज सेना के पदार्पण-मात्र से ही विद्रोहीदल ने बनों एवं जंगलों को भागना शुरू कर दिया। इस प्रकार बिना कष्ट के ही मिदनापुर अधिकार में आ गया। शान्ति हो जाने पर कैप्टन साहब थोड़ी सेना वहाँ छोड़ वीरभूमि की ओर अग्रसर हुए।

वीरभूमि के जमींदार असदुज्ज़माँखाँ प्रकाश्य रूप से विद्रोही हो उठे थे अतएव वह बाहुबल से बाहुबल को परास्त करने की आशा से अपनी शक्ति के अनुसार सेना-संग्रह करके आक्रमण की आशंका में सावधानी के साथ शासन कर रहे थे। उनकी सेना दुर्गम वीरभूमि के कड़वा नामक स्थान में गढ़ और खाई

१ देखिए 'सैरुलमुताख़रीन'—द्वितीय भाग, १५१ एवं ५१८ पृष्ठ।

बनाकर अड़ी हुई थी। असदुज्जमाखाँ युद्ध-विद्या के पण्डित थे। अपने प्रबल प्रताप से उन्होंने वीरभूमि का नाम सार्थक कर रक्खा था। उनकी बीस सहस्र पैदल और पाँच हजार अश्वारोही सेना कड़वा में छावनी डाले हुए है, सुनकर उनकी गति-विधि का पता लगाने के उद्देश्य से नवाब-सेना कुछ दिनों के लिए बुधगांव में पड़ाव डालने को बाध्य हुई।

मीरकासिम एवं मेजर यार्क ने बुधगाँव तथा कैप्टन व्हाइट ने बर्दवान के उत्तर में छावनी डाल दी। शत्रु-सेना की गति-विधि का पता लगाकर दोनों सेनाओं को लेकर एकही साथ असदुज्जमाँ पर आक्रमण करना तय हुआ। उधर कैप्टन व्हाइट को उत्तर-पूर्व से वीरभूमि की ओर अग्रसर होने का आदेश मिला।

कैप्टन ह्वाइट दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ने लगे। असदुज्जमाँ ने जिस स्थान पर शिविर डाल रक्खा था, वह स्वभावतः ही दुर्गम था; सामने से आक्रमण होने की संभावना बहुत ही कम थी अतः वह निश्चिन्त होकर ससैन्य समय बिता रहे थे। ऐसे ही समय कैप्टन ह्वाइट की सेना ने सहसा उनकी छावनी का पार्श्व-भाग भेद कर भीतर प्रवेश किया। इस प्रकार के अकस्मात् आक्रमण से जो होना चाहिए असदुज्जमाँ की सेना का भी वही हाल हुआ। उसमें भगदड़ पड़ गई; लोग इधर-उधर भागने का प्रयत्न करने लगे; किन्तु इसी समय मेजर यार्क और मीरकासिम ने दोनों ओर से आक्रमण किया। इस प्रकार भागती हुई विद्रोही सेना सहज ही पराजित हुई।[1] यों वीरभूमि तथा बर्दवान के

2 *Broome's Rise and Progress of the Bengal Army: Vol. I, 370.*

[1] देखिए 'सैरुलमुताखरीन'—द्वितीय भाग, १३२ पृष्ठ।

इतनी सरलता से वश में आ जाने के बाद पुनः देश में नवाब की शासन-क्षमता ज़ोरों से फैल गई।

इस विद्रोह-दमन के उपलक्ष्य में नवाब की सेना को जिन छोटे-छोटे युद्धों में लिप्त होना पड़ा था, उनमें उसका मुखोज्ज्वल नहीं हुआ। मुगलों के भाग्योदय तथा उत्थान के समय मुग़ल सेना के वीर-दर्प से वंगभूमि काँप उठी थी; मुगलों का सौभाग्य-सूर्य जिस समय धीरे-धीरे अस्ताचल की ओर प्रस्थान कर रहा था, उस समय मुगल-सेना का पूर्व-गौरव भी अवसन्न हो गया था। निरन्तर के राज-विप्लव ने सेना को अस्त-व्यस्त कर डाला था; उनकी सुशिक्षा की व्यवस्था नष्ट हो गई थी; समय से वेतन मिलने का कभी अवसर नहीं आता था; किनके लिए और क्यों वे प्राण-विसर्जन कर रहे हैं, इसका पता भी अभागों को भली-भाँति नहीं चलता था। एक बार सिराजुद्दौला को बाँधकर मीर-जाफ़र को सिंहासन पर बैठा दिया था और इस बार मीरजाफर को ही बाँधकर मीरकासिम को मसनद पर बिठाना पड़ा। इस प्रकार अनिश्चित क्षेत्र में पड़कर सेना की रीति-नीति शिक्षा-दीक्षा, आदर्श और चरित्रबल सब गुणों का अधःपतन हो गया। लूट-पाट के लोभ वा पुरस्कार के लालच से सैनिक पुतलियों की नाईं युद्धस्थल की यात्रा करते थे और इसीलिए कभी-कभी गोलियों की बौछार वा गोलों का प्रहार आरम्भ होते-होते ही पीठ दिखाकर भाग खड़े होते थे।

डेरे-डेरे में घूमकर मीरक़ासिम ने मुग़ल-सेना की दुर्दशा के असली कारणों का पता लगाया। उन्हें यह जानने में देर न लगी कि वह वीर चरित्र के आदर्श से कितनी दूर चली गई है।

इसकी सहायता से मुग़ल-राजशक्ति की प्राण-प्रतिष्ठा करने की बात तो दूर रही, एक दिन निश्चिन्त होकर राज्य-रक्षा करना भी असम्भव है। क़ासिमअली के चरित्र का प्रधान गुण था—कार्य-कुशलता। वह जब किसी बात की आवश्यकता का अनुभव कर लेते थे तो तुरन्त यथाशक्ति उसके सम्पादन का उद्योग करते थे। सेना की दुरावस्था देखने पर उसके संगठन की आवश्यकता के सम्बन्ध में जब उन्हें ज़रा भी सन्देह न रह गया, तो उन्होंने झट से उसके संस्कार में मन लगाया। १

उधर कर्नल केलड ने मीरक़ासिम-द्वारा प्राप्त धन लेकर पटना में पदार्पण किया और नवाब तथा अंग्रेज़-सेना के पहले का बाकी तनख़्वाह मध्ये उन्हें कुछ अंश बाँटकर शाहज़ादा की गति रोकने का आयोजन आरम्भ कर दिया। अंग्रेज़ सैनिकों का सारा बाकी वेतन तो कर्नल ने चुकाया किन्तु नवाब-सेना का पूर्व-वेतन पूरा-पूरा नहीं दिया। पूरा वेतन न पाने से आन्तरिक असन्तोष के कारण धीरे-धीरे नवाब-सेना विद्रोहोन्मुख होने लगी।

केलड रास्ते में मुँगेर दुर्ग में इनसाइन जॉन स्टेबुल्स नामक अंग्रेज़ के अधीन एक छोटी सेना छोड़ आया था। पटना पहुँचने पर उसकी सहायता के लिए उसने एक दल वहाँ और भेजा। इस दल में ५५० सैनिक थे; जिनमें तीन पल्टन सिपाही, पचास-साठ फ़िरंगी और दो पल्टन मुग़ल अश्वारोही थे। २ मुँगेर पहुँचने पर जान स्टिवल्स ने इस सेना को निकटवर्ती कटकपुर में

1 *The conduct of his own troops on this occasion convinced Meer Kasim Khan of their utter inefficiency, and he immediately set about a reform of his army.*—BROOME'S RISE AND PROGRESS OF THE BENGAL ARMY, VOL. I. 320.

2 BROOME'S RISE AND PROGRESS OF THE BENGAL ARMY, VOL. I. 320.

ले जाकर विद्रोह-दमन का आदेश किया। इस बात की खबर पाते ही विद्रोही राजा ने दो हजार पैदल और अश्वारोही सेना लेकर अपने सेनापति को अंग्रेजों के पड़ाव पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। नवाब की सेना ने मुँगेर से तीन मील की दूरी पर आकर छावनी डाल दी। दूसरे दिन सवेरे विद्रोही राजा की सेना आक्रमण करेगी, इस बात का पता अंग्रेज-नायक को लग गया। उसने रात में ही सोई हुई विद्रोही सेना पर आक्रमण कर दिया।

विद्रोही राजा की सेना जाग तो गई, किन्तु अकस्मात् आक्रमण के कारण विरोधियों की गति रोक न सकी, फिर भी उसने पलायन नहीं किया वरन् एकत्र होकर युद्ध के लिए दृढ़तापूर्वक तैयार हो गई। अब दोनों ओर की सेनाओं की शक्ति की परीक्षा होने लगी। उस परीक्षा में विद्रोही सेना-दल, अंग्रेजों की सुशिक्षित गोरी सेना के सामने से हटकर, पीछे नहीं मुड़ा। उसके अमित विक्रम के सामने फिरंगी-सेना आगे न बढ़ सकी किन्तु इसी समय नवाब की सिपाही-सेना ने सहर्ष आगे बढ़कर विद्रोहियों पर आक्रमण किया और वीर की नाईं बन्दूकों पर संगीन चढ़ाकर दृढ़ता एवं धीरतापूर्वक अमित तेज से विद्रोही सेना-शिविर की ओर अग्रसर हुई। विद्रोहियों के सुदृढ़ वीरभाव के कारण अनेक सैनिक धराशायी होने लगे; किन्तु जो जीवित रहे, वे हटे नहीं और अन्त में वीरतापूर्वक आगे बढ़ शत्रु-शिविर को भेदकर विद्रोही-दल को छिन्न-भिन्न कर दिया। इस समय प्राची दिशा में प्रभात की लालिमा फैलने लगी थी, अतएव उसके प्रकाश में विद्रोही-दल ने कटकपुर की राजधानी की ओर पला-

यन किया; विजयोन्मत्त मुगल अश्वारोहियों ने उनका पीछा किया।

कटकपुर की राजधानी के सामने ही प्रचंड प्रान्तर में विद्रोही राजा ससैन्य आक्रमण की प्रतीक्षा कर रहे थे। मुगल अश्वारोहियों एवं उनके पीछे आनेवाली सेना-नायक स्टेबुल्स की पैदल सेना के वहाँ पहुँचते ही युद्ध छिड़ गया। इस युद्ध में किसी ने किसी पर ज़रा भी रियायत न की; विद्रोही राजा प्राणों की पर्वा न करके ससैन्य उत्साह से युद्ध करने लगे। किन्तु उनकी क्षुद्र शक्ति में उस बाढ़ को रोकने की क्षमता कहाँ थी? अन्त में जो होना था, वही हुआ। उन्मत्त विजयी मुगल सेना ने राजधानी के मुहल्ले-मुहल्ले, घर-घर, विनोद-मंदिर, महल इत्यादि में, सर्वत्र आग लगाकर कटकपुर की सुन्दर राजधानी को भयानक स्मशान-भस्म के रूप में परिणत करके दम लिया। युद्ध से और मिल ही क्या सकता है? नेपोलियन ने ठीक ही कहा है कि 'भगवान् जिस जाति को सबसे अधिक दण्ड देना चाहते हैं, उसे ही युद्ध की मदिरा से उन्मत्त कर देते हैं।'

इस प्रकार विद्रोह शान्त हुआ। नायक स्टेबुल्स की पदोन्नति का सूत्रपात हुआ। जिस मुगल सेना की चरित्रहीनता के लिए मीरकासिम मर्मपीड़ित थे; मुसलमानों का गौरव अवसादग्रस्त था; इतिहास कलंक की घोषणा कर रहा था, उसी मुगल-सेना की वीरता की कथा एक बार अंग्रेज़ों के मुख से ही सर्वत्र फैल गई। उसकी वह वीरत्व-कहानी आज भी अंग्रेज़ों के सामरिक इतिहास के पृष्ठों में लिखी हुई है।[१]

[१] *The alarm however speedily spread, and he (Ensign Stables) found the enemy strongly posted under cover of an old entrenchment; but he did not hesitate*

इसके बाद प्रधान सेनापति केलड अधिक दिनों तक पटना-प्रदेश में रह न सके; १७६१ ई० के आरंभ में ही मेजर कर्नाक के हाथ सेना का भार देकर उन्हें मद्रास की यात्रा करनी पड़ी।

to attack them and finally succeeded THROUGH THE GALLANTRY OF THE SIPAHIS in forcing the camp at the point of the bayonet.—BROOME's RISE AND PROGRESS OF THE BENGIL ARMY, VOL, I, 321.

शाहज़ादा का अभियान

"He was most desiroues to persuade the English to embrace his claims, and support him with a force to enable him to advance upon Delhi and take possession of his capital and his throne."

—Broome's Bengal Army.

मुगल-राजशक्ति के अधःपतन के जमाने में भारत में अनेक छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्यों की स्थापना हुई थी। हैदराबाद के निज़ाम तथा अवध के वज़ीर ने मुगल बादशाह के विश्वस्त कर्मचारी होकर भी स्वाधीन राज्यों की स्थापना की थी; बंग, विहार एवं उड़ीसा के नवाब-नाज़िम लोग दिल्लीश्वर के सूबेदार होकर भी कर देना छोड़ बैठे थे; यूरोपीय लोग बनिये

था व्यापारी होकर भी ताव दिखाने लगे थे, और महाराष्ट्र सेना-नायकों ने तो मुगलशक्ति की जड़ खोदकर उसकी जगह हिन्दू-साम्राज्य स्थापित करने के लिए देश को लूटना ही शुरू कर दिया था। भारतवर्ष के सारे प्रान्तों में घोर अराजकता फैली हुई थी। देश की आन्तरिक दुरावस्था देखकर ही नादिरशाह दिल्ली लूट गया था। अहमदशाह अब्दाली आकर पानीपत के अन्तिम युद्ध में महाराष्ट्र-शक्ति को पद-दलित एवं चूर-चूर करके भारतवर्ष को और भी दुर्बल कर गया।

ऐसी घोर अराजकता के समय जिस प्रकार मीरकासिम मुगल-शक्ति की प्राण-प्रतिष्ठा के लिए कटिबद्ध हुए थे, उसी तरह एक और मुसलमान युवक ऐसी कठोर आकांक्षा को हृदय में लिये सेना-संग्रह कर रहा था। उसका नाम (शाहजादा) शाह-आलम था; दिल्ली के सिंहासन का उत्तराधिकारी होने के कारण उस समय भी जन-साधारण से उसकी धाक एकदम दूर नहीं हुई थी; तिसपर अहमदशाह अब्दाली-जैसे एक विजयी एवं परा-क्रमी मुसलमान वीर तथा अवध के नवाब-जैसे धनवान अमीर द्वारा शाहजादा को अभयदान एवं आश्वासन मिलने पर उसका पथ और भी सरल हो गया। दिल्ली एवं आगरा की राजधानियाँ उस समय भी शत्रु के हाथ में थीं; अतः शाहजादा ने बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा की ओर ही पहले दृष्टि डाली। सिराजुद्दौला के समय में ही ऐसे लक्षण दिखाई दे चुके थे। मीरकासिम ने जिस समय सिंहासन पर अधिकार किया, उस समय शाहजादा बिहार के अधिकांश स्थानों पर अधिकार कर चुका था। सोननदी के किनारे बसे हुए दाऊदनगर तथा फलगू के किनारे बसे हिंदुओं

के तीर्थ गया में सेना की छावनियाँ नियत कर वह पटना के आस-पास के प्रदेश एवं दक्षिण विहार पर अधिकार जमा कर कर-संग्रह किया करता था। १

बहुत दिनों तक दक्षिण विहार पर अधिकार किये रहने के कारण कितने ही विद्रोही ज़मींदार उसके पक्ष में हो गये थे और नवाब की सेना से बहुतेरे सिपाही एवं जमादार भागकर उसके यहाँ आश्रय ले रहे थे। शाहज़ादा के सम्राट् होने पर बंगाल-विहारादि के मसनद पर मीरकासिम बैठेंगे या लीलाक्रम से अंग्रेज़ लोग मुगल-साम्राज्य के वाणिज्य-व्यवसाय पर योंही एकाधिपत्य कर सकेंगे, इसका कोई निश्चय नहीं किया जा सकता था, अतएव शाहज़ादा की गति रोकना अंग्रेज और नवाब दोनों ही का कर्त्तव्य हुआ। पहले लिखा जा चुका है कि कर्नल केलड के मद्रास चले जाने के कारण उस पदपर मेजर कर्नाक नियुक्त हुए थे। अपनी नियुक्ति के साथ ही कर्नाक ने शाहज़ादा पर ससैन्य आक्रमण करने का निश्चय किया। २

मीरकासिम ने व्यय के लिए कार्नाक के पास तीन लाख रुपये और भेज दिये तथा दिसम्बर महीने में पुनः छः लाख भेजकर सेना का सारा बाकी वेतन चुका देने की प्रतिज्ञा करके देना-पावना का हिसाब बनाने के लिए उन्होंने नहवतराय नामक एक उच्च कर्मचारी को पटना भेज दिया। किन्तु इतने से भी देशी

1 His head-quarters were established at Behar, but Daudnugger on the Soane, and Gyah on the Falgu, were also occupied by large detachments of his troops, and the revenues of the province were collected in his name up to within a few miles of the city of Patna.--BROOME'S RISE AND PROGRESS OF THE BENGAL ARMY, VOL. I. 322.

1 Major Carnac now assumed command of the Bengal force and that officer determined upon an immediate attack upon the Emperor.--BROOM'S RISE AND PROGRESS OF BENGAL ARMY, VOL. I, 322.

सिपाही-सेना युद्ध-यात्रा के लिए पहले प्रस्तुत न हुई; पीछे से अंग्रेज-सेना का उत्साह देख तथा अंग्रेज कर्नल के व्यंग-वाक्यों से लज्जित हो उसने भी अंग्रेजी फ़ौज का अनुगमन किया।

कामगारखाँ तथा राजा बुनियादसिंह नामक ज़मींदारों ने ससैन्य शाहज़ादा का साथ दिया था, किन्तु शाहज़ादा के दरबार में कामगारखाँ की प्रधानता होने के कारण ईर्ष्यावश पहलवान-सिंह तथा बलवन्तसिंह इत्यादि अन्यान्य ज़मींदारों ने शाहज़ादा के प्रति उपेक्षा ही प्रकट की थी। ऐसे समय शाहज़ादा पर आक्रमण करना मीरकासिम तथा अंग्रेज़ों के लिए विशेष सुविधा-जनक हुआ।

विहार नगर के तीन कोस पश्चिम सोन नामक बस्ती के निकट मोहना नदी की एक छोटी शाखा के किनारे शाहज़ादा ने ससैन्य डेरा डाल रक्खा था। मेजर कर्नाक की सेना के इस क्षुद्र नदी के दूसरे तट पर पहुँचते ही युद्ध आरंभ होगया। * इस युद्ध में शाहज़ादा की सेना ने बड़ी वीरतापूर्वक प्रतिपक्षी सेना की गति रोकने की चेष्टा की, किन्तु एक आकस्मिक घटना ने लड़ाई का रुख एकदम बदल दिया। शाहज़ादा एक हाथी पर बैठकर स्वयं युद्धस्थल में सेना का संचालन कर रहा था। अकस्मात् प्रतिपक्षी सेना की ओर का एक गोला आकर उसके पैरों के पास गिरा, जिससे आहत होकर हाथी शिविर की ओर भागा। सेना-

* मिल ने इस युद्ध को 'गया-युद्ध' के नाम से वर्णित किया है, किन्तु वस्तुतः यह गया में नहीं हुआ था। अंग्रेज इतिहास-लेखकों में केवल ब्रूम ने ही अपने 'बंगसेना का उदय एवं उत्थान' शीर्षक ग्रन्थ में ठीक-ठीक स्थान का निर्देश किया है।

संचालक शाहज़ादे की अनुपस्थिति तथा हाथी के दौड़ने से दल-भंग हो जाने के कारण उसकी सेना भाग खड़ी हुई।[1]

उपयुक्त अवसर देख मेजर कर्नाक ने प्रचण्ड वेग से शत्रु की सेना का पीछा किया, किन्तु सहसा उन्हें रुकना पड़ा। सिराजुद्दौला के अधःपतन के बाद फ्रांसीसी वीर मौशिये ला ने शाहज़ादा का आश्रय लिया था। उसे अंग्रेज़-सेना की गति रोकने के लिए सामने ही ससैन्य उपस्थित देख मेजर कर्नाक और आगे बढ़ने में समर्थ न हुए।

माश्योर ला के पिता का नाम जॉन ला था। उनका जन्म यद्यपि स्काटलैंड में हुआ था, किन्तु आजीवन फ्रांस में बसकर उसी देश के राजकार्य में नियुक्त रहने के कारण, सब लोग उन्हें फ्राँसीसी ही कहने लगे थे! उनके वीर पुत्र माश्योर ला ने फ्रांस के ही सामारिक विद्यालय में शिक्षा पाकर भारतवर्ष में पदार्पण किया था। अंग्रेजों के अत्याचार के कारण चन्द्रनगर छोड़कर उन्होंने सिराजुद्दौला की शरण ली थी किन्तु अभागे सिराज को अंग्रेज सेनापति के चक्कर में पड़कर तथा विद्रोही राजकर्मचारियों के कुटिल कौशल-जाल में फँसकर माश्योरला-जैसे सच्चे बन्धु से हाथ धोना पड़ा। माश्योरला को अपना चिर-शत्रु बताकर अंग्रेजों ने सिराज पर दबाव डाल कर उन्हें बंगाल बिहार एवं उड़ीसा से बाहर कर दिया था। उन सब बातों को स्मरण कर ला ने युद्ध के लिए तैयारी की थी। अंग्रेजों के गोले खाकर उसकी सेना के कितने ही सैनिकों ने पीठ दिखा दी। किंतु पचास साहसी सैनिक, तेरह सेनानायक और सेनापति

1 Ironside's Narrative, P, 24.

माशग्रोर ला जरा भी विचलित न हुए। १ अंग्रेज सेनापति ऐसी निर्भीक तथा वीर मूर्ति के सामने थोड़ी देर के लिए स्तंभित होकर उसकी अपरमित निश्चलता देखता रहा एवं मुग्ध हो क्षण भर बाद ही सारी सेना को पीछे छोड़ सम्मुख जाकर माशग्रोर ला को वीरोचित अभिवादन किया तथा प्राण विसर्जन न करने के लिए बार-बार अनुरोध करने लगा। बहुत अनुरोध तथा अनुनय-विनय के बाद माशग्रोर ला ने युद्धभूमि छोड़ अंग्रेज-शिविर में चलने की सम्मति मान ली. किंतु प्राण रहते अस्त्र त्याग करने में अस्वीकृति प्रकट की। अंग्रेज सेनापति वीर था तथा वीरों का आदर करना जानता था, अतएव उसने बड़े आदर के साथ फरासीसी सेना-वेष्ठित वीरवर ला को अपने खीमे में ले जा कर रक्खा; अभ्यर्थना की और इस प्रकार वीरत्व की मर्यादा का पालन किया।२ इस प्रकार युद्ध में नवाब तथा अंग्रेज-दल को विजय हुई और शाहजादा की सेना को पीछे हटना पड़ा। किन्तु इस लड़ाई का कोई परिणाम न हुआ। किसी पक्ष को विशेष हानि-लाभ न उठाना पड़ा। शाहजादा ने पुनः सेना एकत्र कर पटना की ओर यात्रा की।

1 Mooshur Lass finding himself abandoned and alone, resolved not to turn his back; he bestrode one of his guns, and remained firm in that posture, waiting for the moment of his death. This being reported to Major Carnac he detached himself from his men, with Captain Knox and some other officers and he advanced to the man on the gun without taking with him either a guard or any Telingas at all. Being arrived near, his troop alighted from their horses, and pulling their caps from their heads they swept the air with them as if to make him a SALLAM; and the salute being returned by Mooshur Lass in the same manner, some parley ensued in their own language—

(सैरुलमुताखरीन, द्वितीय भाग, पृष्ठ १६४)

2 Ironside's Narrative, P. 24.

युद्ध समाप्त होने के बाद ही अंग्रेज-सेनापति ने शाहजादा के पास दूत भेजा था; पटना पर चढ़ाई की बात सुनकर वहाँ भी सेना भेज दी गई।

जो राजदूत बनाकर शाहजादा के पास भेजे गये थे, उनका नाम था महराज शितावराय। यह नाम बंगाल के इतिहास में विख्यात है। विद्या, बुद्धि, साहस तथा रण-शिक्षा में उन्होंने बड़ी ख्याति पाई थी। इसीलिए अंग्रेज-सेनापति ने उन्हें ही कार्य के लिए नियुक्त किया था।

शितावराय शाहजादा को अंग्रेजों के मनोनुकूल संधि के लिए तैयार न कर सके। उन्होंने बहुत समझाया, बहुत अनुरोध किया; बड़ी अनुनय-विनय की; यहाँ तक कि अन्त में मर्माहतकण्ठ से उन्होंने चलते समय कह दिया कि "अंग्रेज जिन-जिन शर्तों पर सन्धि करने की प्रार्थना कर रहे हैं उसे आप आज भले ही स्वीकार न करें किन्तु मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि शीघ्र ही आपको स्वयं अंग्रेजों की शरण लेकर उनसे सन्धि की प्रार्थना करनी पड़ेगी और उस समय इन शर्तों पर अंग्रेज संधि करने के लिए कदाचित् ही प्रस्तुत होंगे।"[१] किंतु इन सब बातों का कुछ फल न हुआ। शाहजादा टस से मस न हुआ।

शितावराय जो कह आये थे, वही हुआ। बहुत ही थोड़े दिनों में शाहजादा का सुख-स्वप्न भंग हो गया। वेतन ठीक समय पर न पाने के कारण सेना बिगड़ने लगी। अंग्रेज तो

[१] *His Majesty would himself shortly seek those terms of pacification, which he now refused, and would not find them; or if he found any at all, they would fall short of these now profered, and not redound so much to His Majesty's honor and advantages.*—(सैरुल्मुताखरीन, द्वितीय भाग, पृष्ठ १६६)

अक्लान्त अध्यवसाय एवं साहस के लिए प्रसिद्ध ही हैं—उनकी सेना गाँव-गाँव में शाहजादा का पीछा करने लगी। अन्त में तंग आकर १८६१ ई० की २९ वीं जनवरी को शाहजादा ने ही संधि की प्रार्थना की और बख्सी फैजुल्लाखाँ को अंग्रेज-शिविर में दूत बनाकर भेजा। अंग्रेज सेनापति मेजर कर्नाक ने उत्तर दिया—"मुझे स्थायी संधि या विग्रह का अधिकार नहीं है। हाँ, यदि शाहजादा कुचक्री कामगारखाँ को छोड़ दें और इसी समय ससैन्य सोन के उसपार चलने को तैयार हों, तो मैं आपका प्रस्ताव कलकत्ता भेज दूँगा।" जान पड़ता है कि शाहजादा को इससे संतोष नहीं हुआ, क्योंकि अंग्रेज-सेना युद्ध से विरत नहीं हुई वरन् दूसरी जनवरी को शाहजादा के पड़ाव के समीप जा पहुँची। विवश होकर शाहजादा को भी सेना सजाने की आज्ञा देनी पड़ी, किन्तु उस समय तक उसकी साध मिट चुकी थी। संधि-स्थापन की आशा से उसने अंग्रेज-शिविर में दूत भेजा, किन्तु अंग्रेज सेनापति ने नहीं माना। उसने शाहजादा की सेना पर आक्रमण कर ही दिया। इसका फल वही हुआ जो होनाथा; शाहजादा को परास्त होकर भागना एवं कामगारखाँ को पद-च्युत करके सन्धि की प्रार्थना के लिए बृटिश शिविर में स्वयं जाने को तैयार होना पड़ा।[1]

गया-धाम के पास ही बादशाही एवं सूबेदारी सेना के शिविरों के बीच १७६१ ई० की ६ वीं फरवरी को भारतवर्ष के मुगल-राज सिंहासन के उत्तराधिकारी शाहजादा शाहआलम और अंग्रेज-वणिक समिति के सेना-नायक मेजर कर्नाक का

1 Broome's Rise and Progress of the Bengal Army, VOL. I. 132.

यह सम्मिलन हुआ। यदि सच पूछिए तो यह भेंट ही भारत में बृटिश शक्ति की दृढ़ स्थापना का मूल सूत्र है। इस मिलन के दूसरे ही दिन शाहजादा ने स्वयं अंग्रेज-शिविर में पदार्पण किया। आदर सत्कार में अंग्रेजों की ओर से कुछ त्रुटि नहीं हुई। उस आदर अभ्यर्थना से संतुष्ट हो कर ८ वीं फरवरी से शाहजादा ने जाकर-ब्रिटिश-शिविर में ही निवास करना शुरू किया। दिल्ली के मुगल सिंहासन के अधिपति का आकर अंग्रेजों का आतिथ्य ग्रहण करने के कारण सारा युद्ध-कलह शान्त हो गया और अंग्रेज-शिविर में सर्वत्र शाहजादा को 'बादशाह' कहकर पुकारने की घोषणा कर दी गई। राजा रामनारायण अतिथि-सत्कार के लिए एक हजार रुपये रोज प्रदान करने लगे।

भारतवर्षीय मुगल-राजसिंहासन के उत्तराधिकारी शाहजादा शाहआलम को वशीभूत करके अंग्रेज सेनापति आनन्द से उत्फुल्ल हो उठा और उसे लेकर बिहार की राजधानी पटना जाने की तैयारी करने लगा। अलेक्ज़ेण्डर च्याम्पियन एवं राजा दुर्लभराम पर सेना का भार छोड़ सेनापति कर्नाक ने शाहजादा के साथ पटना की यात्रा की।

पटना बहुत पुराना नगर है। हिन्दू एवं बौद्ध राजाओं का पाटलिपुत्र मुसलमानों के शासन-काल में भी बिहार का राजकीय केन्द्र था। उस समय भी वहाँ एक छोटा किला तथा परिखा-वेष्टित नगर-प्राचीर दिखाई देता था। नगर के एक ओर भागीरथी की धारा थी तथा तीन तरफ दृढ़ोन्नत प्राचीर था। इस प्राचीर के बाहर थोड़ी दूर पर अंग्रेजों ने एक छोटा बंगला बनवा लिया था। शाहजादा ने बाँकीपुर पहुँचकर डेरा डाला; अंग्रेजों

की छावनी पटना के पश्चिम द्वार के निकट पड़ी। २२ वीं फरवरी को समारोह-पूर्वक शाहज़ादा ने नगर में प्रवेश किया तथा किले में डेरा डाला।

अंग्रेजों के साथ शाहज़ादा का सौहार्द्र दिन-दिन बढ़ने लगा। दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार करना ही शाहज़ादा का प्रधान लक्ष्य था, अतएव अंग्रेजों से सेना की सहायता प्राप्त करने की वह प्रबल चेष्टा करने लगा। अंग्रेजों को समझते देर न लगी कि शाहज़ादा को दिल्ली के सिंहासन पर बिठा देने से हमारे बाहुबल की बात दूर-दूर तक फैल जायगी, किन्तु कलकत्ते के अंग्रेज-दरबार में कलह उपस्थित होने तथा आशानुरूप सेना न रहने के कारण शाहज़ादा की आशा पूरी न हो सकी। उसे आतिथ्य-सत्कार वाले एक हज़ार रुपये दैनिक व्यय पर ही सन्तोष करने को बाध्य होना पड़ा। [१]
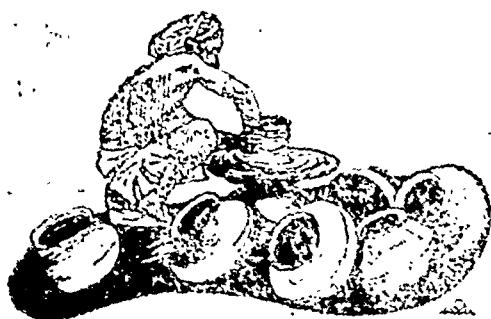
1 The prospect of an advance upon Delhi, and the advantages to be expected from restoring the Monarch to his throne, appear for a moment to have dazzled the Council, and to have been considered as feasible; but it was finally abandoned, partly from a conviction of the want of means and material, [illegible] owing to the dissensions and disputes in Council, in which any plan p[illegible] certain of meeting with opposition from the other,—BROO[illegible] BENGAL ARMY, VOL. I, 329.

मीरक़ासिम का सनद-लाभ

"Lo, the dire tempest gathering from a far,
In dreadful clouds has dimm'd the Imperial star;
Has to the winds, and broad expanse of Heaven,
My state, my royaltty, my kingdom given !
Time was, O king, when clothed in power supreme,
Thy voice was heard, and nations hailed the theme:
Now sad reverse,—for sordid lust of gold,
By traiterous wiles, thy throne and Empire sold !"

—*Shah Alam.*

मुग़ल-साम्राज्य का अभ्युदय जैसे अत्यन्त विस्मय का विषय है, उसके अधःपतन की कहानी भी उसी तरह आश्चर्य-जनक है। उस विषाद-कथा को व्यक्त करने के लिए

अन्तिम मुगल-सम्राट् शाहआलम ने मर्मवेदना के रस में डूबी जो रचना की है, उसके अक्षर-अक्षर को चीरकर आँसुओं की धारा बह निकली है। उसका अंग्रेजी अनुवाद किसी समय शिक्षित लोगों में बहुत प्रचलित था, किन्तु काल-क्रम से मूल एवं अनुवाद दोनों ही दुष्प्राप्य हो उठे हैं।❀

मुगल-शासन चला गया; उसकी ध्वंस-कहानी भी विस्मृति के गर्भ में विलीन होती जा रही है! मुगलों की वीर भुजाओं ने भारतवर्ष में जिस साम्राज्य-स्थापन का आयोजन किया था, उसके सौभाग्य ने एक समय यूरोप को आश्चर्य—चकित कर दिया था। आज यमुनातट-स्थित आगरे का जगद्विख्यात मर्म्मर-मन्दिर (ताजमहल) ही एकमात्र उस अतीत का साक्षी रह गया है। और कहीं थोड़ा-बहुत जो कुछ बचा है, वह भी धीरे-धीरे जरा-जीर्ण होकर लोप होता जा रहा है!

बादशाहों की चरित्रहीनता ही मुगल-साम्राज्य के अधःपतन का कारण कही जाती है; किन्तु सभी बादशाह नितान्त अपदार्थ थे, इतिहास ऐसा नहीं कहता। सच्ची बात तो यह है कि मुगल-साम्राज्य की गठन-प्रणाली में ही उसके ध्वंस का बीज निहित था। बादशाह लोग उस बीज के क्रम-विकास की गति रोक न सके। वे बिलकुल अशिक्षित नहीं थे। अनेक ने विविध विद्याओं से विभूषित होकर विद्वत्समाज में आदर पाया था।

❀ मूल फारसी कविता और उसका अंग्रेजी अनुवाद (जो ऊपर दिया गया है) कैप्टन फ्रैंकलिन विरचित 'शाह आलम' नामक ग्रन्थ में दिया हुआ है, किन्तु इस समय यह ग्रन्थ दुष्प्राप्य है।

शाहआलम भी अपनी शिक्षा, चरित्रबल एवं अभिज्ञता के लिए सज्जन-समाज के श्रद्धाभाजन हुए थे। उस समय भारतवर्ष में जितनी प्रधान भाषायें प्रचलित थीं, उनमें व्युत्पत्तिलाभ करके शाहआलम ने अपने रचना-लालित्य से सुकवि की ख्याति प्राप्त की थी।[१] किंतु उन्हींके समय में मुग़ल-साम्राज्य का गौरव-रवि अस्त-सा हो गया!

तलवार के बल से किसी देश को जीत लेना या राज्य-विस्तार कर लेना कठिन नहीं है, किंतु व्यवस्थित एवं सर्वोपयोगी शासन-प्रणाली से साम्राज्य को सुदृढ़ करना कठिन है। जबतक मुगलों का शासन-गौरव अक्षुण्ण था, तबतक उनकी उत्तरोत्तर उन्नति होती गई किन्तु जिस दिन शासन-गौरव अवसन्न हुआ, उसी दिन से अधःपतन की गति रोकना असंभव हो गया! शाहआलम के जन्म से पहले ही इस अधःपतन के चिन्ह प्रकट हो चुके थे।

किसी खास घटना को लेकर एक दिन में मुगल-साम्राज्य का अधःपतन नहीं हुआ था। औरंगजेब की जीवन-संध्या में अराजकता की जो अग्नि-शिखा प्रज्वलित हो उठी थी, उसीने मुगलों

1 *Shah Alam had improved a very good education by study and reflection; he was a complete master of the languages of the East, and as a writer attained an eminence seldom acquired by persons in his high position.*—CAPTAIN FRANCLIN'S SHAH ALAM. अर्थात अध्ययन और मनन के द्वारा शाहआलम ने बहुत ही उत्तम शिक्षा सम्पादन की थी; पूर्वीय भाषाओं के वह पूर्ण आचार्य थे। कहा जा सकता है कि लेखक की हैसियत से उन्होंने जो प्रतिभा दिखाई थी, वह उनकी परिस्थिति और मर्यादा के लोगों में बहुत कम दीख पड़ती है।

के राजसिंहासन को जलाकर राख कर दिया। औरंगजेब के उत्तराधिकारी उस अग्नि-दाह की तीव्र गति को रोकने में समर्थ न हुए।

मुगल-साम्राज्य के व्यवस्थापक जो अमीर-उमरा थे, उनकी विश्वासघातकता, परस्पर के विवाद एवं स्वार्थपरता से ही मुगलों की गौरव-पताका गिर गई थी। दक्षिण के निजाम एवं अवध के वजीर ने ही स्वाधीन होने की चेष्टा करके बादशाह की शक्ति शिथिल कर डाली थी। उपयुक्त अवसर देख विजयोन्मत्त महाराष्ट्र सेना ने आक्रमण करके मुगल-शासन का छत्र भंग कर दिया। उसके बाद मुगल-शासन की छाया-मात्र रह गई थी; नादिरशाह के आक्रमण में उसका भी अन्त हो गया।

दिल्ली के नाम-सर्वस्व मुगल बादशाह मुहम्मदशाह ने किसी प्रकार सिंहासन हाथ में रखने की चेष्टा की। इसके लिए उन्हें नितान्त अकीर्तिकर सन्धि करके मुगल-साम्राज्य का खोखलापन एवं शोचनीय दुर्बलता दिखानी पड़ी। इस सन्धि के अनुसार अटक नदी के पश्चिम का सारा सम्पन्न देश नादिरशाह के हिस्से में चला गया। लाहौर, गुजरात, मुलतान एवं काबुल इत्यादि जिलों का समस्त राजकर नादिरशाह को मिलने लगा।

इधर यह दशा थी, उधर दक्षिण में महाराष्ट्र नरेश एवं निजाम स्वाधीन हो गये। बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा के सूबेदार ने कर देना बन्द कर दिया तथा अवध के वजीर (सूबेदार) ने स्वतंत्र राज्य का संगठन करना आरंभ कर दिया। दिल्लीश्वर मुहम्मदशाह सब-कुछ खोकर कंगाल गृहस्थ की तरह दुखी शरीरसे बचे-खुचे दिल्ली नगर में किसी तरह अपने दिन बिताने लगे।

नादिरशाह की मृत्यु के पश्चात् मुहम्मदशाह को कुछ दिनों के लिए शान्ति मिली। इस समय उन्होंने पुनः मुगल-साम्राज्य की प्राण-प्रतिष्ठा करने की आशा में पश्चिम भारत में अपनी शासन-शक्ति फैलाने की चेष्टा शुरू की। किन्तु उनके शासन-काल के अन्तिम साल (१७४१ ई०) में पुनः युद्ध की आग जल उठी। अहमदशाह अब्दाली ने शाहंशाह की उपाधि ग्रहण करके भारत में आक्रमण करने की आशा से लाहौर में प्रवेश किया।

इस बार आत्मरक्षा के लिए दिल्लीश्वर सेना-संग्रह करने में प्रवृत्त हुए। निर्वाणोन्मुख दीपशिखा प्रज्वलित हो उठी। शाहजादा अहमदशाह, प्रधान मन्त्री कमरुद्दीन एवं उनके पुत्र महिम्तुलमुल्क सेनापति बनाये गये। इन लोगों की वीरता एवं रणपाण्डित्य से परास्त होकर अब्दाली अपने देश लौट गया। कमरुद्दीन की युद्ध में मृत्यु हुई, अतएव वीरता के पुरस्कार-रूप उनके पुत्र महिम्तुल्मुल्क को लाहोर के सूबेदार के पद पर नियुक्त कर शाहजादा ने दिल्ली की यात्रा की।

पानीपत के समीप पहुँचने पर शाहजादा ने सुना कि पिता की मृत्यु होगई। शीघ्र दिल्ली पहुँचकर उन्होंने तख़्त पर अधिकार किया और सिंहासनासीन होने के साथ ही अपने अनुकूल करने के लिए पात्रों को अच्छे-अच्छे राज्यपदों पर नियुक्त करना आरंभ किया; परन्तु फल, उद्देश्य के प्रतिकूल होगया। जिन मुसलमान अमीर-उमराओं ने स्वार्थान्ध होकर मुगल-साम्राज्य की जड़ें उखाड़नी शुरू की थीं; बादशाह की अनुकम्पा से, बेचारे के अज्ञान में, वे ही लोग प्रधान-प्रधान राजपदों पर नियुक्त होगये।

अवध के मन्सूरअलीखाँ उस समय के उमराओं में सर्व-प्रधान हो उठे थे। 'वज़ीर'-पद पर अभिषिक्त होकर उन्होंने, मन के अनुकूल, अपने अन्तरंग एवं मित्रों को राज-सम्बन्धी प्रधान-प्रधान पदों पर नियुक्त करना आरंभ किया। उनके ही अनुग्रह से ग़ाज़ीउद्दीनखाँ 'मीर-बख्शी' हो गया। वस्तुतः दिल्ली-श्वर की समस्त शासन-क्षमता, धीरे-धीरे, अयोध्या के इन वज़ीर साहब के हाथ में चली गई; बादशाह उनके हाथों के पुतले हो गये।

अन्य अमीर-उमराओं ने मंसूरअली के इस एकाधिपत्य से असन्तुष्ट होकर बादशाह के पास नाना प्रकार की शिकायतें उप-स्थित करने में कोई कमी न की किन्तु रास्ता भी शीघ्र ही बन्द हो गया। अपने विरोधियों की खबर लगते ही मंसूरअली ने बादशाह को चोर-डाकुओं की तरह (उनकी रक्षा के बहाने) निरन्तर पहरेदारों एवं रक्षकों से घिरा हुआ रखकर शिकायतों के सुनने-सुनाने का पथ बन्द कर दिया! जितने प्रधान राजकर्म-चारी थे, सब वजीर के दासानुदास थे; सेनापति तक उनके ही अनुगत थे; ऐसी अवस्था में बादशाह के लिए केवल अपनी आज्ञा के बल पर वजीर को पदच्युत करने का विचार तक करना असंभव था। अतएव अपनी भूल के परिणाम की चिन्ता से व्याकुल हो गुप्त मंत्रणा द्वारा इस घोर-बंधन से मुक्ति पाने के लिए वह षड्यन्त्र में लिप्त हुए। इस तरह, मुगल-साम्राज्य के अधःपतन-काल में प्रबल गृह-कलह का आरंभ हुआ।

मुगल-साम्राज्य में शासन-कौशल की अपेक्षा सेना-बल पर

ही सम्राटों की अधिक आस्था थी। * नियमित सैन्य-बल से प्रजा का शासन करना सहज नहीं है। समय और सुयोग पाते ही किसी प्रबल पुरुष की उत्तेजना से लोग बादशाह की शासन-क्षमता अस्वीकार कर उस नये पुरुष की ओर मिल जाते थे। उक्त वजीर साहब ने भी इसी प्रकार अवध का स्वतंत्र राज्य स्थापित किया था; अतः धन-बल और सैन्य-बल दोनों बलों से बली होकर वह नाम मात्र के बादशाह से अधिक शक्ति-शाली हो उठे थे। वह सहज ही छोड़ने वाले जीव न थे; बाहुबल से सारा षड्यन्त्र चूर्ण करने के लिए उन्होंने युद्ध की घोषणा कर दी। इस युद्ध में मुगलों के शासन का बचा-खुचा गौरव भी नष्ट हो गया!

युद्ध में बादशाह की विजय हुई, किन्तु जय-लाभ करके भी दिल्लीश्वर उसका फल न भोग सके। मंसूर ने भागकर जाट-राज्य में शरण ली। इनतिमाद्दौला को वज़ीर का पद मिला। मंसूरअली को राज-विद्रोह का दण्ड देना तो दूर रहा, घटनाचक्र में फँसकर उसे क्षमा करना पड़ा। इससे गृह-कलह शान्त न होकर और प्रबल हो पड़ा। पहले लिखा जा चुका है कि मंसूरअली के ही अनुग्रह से गाज़ीउद्दीन मीर-बख़्शी हुआ था, उसीने मंसूर-अली को क्षमा करने का विरोध किया। उसके विरोध की बात सुनकर जाट-राजा ने आक्रमण किया। चूँकि गाजीउद्दीन के ही विरोध पर जाटराज ने चढ़ाई की थी, अतएव प्रधान मंत्री ने उसे गोला-बारूद एवं सेना का अधिकार देने से इन्कार कर दिया।

* और इस अस्थिचर्मावशिष्ट बृटिश राज्य में हो, कौन कहे, ऐसा नहीं है?
—अनुवादक।

वीर रमणी की नाईं प्राणपण से आत्मरक्षा की चेष्टा करके भी बेगम अब्दाली की गति रोकने में समर्थ न हो सकी। अब्दाली ने दिल्ली पर अधिकार करके गाजीउद्दीन को पदच्युत किया। आपदाओं से मुक्त होकर दिल्लीश्वर ने इच्छानुसार वजीर नियुक्त करने की क्षमता प्राप्त की। उसने जाट-राज्य पर आक्रमण करनेके लिए ससैन्य दक्षिण की ओर प्रस्थान किया।

बादशाह ने अपने पुत्र अलीगौहर को वज़ीर बनाया। जाट-राज्य को जीत लेना अब्दाली के लिए सहज नहीं हुआ। पद-पद पर गति रुकने के कारण निराश हो उठा। सुयोग देख पदच्युत गाजीउद्दीन ने उसे लालच देना शुरू किया। अब्दाली ने देखा कि उसे पुनः वजीर बना देने पर वह सहायता करेगा अतएव उसने प्रस्ताव मान लिया। अब्दाली के साथ अग्रसर होकर जाट-युद्ध में गाजीउद्दीन ने विजय प्राप्त की। सच पूछिए तो दिल्लीश्वर उस समय अब्दाली के गुलाम मात्र थे अतएव उसकी इच्छानुसार उन्हें गाजीउद्दीन को पुनः वजीर बनाना पड़ा। शाहजादा अली-गौहर भाग गया।

मुगल-साम्राज्य की उस ध्वंसावस्था में पिता के सिंहासन को स्वतंत्र करने की आशा से शाहज़ादा अली गौहर ने महाराष्ट्र-सेना की शरण ली। दिल्लीश्वर के ज्येष्ठ पुत्र का इस प्रकार दिल्लीश्वर के प्रधान शत्रु की ही सहायता लेने के लिए महाराष्ट्र शिविर में आश्रय ग्रहण करना उचित न था। इस कार्य से मुगल शासन तक के उन्मूल होने का उपक्रम हो गया। इसी समय से अली गौहर का नाम भारत के इतिहास में आने लगा। अली गौहर का ही नाम भारतीय इतिहास में शाह आलम के रूप में प्रसिद्ध है।

इस व्यवहार से अपमान अनुभव कर 'मीर बख्शी' ने महाराष्ट्र-सेना की सहायता ली। एक विद्रोही को शान्त करने की इच्छा से दूसरे विद्रोही की शरण लेकर 'मीर-बख्शी' (गाजीउद्दीन) ने मुगल-शक्ति को चूर करने की चेष्टा की। महाराष्ट्र-सेनापति मल्हारराव ससैन्य गाजीउद्दीन से मिल गये। बादशाह एवं वज़ीर ने भी ससैन्य यात्रा की। इसी युद्ध में मुगलों का सर्वनाश हो गया। बादशाह दिल्ली के क़िले में कैद हो गये। विजायोन्मत्त गाजीउद्दीन ने उन्हें गद्दी से उतारकर तैमूरवंशीय आज़िमुद्दीन नामक एक राजकुमार को सिंहासन पर बिठाया। अहमदशाह की दोनों आँखें निकाल ली गईं! १७५५ ई० नवम्बर मास में दिल्लीश्वर ने अपने ही एक गुलाम के प्राधान्य और निरीक्षण में सिंहासन पर पदार्पण किया।

गाजीउद्दीन की कृपा से सिंहासन पाने पर भी उसके समान अकृतज्ञ नराधम की बातों पर बादशाह कभी विश्वास न कर सके। वह मनमें गाजीउद्दीन को पदच्युत करने का उपाय ढूँढने लगे।

इस प्रकार घोर अराजक अवस्था में पड़कर बाहुबल से मुगल-शासन को पुनः स्थापित करने का कोई उपाय ढूँढने में असमर्थ हो पात्रों एवं मित्रों ने अहमदशाह अब्दाली को पुनः भारतवर्ष में आने को निमंत्रित किया! स्वयं दिल्लीश्वर तक ने इस आमंत्रण-कार्य में योग दिया। महिम्नुलमुल्क के अभाव में उनकी बेगम लाहौर का शासन-कार्य कर रही थी। व्यूह-द्वार पर रमणी एवं व्यूह के अन्दर कलह का आवास! ऐसी असहाय अवस्था में दिल्ली का सिंहासन देखकर अब्दाली आक्रमण के प्रस्ताव को कैसे अस्वीकार कर सकता था?

वीर रमणी की नाईं प्राणपण से आत्मरक्षा की चेष्टा करके भी बेगम अब्दाली की गति रोकने में समर्थ न हो सकी। अब्दाली ने दिल्ली पर अधिकार करके गाजीउद्दीन को पदच्युत किया। आपदाओं से मुक्त होकर दिल्लीश्वर ने इच्छानुसार वजीर नियुक्त करने की क्षमता प्राप्त की। उसने जाट-राज्य पर आक्रमण करनेके लिए ससैन्य दक्षिण की ओर प्रस्थान किया..

बादशाह ने अपने पुत्र अलीगौहर को वज़ीर बनाया। जाट-राज्य को जीत लेना अब्दाली के लिए सहज नहीं हुआ। पद-पद पर गति रुकने के कारण निराश हो उठा। सुयोग देख पदच्युत गाजीउद्दीन ने उसे लालच देना शुरू किया। अब्दाली ने देखा कि उसे पुनः वजीर बना देने पर वह सहायता करेगा अतएव उसने प्रस्ताव मान लिया। अब्दाली के साथ अग्रसर होकर जाट-युद्ध में गाजीउद्दीन ने विजय प्राप्त की। सच पूछिए तो दिल्लीश्वर उस समय अब्दाली के गुलाम मात्र थे अतएव उसकी इच्छानुसार उन्हें गाजीउद्दीन को पुनः वजीर बनाना पड़ा। शाहजादा अली-गौहर भाग गया।

मुगल-साम्राज्य की उस ध्वंसावस्था में पिता के सिंहासन को स्वतंत्र करने की आशा से शाहजादा अली गौहर ने महाराष्ट्र-सेना की शरण ली। दिल्लीश्वर के ज्येष्ठ पुत्र का इस प्रकार दिल्लीश्वर के प्रधान शत्रु की ही सहायता लेने के लिए महाराष्ट्र शिविर में आश्रय ग्रहण करना उचित न था। इस कार्य से मुगल शासन तक के उन्मूल होने का उपक्रम हो गया। इसी समय से अली गौहर का नाम भारत के इतिहास में आने लगा। अली गौहर का ही नाम भारतीय इतिहास में शाह आलम के रूप में प्रसिद्ध है।

मीर कासिम जिस समय बंगाल-बिहार एवं उड़ीसा में मुगल-शासन स्थापित करने के लिए जी-जान से चेष्टा करने में लगे थे, उसी समय दिल्ली के सिंहासन को उसके पूर्व गौरव पर प्रतिष्ठित करने की आशा में शाहज़ादा शाहआलम (कभी महाराष्ट्र सेना, कभी अयोध्या के वजीर और कभी अंग्रेजों की सहायता प्राप्त करने के लिए) इधर-उधर भटक रहा था।

एक समय वह था, जब मुगल बादशाहों के प्रबल प्रताप से दूर-दूर के राजा एवं बादशाह काँपते रहते थे और इस समय मुगल बादशाह के अधःपतन काल में सभी अधीन कर्मचारी स्वेच्छाचारी होकर अपने-अपने स्वार्थ की रक्षा के लिए लालायित होने लगे। शाहज़ादा को हाथ में रखने पर, उसके नाम की दुहाई देकर स्वार्थ-रक्षा में सुविधा होगी, यह सोचकर कितने ही शक्ति-शाली पुरुष उसकी सहायता की प्रतिज्ञा करते जा रहे थे। अंग्रेजों को भी इसका पता चल गया था। 'चपट'-चूड़ामणि कर्नल क्लाइव ने सबसे पहले इस रास्ते पर पैर बढ़ाने की आशा से विलायत पत्र भेजा था। इसमें सन्देह नहीं कि यदि क्लाइव का परामर्श स्वीकृत हो जाता तो बहुत पहले ही दीवानी प्राप्त कर बंगाल-विहार एवं उड़ीसा पर अंग्रेज अपना शासन फैला सकते थे किन्तु क्लाइव की बात पर किसी के ध्यान न देने के ही कारण मीरकासिम को अपने राज्य को स्वाधीन करने का अवसर मिल गया।

अंग्रेज इतिहास-लेखक फ्रैंकलिन ने अपने 'शाह आलम' नामक ग्रंथ में लिखा है:—" It would appear, however, that this Prince's disposition and capacity has been imperfectly understood by his contemporaries." अर्थात्

"सम-सामयिक लोग शाहज़ादा शाहआलम की मति-गति एवं शक्ति-सामर्थ्य को भली-भाँति समझ न सके थे।" दूसरों की बात तो हम नहीं कह सकते किन्तु मीरक़ासिम के विषय में इस उक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता।

मीरक़ासिम—जैसे चतुर, मानव-चरित के ज्ञाता, कर्म-कुशल नरपति को समझते देर न लगी कि अंग्रेज़ों की सहायता से सिंहासन लाभ करना ही शाहज़ादा का एक मात्र उद्देश्य है। इससे मीरक़ासिम सुखी न हो सके। वह जानते थे कि सामयिक स्वार्थ-साधन के लिए शाहज़ादा बिना सोचे-समझे ही, जिसकी शरण में मन होता है, चले जाते हैं। शाहज़ादा की इस अस्थिर नीति के ही कारण अहमदशाह अब्दाली, मरहठा सेनापति तथा मुसलमान उमरा उसे अपने हाथों की पुतली बनाकर नचाते आये थे। शाहआलम पर अंग्रेज़ों का जादू चल जाने के पश्चात् स्वाधीन राज्य का संस्थापन करना सहज नहीं रह जायगा, इसे सोचकर मीरक़ासिम विचलित हो उठे।

इस प्रकार विचलित होने के कारणों का भी अभाव नहीं था। पटना में पदार्पण करने के बाद शाहआलम, अंग्रेज़ों को 'बंगाल-विहार एवं उड़ीसा' की 'दीवानी' का सनद देने को उत्सुक हो उठे थे। अंग्रेज़ों को पुरस्कार-रूप में 'दीवानी-सनद' देकर उनकी सेना की सहायता से दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार करना ही उनका उद्देश्य था। अंग्रेज़ों की ओर से टालमटोल होने के कारण उस समय यह बात कार्य-रूप में परिणत न की जा सकी किन्तु मीरक़ासिम ने सोचा कि आगे चलकर एक दिन यह कार्य-रूप में न परिणत होगी, इसका क्या निश्चय है? उस

दिन मेरे स्वाधीन सिंहासन का क्या परिणाम होगा ? उस दिन स्वाधीन राज्य की स्थापना के मेरे गुप्त संकल्प की क्या दशा होगी ? इन प्रश्नों का उत्तर सोचकर वह सिहर उठे।

बाहु-बल से बंग-विहार एवं उड़ीसा में स्वाधीन राज्य स्थापित करके विदेशी वणिक-सम्प्रदाय को पैरों तले रखकर अपना अधिकार बढ़ाने के लिए ही मीरक़ासिम चुपचाप चेष्टा कर रहे थे किन्तु दुर्भाग्य-वश घटनाओं का रुख़ दूसरी ओर पलट गया;—अंग्रेजों के साथ शाहज़ादा का बन्धु-भाव स्थापित हुआ। अब शाहआलम की शरण में जाकर उनसे सनद प्राप्त करने के अतिरिक्त मीरक़ासिम के लिए दूसरा कोई मार्ग शेष न रहा; इससे आत्माभिमानी मीरक़ासिम के मस्तक पर आकाश फट पड़ा। तथापि चुपचाप माथा झुकाकर उन्हें यह सर्वनाश देखना पड़ा!

मीरक़ासिम बर्दवान और वीरभूमि के ज़िलों में शान्ति स्थापित करने के उद्देश्य से ससैन्य शिविर डाले हुए थे किन्तु अकस्मात् वज्रपात का लक्षण देख वहीं से उन्हें पटना की यात्रा करनी पड़ी। १७६१ ई० की पहली मार्च को पटना के निकट बैकुण्ठपुर में पहुँचकर उन्होंने छावनी डाल दी।

अंग्रेज सेनापति मेजर कर्नाक के साथ मीरक़ासिम का कलह शुरू हुआ।[1] असल बात तो यह थी कि नवाब के इस अकस्मात् आगमन से अंग्रेज़ों के स्वार्थ को धक्का पहुँचा और शाहज़ादा के साथ उनकी जो स्वार्थ-मय बंधुता बढ़ रही थी, उसका मार्ग बन्द हो गया। बातचीत में आत्माभिमानी नवाब ने पहले सेना-संचा-

[1] On arrival, he was visited by Major Carnac, and long series of discussions and disputes, which followed, appear to have commenced at the first interview.—BROOME'S BENGAL ARMY, VOL. I. P. 331

लन का अधिकार स्वयं लेने का ज़िक्र किया; फिर शाहआलम का पटना क्यों लाया गया, इस विषय पर वाद-विवाद हुआ। अन्त में एकमात्र जो पथ बचा था, उसी पर मीरक़ासिम को अग्रसर होना पड़ा। अंग्रेजों को राजनैतिक चालों में मात करने तथा अपने उद्देश्य-साधन की बची-खुची आशा की पूर्ति के लिए एक-बार प्रयत्न कर देखने के उद्देश्य से उन्हें आत्माभिमान को दबा-कर वह राह ग्रहण करनी पड़ी;—नितान्त अनिच्छा से शाहआ-लम-द्वारा खिलअत ग्रहण करने का प्रस्ताव उन्होंने स्वीकार कर लिया।

यह कार्य सहज ही सम्पन्न नहीं हुआ। मीरक़ासिम ने शक्ति-भर टालमटोल करने में कमी नहीं की; मेजर कर्नाक ने भी नवाब के अभिमान पर चुपचाप आघात करने में कमी नहीं की। अन्त में, १२ वीं मार्च को पटना की अंग्रेज-कोठी में शाहज़ादा और मीरक़ासिम की भेंट हुई।

इतिहास-लेखक सैयद ग़ुलाम हुसेन ने इस दरबार का बड़ा सुन्दर विवरण लिखा है।* उसके विवरण से मालूम होता है कि अंग्रेज़ों के पास जो कुछ दरिद्र सामग्री थी, उसके द्वारा उन्होंने स्वागत का अनुष्ठान करने में कमी नहीं की; सिंहासन के अभाव में दो 'टिफ़िन टेबुल' (भोजन करने का टेबुल) एक में लगाकर उन्होंने उसपर सुन्दर लाल बानात बिछा दी एवं फर्श को गलीचों से मण्डित करके जो कुछ साज-सज्जा करनी थी, पूरी कर दी। बाहर अंग्रेज-सेना कतार बाँधकर खड़ी हुई। शाहज़ादा के तोरण-

* देखिए 'सैरुल मुताख़रीन', भाग १, पृष्ठ १७०, १७२।

द्वार पर उतरने के साथही सेना ने सलामी दी और अंग्रेज़-सेना नायकों ने हाथों-हाथ उन्हें लाकर सिंहासन पर बिठा दिया। सिंहासन पर बैठते ही दरबार आरंभ हुआ। अंग्रेज़ सेनापतियों ने 'नज़र' देकर तथा यथा-रीति 'कोरनिश' बजा लाकर दरबार की मर्यादा की रक्षा की। एक घण्टा बाद मीरक़ासिम आये। उन्हें भी 'नज़र' देनी पड़ी। शाहज़ादा ने उन्हें सिंहासन परही स्थान देकर आदर-सत्कार किया। पीछे शाही ख़िलअत देने के बाद बंगाल-बिहार एवं उड़ीसा की सूबेदारी पर उन्हें अभिषिक्त किया। चौबीस लाख रुपये वार्षिक राजकर देने की प्रतिज्ञा करके मीरक़ासिम ने सूबेदारी ग्रहण की। यथा-समय दरबार भंग हुआ।

इस दरबार से किसी की आशा पूरी नहीं हुई। मीरक़ासिम का सिर नीचे झुका। शाहआलम को भी मस्तक झुकाना पड़ा। मीरक़ासिम को अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। दिल्ली के सिंहासन पर बिठाने के लिए सैनिक सहायता देने में अंग्रेज़ों की सम्मति न होने के कारण, थोड़े ही दिनों बाद शाहआलम ने टूटे हुए दिल से पटना से प्रस्थान किया।

पटना के दरबार की बातें आज इतिहास के जीर्ण-दफ़्तर में चुपचाप कीड़ों का पेट भर रही हैं किन्तु याद रखना चाहिए कि इस दरबार से ही अंग्रेज़ों की शक्ति देश में विशेष रूपसे फैली। भारत में जहाँ-जहाँ यह समाचार फैला, वहाँ के लोगों ने मनमें सोचा कि इस समय अंग्रेज़ बनियों की इच्छानुसार बंगाल-बिहार एवं उड़ीसा के नवाब ही नहीं वरन् भारतवर्ष के अधीश्वर (?) तक चलने को बाध्य हो रहे हैं!

इच्छा करने पर अंग्रेज लोग, अनायास ही बंगाल-बिहार एवं उड़ीसा की दीवानी की सनद ग्रहण करके मीरक़ासिम को अपमानित कर सकते थे। उन लोगों के ऐसा न करने के कारण, उनकी प्रशंसा करनी तो दूर रही वरन् कोई-कोई तो लिख गये हैं—"हाथ में आये हुए दीवानी-सनद को इस प्रकार छोड़ देना उचित नहीं हुआ!"

द्वार पर उतरने के साथही सेना ने सलामी दी और अंग्रेज-सेना नायकों ने हाथों-हाथ उन्हें लाकर सिंहासन पर बिठा दिया। सिंहासन पर बैठते ही दरबार आरंभ हुआ। अंग्रेज़ सेनापतियों ने 'नज़र' देकर तथा यथा-रीति 'कोरनिश' बजा लाकर दरबार की मर्यादा की रक्षा की। एक घण्टा बाद मीरक़ासिम आये। उन्हें भी 'नज़र' देनी पड़ी। शाहज़ादा ने उन्हें सिंहासन परही स्थान देकर आदर-सत्कार किया। पीछे शाही ख़िलअत देने के बाद बंगाल-बिहार एवं उड़ीसा की सूबेदारी पर उन्हें अभिषिक्त किया। चौबीस लाख रुपये वार्षिक राजकर देने की प्रतिज्ञा करके मीरक़ासिम ने सूबेदारी ग्रहण की। यथा-समय दरबार भंग हुआ।

इस दरबार से किसी की आशा पूरी नहीं हुई। मीरक़ासिम का सिर नीचे झुका। शाहआलम को भी मस्तक झुकाना पड़ा। मीरक़ासिम को अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। दिल्ली के सिंहासन पर बिठाने के लिए सैनिक सहायता देने में अंग्रेज़ों की सम्मति न होने के कारण, थोड़े ही दिनों बाद शाहआलम ने टूटे हुए दिल से पटना से प्रस्थान किया।

पटना के दरबार की बातें आज इतिहास के जीर्ण-दफ़्तर में चुपचाप कीड़ों का पेट भर रही हैं किन्तु याद रखना चाहिए कि इस दरबार से ही अंग्रेज़ों की शक्ति देश में विशेष रूपसे फैली। भारत में जहाँ-जहाँ यह समाचार फैला, वहाँ के लोगों ने मनमें सोचा कि इस समय अंग्रेज बनियों की इच्छानुसार बंगाल-बिहार एवं उड़ीसा के नवाब ही नहीं वरन् भारतवर्ष के अधीश्वर (?) तक चलने को बाध्य हो रहे हैं!

इच्छा करने पर अंग्रेज़ लोग, अनायास ही बंगाल-बिहार एवं उड़ीसा की दीवानी की सनद ग्रहण करके मीरक़ासिम को अपमानित कर सकते थे। उन लोगों के ऐसा न करने के कारण, उनकी प्रशंसा करनी तो दूर रही वरन् कोई-कोई तो लिख गये हैं—"हाथ में आये हुए दीवानी-सनद को इस प्रकार छोड़ देना उचित नहीं हुआ!"

राज्य-शासन

"At the close of 1762 he had not only paid off all the debts of the State, but his revenue-returns showed an excess of income over expenditure."

—Col. Malleson.

अर्थात् "१७६२ ई० के अन्त तक उन्होंने केवल, सब कर्ज़ ही नहीं चुका दिये वरन् मालगुज़ारी के हिसाब से यह भी मालूम हो गया कि ख़र्च की अपेक्षा आमदनी में बहुत वृद्धि हुई है।"

मीरक़ासिम का विचित्र इतिहास अनेक युद्ध-कहानियों से परिपूर्ण है, इसीलिए किसी इतिहास में भी उनके सम्बन्ध में भली-भाँति ऐतिहासिक विवेचन नहीं दिखाई पड़ता। उन्होंने बहुत थोड़े दिनों में सारा ऋण अदा करके

ख़जाने में रुपये जमा कर दिये थे। इस घटना से बहुत लोग सोचते हैं कि प्रजा-पीड़न के अतिरिक्त अर्थ-संचय में उन्होंने दूसरे और किस उपाय का अवलंबन किया होगा? इन बातों पर प्रकाश डालने के लिए मीरक़ासिम की शासन-व्यवस्था पर यथा-साध्य प्रकाश डालना आवश्यक है।

हम जिस समय की बात लिख रहे हैं, उस समय भारतवर्ष में, अर्थोपार्जन के लिए नाना देशों के नाना प्रकार के आदमी आये थे तथा नित्य आते ही रहते थे। वसुन्धरा धन-धान्य से पूर्ण थी; भारतीय शिल्पकार अनेक प्रकार के शिल्प-द्रव्यों के निर्माण में निपुण थे; देश अराजक था;—इन सब कारणों से बाणिज्य तथा सामरिक व्यापार में प्रवेश करके रातोरात बड़ा आदमी हो जाने की सभी के मन में आकांक्षा तथा संभावना रहती थी। यूरोपियन लोगों में कोई-कोई बाणिज्य तथा कोई-कोई सामरिक व्यापार से अर्थोपार्जन करने का अवसर ढूँढ़ते थे। शेष श्रेणी के यूरोपियनों में से कितने ही मीरक़ासिम की नौकरी करके उनके सेना-सम्बन्धी विभाग में स्थान पा जाते थे।

इस प्रकार जिन विदेशी वीर पुरुषों ने मीरक़ासिम की सेना में प्रवेश किया था, उनमें से कोई-कोई इस देश के इतिहास में चिरस्मरणीय हो गये हैं। समरू, गुर्गीन एवं मार्कर के नाम लोग आज भी भूले नहीं हैं। ये लोग अंग्रेजों का दलन करने के लिए सदैव मीरक़ासिम को उत्साहित किया करते थे।[*]

[*] मीर क़ासिम के इन सब कार्यों की पर्य्यालोचना करके लब्ध-प्रतिष्ठ इतिहास-लेखक म्यालिसन ने लिखा है—

"These Preparations, his movement to Mounger, his repairing and strengthening

अंग्रेजों की सहायता से ही सिंहासन पाकर उनके प्रति इतना अविश्वास करने का क्या कारण था? यह क्या मीरक़ासिम की नितान्त अव्यवस्थित-चित्तता का लक्षण नहीं है? अंग्रेज बाहुबल से राज्य-संस्थापन के लिए व्याकुल नहीं थे; उन्होंने शाहज़ादा द्वारा मिलती हुई दीवानी को अस्वीकार कर दिया; शाहज़ादा-उन्हें इसके लिए राज़ी न कर सके, ऐसी अवस्था में अंग्रेजों पर सन्देह करने का क्या कारण था?

इन प्रश्नों की व्याख्या राजनीतिज्ञ मीरक़ासिम ने भली प्रकार कर ली थी। अंग्रेज इस पतनोन्मुख मुग़लराज्य का शासन-भार ग्रहण करने के लिए लालायित नहीं हैं और नहीं हैं तो क्यों नहीं हैं?, इन समस्याओं को मीरक़ासिम सहज ही समझ सके थे; किन्तु इनके साथ ही उन्होंने सबसे बड़ी यह बात भी हृदयंगम की थी कि 'अंग्रेज सौदागर लोग इस देश का धन-धान्य प्रकारान्तर से हथियाने की आशा से जो स्वाधीन वाणिज्य फैलाते जा रहे हैं, उसमें बाधा न डालने से देश नहीं बच सकेगा और बाधा डालने की चेष्टा करते ही लड़ाई झगड़े आरंभ होंगे।' अंग्रेज सौदागरों के स्वाधीन वाणिज्य में हस्तक्षेप करने की भावना को मन में स्थान न देने पर निस्संदेह उस समय मीरक़ासिम को विशेष आयोजन न करना पड़ता; किन्तु एक स्वदेशभक्त, आत्माभिमानी

of the fortifications of that place, the reform of his revenue system, had been inspired by one motive-distrust of English.--Decisive Battles of India, P. 144.

अर्थात् ये सब तैयारियाँ, उनका मुँगेर जाना, वहाँ के क़िलों एवं चहारदीवारियों की मरम्मत कर उन्हें मज़बूत करना, मालगुज़ारी के क़ायदों में सुधार करना इत्यादि—केवल अंग्रेज़ों के प्रति अविश्वास के ही कारण की गई थीं।

वीर-नरेश जान-बूझकर कैसे आँखें मूँद लेता ? जिसने सबल के उत्पीड़न से दुर्बल की रक्षा करने के लिए ज़मींदारों को बार-बार दण्ड देने में कभी हिचकिचाहट नहीं दिखाई, वह अवश्यम्भावी हाहाकार की उपेक्षा करके कायर देश-द्रोहियों की भाँति चुपचाप स्वदेश के वाणिज्य-व्यवसाय का सर्वनाश कैसे देख सकता था ? इसीलिए—न्याय तथा राजधर्म की रक्षा तथा स्वदेश के प्रति कर्तव्य-पालन के लिए—सब-कुछ जान-बूझकर भी मीरक़ासिम ने आग में हाथ डाला था। कर्तव्य एवं आत्मगौरव-हीन राजकीय भोग-विलास में उन्हें कर्त्तव्य ही अधिक मूल्यवान् समझ पड़ा। फल चाहे जो हुआ हो, परन्तु इतना तो निस्संकोच कहा जा सकता है कि मीरक़ासिम ने जो-कुछ किया, उसके अतिरिक्त दूसरी बात एक स्वाभिमानी नीति कुशल नरपति कर ही नहीं सकता था। यही उनके सर्वनाश का मूल कारण तथा इस देश में बृटिश राज्य की स्थापना का ऐतिहासिक सूत्र हुआ। मीरक़ासिम के अंग्रेजों के साथ लड़ाई-झगड़ा न करने से उतनी जल्दी बंगाल से मुग़ल-राज्य नष्ट न होता किंतु उस अवस्था में अंग्रेज बनियों तथा मुग़ल नवाब दोनों ही के द्वारा देश और भी अधिक पीड़ित होता; उसे और भी अधिक दुहा जाता; वह और भी अधिक लूटा-खसोटा जाता।

दुनिया का क़ायदा है कि वह फ़ायदे के लोभ से सहज ही अन्धी हो जाती है। उस समय के अंग्रेज सौदागर भी अपने स्वार्थ के लिए अन्धे हो गये थे। यह देश उनका नहीं है अथवा इसपर उनका अधिकार नहीं है, इसे जान-बूझकर वे एकदम भूल गये थे। वे यहाँ असहाय विदेशी बनियों की तरह आये थे

पर इस देश की असीम धनराशि देखकर उनकी तृष्णा बढ़ती जाती थी और वे मतवाले हो उठे थे। उनके अत्याचारों से प्रजा पीड़ित तथा पग-पग पर अपमानित होकर त्राहि-त्राहि कर रही थी; किन्तु उसकी पुकार अरण्य-रोदन की भाँति आस-पास के वातावरण में विलीन होकर रह जाती थी।

अंग्रेज सौदागर प्रजा पर जो अत्याचार करते थे, उनकी भीषणता का वर्णन करने के लिए यह ग्रन्थ यथेष्ट नहीं है, और न वैसा मौक़ा ही है पर इतना याद रखना चाहिए कि दुर्बल प्रजा उन अत्याचारों को मूक पशु के समान चुपचाप सहन कर रही थी; मुसलमान व हिन्दू फ़ौजदार उनके वेदनाजन्य नीरव आँसुओं के प्रतीकार का कोई उपाय न कर सकते थे। प्रजा का कलेजा हिला देने वाली पुकार तथा करुण हाहाकार को नित्य सुनते-सुनते मीरक़ासिम के नाकों दम आ गया; उनका हृदय प्रजा के असीम दुःख से क्षुब्ध, अधीर तथा उन्मत्त हो उठा। फ़ायदे के लालच से अंग्रेज़ अन्धे हो गये थे। राजधर्म की रक्षा, प्रजापालन तथा दुष्ट-दलन में अपनी असमर्थता का अनुभव कर आत्मग्लानि से मीरक़ासिम भी अन्धे हो उठे।

'सैरुब मुताख़रीन' नामक सुप्रसिद्ध फ़ारसी इतिहास के लेखक सैयद ग़ुलामहुसेन ने मीरक़ासिम की प्रशंसा के लिए अपने इतिहास की रचना नहीं की थी, किन्तु उन्हें भी सत्य के अनुरोध से लिखना पड़ा—"जिन्हें ऐतिहासिक दृष्टि से मनुष्य के कार्यों की घटनावली लिपिबद्ध करने की इच्छा होगी, वे सच्ची बातें लिखने के लिए बाध्य होंगे। मैंने मीरक़ासिम की अनेक ग़लतियों

तथा बुराइयों का उल्लेख किया है, अतः उनके गुणों तथा सत्कीर्तियों का उल्लेख करना भी हमारा कर्तव्य है। बंगीय सेनानायकों एवं सिपाहियों की प्रभुभक्ति में अविश्वास होते ही अनेक समय सामान्य कारण के लिए उन्हें प्राणदण्ड देने में भी वह हिचकते नहीं थे, किन्तु दीवानी व फौजदारी मामलों, सेनादल एवं दरबार के शासन-कार्य तथा परिष्कृत-समाज की मर्यादा-रक्षा इत्यादि के सम्बन्ध में वह जैसे सुन्दर न्याय के दृष्टान्त इतिहास में पेश कर गये हैं, उन्हें देखकर उनको उस समय का आदर्श नरपति कहने में भी कोई अत्युक्ति नहीं हो सकती। वह सप्ताह में दो बार स्वयं नियमानुसार विचारासन पर बैठते थे। उस समय निम्नपदस्थ विचारकों के विचार-कार्य की पर्यालोचना करते थे तथा स्वयं वादी, प्रतिवादी एवं गवाहों की बातें तथा वादानुवाद सुनकर दोषों का निर्णय करते थे। न्याय की मर्यादा बचाने के लिए वह सदैव प्रयत्नशील रहते थे और कोई गंभीर मुकदमा स्वयं छानबीन किये बिना नहीं जाने देते थे। (आजकल की भाँति) उनके शासन तथा विचार में कोई राजकर्मचारी 'हाँ' को 'ना' नहीं कर सकता था। (इस दूषित प्रणाली से प्रजा की रक्षा करने लिए ही नीचे की अदालतों से फ़ैसला हो चुकने पर वह स्वयं 'केस' की जाँच करते थे तथा किसी कर्मचारी पर ज़रा भी शुबहा होते ही उसे उचित दण्ड देते थे; इसीलिए अदालत के अमले बेईमानी में अनभ्यस्त हो गये थे) जमींदारों के अत्याचारों से दुर्बल कृषकों तथा प्रजा की रक्षा करना उनका विशेष प्रिय कार्य था। सिराजुद्दौला ने रुपयों को पानी की तरह बहाकर जो इमामबाड़ा बनवाया था, उसकी सारी शृंगार एवं

सजावट की बहुमूल्य चीजें वेचकर उन्होंने ग़रीबों को बटवा दिया था।" ❀

संकल्प-साधन के लिए मीरक़ासिम ने नाना उपायों से अर्थ-संचय किया था। उस अर्थ के द्वारा अन्य नवाबों की भाँति भोग-विलास का पथ ग्रहण न करके वह शक्ति-संस्थपान के लिए आयोजन करने लगे—मुंगेर के पुराने क़िले की मरम्मत करके वहीं राजधानी स्थापित की; कर्म-कुशल देशी शिल्पकार नियुक्त करके गोलियाँ, गोले, बारूद, बन्दूकें तथा अन्यान्य युद्ध-सामग्री बनवाने लगे एवं यूरोपीय प्रणाली से सेना की शिक्षा का इन्तज़ाम करके सामरिक शक्ति-संचय की सुव्यवस्था में लग गये।

उस समय भारतीयों में बाहुबल का अभाव नहीं था, किन्तु यूरोपीय प्रणाली के समर-कौशल का ज्ञान बहुत कम लोगों को था। मीरजाफ़र के सिंहासनारोहण के कुछ दिन बाद सेनापति क्लाइव ने उन्हें सदल-बल निमंत्रित करके यूरोपीय समर-कौशल का दर्शन कराया था। अंग्रेज सैनिकों की त्वरित गति, उनके अपूर्व अस्त्र-चालन कौशल, उनकी अद्भुत रण-शिक्षा देखकर विस्मित-विमुग्ध हो मीरजाफ़र ने मीरक़ासिम से कहा था—"यूरोपीय समर-कौशल सर्वथा अनुकरणीय है। दूर से तो इन पर आक्रमण करना ही असंभव है, निकट होने पर एक बार देखा जायगा!" उसी समय से यह बात मीरक़ासिम के हृदय में घर कर गई थी। समय पाकर वह बाहुबल के साथ यूरोपीय समर-कौशल से अपने सैनिकों को दीक्षित करने का आयोजन करने लगे।

❀ *Scot, Vol. II. P. 411.*

अंग्रेज व्यापारियों द्वारा प्रजा पर होने वाले घोर अत्याचारों के तीव्र प्रतिवाद का कुछ फल न हुआ; कलकत्ते के अंग्रेज दरबार में सकरुण आवेदन-निवेदन का भी कोई नतीजा न हुआ—हेस्टिंग्स एवं गवर्नर वान्सिटर्ट के अतिरिक्त अंग्रेज मात्र, जिस उपाय से हो सके उसी से, अर्थोपार्जन के लिए व्याकुल थे। भले-बुरे की मीमांसा करना उन्हें पसन्द नहीं था, अतः दूसरा कोई उपाय न देख, 'बाहुबल से स्वदेश के व्यापार की रक्षा करूँगा' यह सोच कर मीरक़ासिम इन सामरिक अनुष्ठानों में लिप्त हुए थे। दूसरा कोई मार्ग भी तो नहीं था?
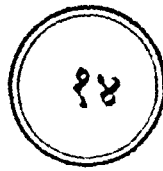
उद्योग-पर्व

"The ravenous hordes, thus let loose on India made the race name of Christian (Firingi) a word of terror—until the strong rule of the Moghul Empire turned it into one of contempt."

—Sir W. Hunter.

यूरोपीय लोग जिस समय 'केप ऑव गुड होप' (उत्तमाशा अन्तरीप) पार करके भारतवर्ष में आये थे, उस समय भारतीयों ने प्रतिष्ठित वणिक के ही रूप में उनका आदर-सत्कार तथा स्वागत किया था किन्तु थोड़े ही दिनों बाद जल-दस्यु रूप में सर्वत्र भय उत्पन्न करके उन्होंने अपना सम्मान खो दिया

और तभी से वे 'फिरंगी' नाम से पुकारे जाने लगे। यह नाम भारतवासियों का सम्मान न प्राप्त कर सकता था। लोग फिरंगी से भय करते थे, घृणा करते थे, श्रद्धा नहीं करते थे। भारत में प्रवेश करके अपने अत्याचारों के कारण अंग्रेज भी शीघ्र ही फिरंगी उपाधि से विभूषित हुए १ किन्तु उनके बाहुबल और समर-कौशल के कारण लोग खुल्लम-खुल्ला उनकी अवज्ञा नहीं करते थे, वरन् बहुतेरे लोग विपत्ति में उनकी शरण लेते थे। 'नेटिव' (देसी) कहने से जैसे भारतवासी-मात्र अपमान बोध करते थे (और अब भी करते हैं) उसी प्रकार फिरंगी कहते ही अंग्रेजों की भौहें ऊपर चढ़ जाती थीं। किन्तु मीरक़ासिम के समय में मुसलमान लोग अंग्रेज़ों के लिए आमतौर पर फिरंगी शब्द ही प्रयोग करते थे;२ हाँ, यह अवश्य था कि दूसरे प्रकार के फिरंगियों की अपेक्षा वे कुछ सभ्य अथवा उच्च श्रेणी के समझे जाते थे।

मीरक़ासिम ये बातें जानते थे। उनसे यह बात छिपी न थी कि सैनिक शिक्षा सम्बन्धी अंग्रेज़ों की उत्कृष्ट प्रणाली ही उनके बाहुबल का मूल कारण है। उस समय अंग्रेजों और भारतवासियों, विशेषतः बंगालियों को निरपेक्ष होकर एक दूसरे के गुण-दोष पर विचार करने की फुरसत न थी। अंग्रेज़ छोटी-छोटी व्यक्तिगत बातों के लिए समस्त बंगालियों तथा कभी-कभी भारतीयों

1. In india it is a Positive affront to call an Englishman a Firingi."
Colebrooke's Life of Elphinstone, Vol. II. P. 207.

२. उर्दू भाषा में तो अंग्रेज़ों के लिए 'फिरंगी' या 'फिरंग' शब्द का आम तौर से प्रयोग होता है। अब यह शब्द पुराने भावों से प्रेरित होकर प्रयुक्त नहीं किया जाता। —अनुवादक

पर लांछन लगाया करते थे; इसी तरह बंगाली व भारतीय भी अंग्रेज-जाति की निन्दा करने से नहीं चूकते थे। इन बातों को यहाँ प्रमाण देकर सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु यह याद रखना चाहिए कि उस समय के इतिहास का अध्ययन करने में तत्कालिक-भ्रमपूर्ण संस्कारों को एकदम छोड़ देने का कोई उपाय नहीं है। सर्व-साधारण अंग्रेजों से डरते थे; उनका हृदय से आदर व भक्ति नहीं करते थे।[1] लोग अंग्रेजों के बाहुबल एवं समर-कौशल की प्रशंसा करने पर धर्म-नीति की श्रेष्ठता स्वीकार नहीं करते थे। कोई अंग्रेजों के चरित्र का अनुकरण करना अच्छा न समझता था, करता भी नहीं था। वरन् अंग्रेजों ने ही आहार-विहारादि में भारतीयों का अनुकरण करना आरंभ कर दिया था। वे अलबेले पर तम्बाकू पीते, मध्यान्ह-भोजन के बाद सोने का अभ्यास करते, कभी-कभी डोली या पालकी पर चढ़ते तथा पैदल चलने पर छत्रधर द्वारा छाता लगवाकर चलते थे। ऐसे ही समय मीरक़ासिम ने अंग्रेजों के समर-कौशल का अनुकरण करने का संकल्प किया।

जिन उपायों का अवलम्बन कर अंग्रेज सेना ने विस्तृत वीर-कीर्ति प्राप्त की है, उन्हीं उपायों से क्या इस देश के लोग अंग्रेजों

1 अब भी अनेकांश में वही बात है। अंग्रेज़ों की लम्बी-चौड़ी सजी हुई सेना को परेड करते या कहीं जाते देखकर साधारण लोगों के हृदय में दहशत भले ही हो, पर अंग्रेज़ों के प्रति व अंग्रेज़ी शासन-प्रणाली के प्रति उनकी श्रद्धा नहीं होती। भारत में अंग्रेज़ों का सारा शासन 'भय दिखाकर राज्य करने की नीति' पर ही अवलम्बित है, इसीलिए अंग्रेज़ी शासन की जड़ें लोगों के हृदयों में घर नहीं कर सकी हैं। —अनुवादक

के समान रण-निपुण नहीं बनाये जा सकते ? इसी चिन्ता ने मीरक़ासिम के मस्तिष्क पर अधिकार कर लिया था। उनके पहले किसी भारतीय राजा या नवाब ने इस बात पर भली भाँति विचार कर देखा था, इसका प्रमाण नहीं मिलता। मीरक़ासिम संकल्प-साधन के लिए अग्रसर हुए। इसी चेष्टा के कारण इतिहास-प्रिय स्वदेशभक्त भारतीयों के हृदय से उनकी स्मृति अब भी विलुप्त नहीं हो सकी है। उन्होंने, सबसे पहले, इस देश के लोगों को समर-कौशल में अंग्रेजों का समकक्ष बनाने का आयोजन किया था। उनका वह आयोजन सर्वांश में सफल होने पर उन्हें एकदम सिंहासन दे देने के लिए अंग्रेजों को अनुतप्त होना पड़ता।

मीरक़ासिम के जन्म-ग्रहण के दो सौ वर्ष पहले फिरंगियों ने ही इस देश के लोगों को यूरोपीय प्रणाली से समर-शिक्षा देने का आरंभ किया था। उस समय यूरोप से अधिकाधिक-संख्या में सुशिक्षित सैनिक लाने की सुविधा नहीं थी, अतएव पोर्च्युगीज़ों ने बाध्य होकर इसी देश के आदमियों को यूरोपीय प्रणाली से शिक्षा देना शुरू किया था। पोर्च्युगीज़ों की देखा-देखी फ्रांसीसियों और अंग्रेजों ने भी 'सिपाही पल्टन' का संगठन किया था। क्लाइव की देशी 'लाल पल्टन' ने अपनी वीरता के लिए देश में बड़ा नाम पाया था। उपयुक्त शिक्षक पाकर इस देश के लोगों ने अंग्रेजों के लिए गोरी सेना के ही सामने अनेक स्थानों पर अपने समर-कौशल का परिचय दिया है, यह बात मीरक़ासिम से छिपी न थी। उपयुक्त शिक्षा पाने के बाद इस देश के सैनिकों द्वारा अंग्रेजों की सारी शक्ति आसानी से विध्वंस की जा सकती

है, यह सोचकर ही मीरक़ासिम ने इस गुरुतर कार्य में हाथ डाला था।

मुग़ल-सेना में साहस और वीरता की कमी नहीं थी। यह ठीक है कि उसे कई बार अपने से बहुत छोटी यूरोपीय सेना के सामने हारना पड़ा था, पर इसका कारण वीरता या बाहुबल का अभाव नहीं था। सैनिक शिक्षा-प्रणाली के ही दोष से वह कई बार परास्त हुई थी। सैनिकों को समय पर उपयुक्त वेतन नहीं मिलता था; बेचारे उपयुक्त अस्त्र-शस्त्र एवं परिच्छद न पाते थे; उपयुक्त नायकों द्वारा परिचलित भी न होते थे। मनसबदार लोग ही अपने पदगौरव के अनुसार सेनापति हुआ करते थे: सेनापति के गुरुतरकार्य तथा सेना-संचालन के संबंध में उन्हें विशेष ज्ञान नहीं होता था। समग्र सेना भेड़ियाधसान की नाईं एक ही दल में गिनी जाती थी। उनकी योग्यता, विशेष शिक्षा वा सैनिक आवश्यकता के अनुसार टुकड़ियाँ नहीं होती थीं। समरक्षेत्र में बहुसंख्यक सेना एकत्र होकर एकमात्र सेनापति के इशारों से परिचालित होती थी। इसीलिए वह परिष्कृत यूरोपीय युद्ध-प्रणाली के सामने हार जाया करती थी। मीरक़ासिम ने इन कारणों पर बार-बार ध्यान दिया था, बार-बार सोचा-समझा और विचारा था, इसीलिए इन असुविधाओं को दूर करके अंग्रेज-सेना की तरह मुग़ल-सेना को नये ढंग से संगठित करने को अग्रसर हुए। इसके लिए उन्हें अस्त्र-शस्त्र बनाने तथा सेना को यूरोपीय समर-कौशल से शिक्षित करने की व्यवस्था करनी पड़ी। मुँगेर का क़िला इस नवीन संस्कार का केन्द्र बन गया।

शिक्षक का अभाव नहीं हुआ। संकल्प-साधन में मीरक़ासिम

की एकाग्रता थी। वह अनन्यकर्मा होकर संकल्प-साधन का आयोजन करने लगे। अस्त्र-शस्त्र बनाने के लिए कारख़ाना खुल गया। यूरोपीय शिक्षकों के निरीक्षण में इस देश के लोगों ने शीघ्र ही तोप एवं बन्दूक़ बनाने में दक्षता प्राप्त की। उस समय तोपों में पलीता लगाना पड़ता था; बन्दूक़ छोड़ने के समय चकमक पत्थर से आग पैदा करनी पड़ती थी। बन्दूक़ों की नलियों को आग की गरमी सहने योग्य बनाने के लिए उत्कृष्ट लोहे की आवश्यकता हुआ करती थी। मीरक़ासिम के उत्साह ने ये सारी कठिनाइयाँ दूर करदीं। राजमहल का चकमक और छोटा नागपुर का लोहा शीघ्र विख्यात हो उठा। बहुत दिनों बाद इन सब बन्दूक़ों की परीक्षा करके अंग्रेजों ने कहा था कि 'कम्पनी की बन्दूक़ों की अपेक्षा ये बन्दूक़ें सब तरह से अच्छी हैं।' उस समय तोपों का पीतल गलाकर ढलाई करने की प्रथा चलाकर मीरक़ासिम ने एक नई कीर्ति कमाई थी। अंग्रेजों को कितने ही स्वाधीन यूरोपियन व्यापारी उस समय बाहर से बन्दूक़ें, तोप एवं गोले-गोलियाँ मँगाकर बेचा करते थे। मीरक़ासिम के अस्त्रागार में ख़रीद-ख़रीद कर ये सब चीज़ें भी भरी जाने लगीं। इस प्रकार मीरक़ासिम ने जो अस्त्र-शस्त्र संग्रह किये थे, उस समय के हिसाब से अंग्रेजों के अस्त्र-शस्त्र से वे किसी अंश में निकृष्ट नहीं थे वरन् अनेकांश में उनसे अच्छे ही थे।*

* अंग्रेज़-लेखक 'ब्रूम' अपनी पुस्तक *(Bengal Army)* के २५१ पृष्ठ में लिखते हैं—*"The muskets with which they were armed were manufactured in the country, and from trials subsequently made between them and the Tower-Proof arms of the Company's troops, the reader will be surprised to learn, that they were found to be superior to English Manufacture, Particularly in the barrels, the metal of which was of*

जिन लोगों ने मीरक़ासिम की सेना को सुशिक्षित करने का भार ग्रहण किया था, उनमें से बहुत ही कम का विवरण इतिहास में मिलता है। कलकत्ते के आर्मीनियन व्यापारियों में उस समय ख्वाजा पिन्टू नामक एक व्यक्ति की बड़ी प्रसिद्धि थी। उसका अंग्रेजों एवं नवाब दोनों में ही सम्मान था। उसके भाई ग्रेगरी को मीरक़ासिम ने प्रधान सेनापति बनाया था। ग्रेगरी इस देश के इतिहास में साधरणतः गुरगिनख़ाँ के नाम से परिचित हैं। बंगला उपन्यास में स्थान प्राप्त कर वह आज बंगाल के बहुतेरे शिक्षित पाठकों में परिचित हैं।† उपन्यास में उनका नाम गुर्गनखाँ है। उन्होंने सेना के सारे विभागों का कार्य हाथ में लिया था। उन्हीं की चेष्टा से ख्वाजा पिंटू को मिलाकर मीरक़ासिम गुप्त रूप से यूरोपीय अस्त्र-शस्त्र संग्रह करने में समर्थ हुए थे। अनेक कारणों से मीरक़ासिम के दरबार में गुर्गनख़ाँ का प्रधान स्थान

an admirable description; the flints were also of a very excellent quality, composed of agates found in the Rajmahal Hills, and were much Preffered to those imported.'
अर्थात्, "जिन बन्दूक़ों से वे (मीरक़ासिम के सैनिक) सज्जित हुए थे, वे देश ही में बनाई गई थीं और यह सुनकर पाठक आश्चर्य करेंगे कि कम्पनी की सेनाओं की प्रसिद्ध बन्दूक़ों के साथ जब उनकी तुलना की गई तो वे इंग्लैण्ड की बनी बन्दूक़ों से भी अच्छी साबित हुईं। उनकी नलियाँ (जिनकी धातु प्रशंसनीय थी) तो ख़ास तौर से बहुत बढ़-चढ़कर थी। कारतूस भी उच्च श्रेणी के थे, जो राजमहल की पहाड़ियों से निकले हुए चकमक पत्थरों के संयोग से तैयार किये गये थे और इंग्लैण्ड से आने वाले कारतूसों की अपेक्षा अधिक पसन्द किये गये थे।"

† बंकिम बाबू ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'चन्द्रशेखर' में 'गुर्गं-ख़ाँ' का चरित्र चित्रित किया है। —अनुवादक

हो उठा था। उनके कारण अनेक आर्मीनियन सैनिकों ने नवाब की सेना में प्रवेश किया था; अब समय के प्रवाह में उनकी कथा विलुप्त हो गई है।

गुर्गनखाँ विश्वासी एवं प्रभु-भक्त के रूप में ही नवाब-दरबार में प्रसिद्ध थे। जिस समय मीरक़ासिम अशान्त हृदय से अंग्रेज़ों का दलन करने के लिए व्याकुल हो उठते, उस समय वह उन्हें शान्त कर कहते, 'अभी समय नहीं आया है!'* यह अरमानी सेनापति अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के लिए प्रसिद्ध थे। उन्होंने नवाब की सेना को तीन श्रेणियों में विभक्त किया; एक में अश्वारोही रक्खे गये, दूसरी में गोलंदाज़ एवं तीसरी में पैदल। फिर पैदल सेना के भी नजीब एवं तिलंगा नामक दो भाग किये। तिलंगी सेना ठीक कम्पनी की सेना की नाईं सजाई गई। अश्वारोही सेना, मुग़ल सेनानायकों के अधीन रक्खी गई; पैदल तथा गोलन्दाज़ श्रेणी का भार अर्मीनियन, जर्मन, पोर्च्युगीज़ एवं फरांसीसी अफसरों ने ग्रहण किया।

गुर्गनखाँ के अधीन मार्कर नामक एक अर्मीनियन सेनानायक ने उस समय विशेष ख्याति पाई थी। मर्कर के अधीन तीनों श्रेणी की सेना थोड़े ही समय में सुशिक्षित हो गई। प्रत्येक श्रेणी की पल्टन से कुछ चुने हुए सैनिकों को एकत्र करके उन्होंने एक

* "Bear and forbear: you are not yet fledged; reserve your anger till the time when you shall have feathers to yours wings," अर्थात् "शान्त हूजिए, धैर्य धारण कीजिए; अभी तक आप परदार (उचित सामग्रियों से संयुक्त) नहीं हुए हैं। अपना क्रोध तब तक के लिए रोके रहिए जब तक कि आपके डैनों में पर न आ जायँ।" —सैर मुताख़रीन, द्वितीय भाग, पृष्ठ १८६

विशेष दल का संगठन किया। मार्कर ने यूरोप में युद्ध-विद्या की शिक्षा पाई थी एवं हालैण्ड के युद्ध में रह कर विशेष अभिज्ञता एवं अनुभव प्राप्त किया था। उनकी विद्या-बुद्धि एव समर-कौशल की बात आज भी बंगवासियों के स्मृति-पट से नष्ट नहीं हुई है।

मीरक़ासिम के सेनानायकों में से सेनापति समरू का नाम इतिहास में भली-भाँति विख्यात है। वह यूरोप में कसाईखाने के एक कर्मचारी थे; वहाँ से स्विस सेनादल के साथ भारत में प्रवेश करके फ्रांसीसियों के अधीन सेना का भार ग्रहण किया था। भारत के इतिहास में वह अंग्रेजों के चिरशत्रु के रूप में ही आते हैं। वह राक्षस के समान क्रूर थे। प्रभु की आज्ञा प्राप्त होने पर हित-अहित का विचार नहीं करते थे। उनका असल नाम था 'वाल्टर रेण्ड'।

गद्दी पर बैठने के पहले मीरक़ासिम सेनानायक का कार्य करके ही जीविका उपार्जन करते थे, अतएव सामरिक बातों के सम्बन्ध में जानकारी का उन्हें अभाव नहीं था; तथापि सिंहासन पाने के बाद स्वयं उसका भार उन्होंने विश्वासी सेना-नायकों पर ही छोड़ दिया, इसीलिए अंग्रेज इतिहास-लेखकों में से कोई-कोई उन्हें रणभीरु तक लिख गये हैं।

मीरक़ासिम के सेना-नायक साहस, वीरता और समर-कौशल में अंग्रेज सेना-नायकों के बराबर हो गये थे। उन लोगों पर ही निर्भर करके मीरक़ासिम ने अंग्रेजों से वैर मोल लेने का विचार किया था। वह जानते थे कि स्वदेश के वाणिज्य की रक्षा के लिए अंग्रेजों के उच्छृंखल व्यवहार का दमन करने की चेष्टा करते ही युद्ध का सामना करना होगा। इसीलिए युद्धार्थ

प्रस्तुत होने के पूर्व चुपचाप उन्होंने अनेक लाञ्छनायें सहन की थीं।

मीरक़ासिम के गुप्त सेना-संग्रह की बात अंग्रेजों को अज्ञात नहीं थी। उन्होंने भी बाहुबल से बाहुबल को दबाने के लिए उचित आयोजन करने में त्रुटि न की। विवाद के कारणों का अभाव नहीं था। दरबार में मीरक़ासिम को नित्य ही अंग्रेज़ गुमाश्तों की अत्याचार-कहानी सुननी पड़ती थी। अपनी प्रजा का असीम कष्ट तथा विदेशी बनियों की मनमानी लूट देखकर वह क्रोध से काँप उठते किन्तु समय आया न जान चुपचाप सह लेते थे। बालक सिराज ने हृदयावेग से अधीर होकर असमय ही कलहानल में आत्म-विसर्जन किया था। प्रवीण मीरक़ासिम को वह बात भूली न थी, अतएव उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा में वह अपने हृदयावेग को रोकने के लिए बाध्य हुए थे।

अस्त्र-शस्त्रादि के एकत्र एवं सेना के सुशिक्षित हो जाने के बाद मीरक़ासिम ने बेतिया राज्य जय किया और वहाँ से नेपाल की ओर युद्ध-यात्रा की। तात्कालिक मोरंग नामक नेपाल की तराई-प्रदेश को लेकर सदैव लड़ाई-झगड़े लगे रहते थे। तिब्बत के यात्रियों से नेपाल के प्रवेश-पथ का पता लगाकर पहाड़ों को लाँघते, दुर्गमपथ को तय करते तथा अनेकानेक कठिनाइयाँ झेलते हुए मीरक़ासिम ने नैपाल-राज्य पर आक्रमण किया। यूरोपीय प्रणाली से सुशिक्षित नवाब की सेना ने नैपाल के सुविख्यात वीर सैनिकों को सम्मुख युद्ध में परास्त कर दिया, किन्तु विपक्षी दल ने मैदान छोड़कर पहाड़ियों में छिप-छिपकर डाकुओं की भाँति आक्रमण करना शुरू किया। रास्तों की अनभिज्ञता के कारण

तथा सम्मुख युद्ध में विपत्तियों को जुटते न देख भग्न-मनोरथ हो नवाब स्वदेश को लौट आये। गुर्गनखाँ के सेना-कौशल से नवाब की सेना सम्मुख युद्ध में दुर्दमनीय हो गई है, यह बात चारों ओर फैल गई।

सेना को नये ढंग से शिक्षित और संगठित करने के लिए मीरक़ासिम ने मुक्तहस्त होकर धन व्यय किया था। उनकी सेना भी नेपाल-युद्ध में अपनी शक्ति का परिचय प्राप्त कर यूरोपीय रण-कौशल का माहात्म्य अनुभव करने में समर्थ हुई थी।

इस समय बंगाल की अवस्था सब तरह अच्छी हो चली थी। राजकोष में धन का अभाव नहीं था; सेना सुशिक्षित हो गई थी; शिल्प एवं वाणिज्य में दूर-दूर के देशों तक ख्याति प्राप्त कर देशवासी व्यापार बढ़ाने का सुयोग प्राप्त कर रहे थे। मीरक़ासिम के न्याय-विचार से अराजकता दूर हो गई थी और चारों ओर सुविचार की प्रतिष्ठा हो रही थी; किन्तु पाठक सुनकर आश्चर्य करेंगे कि इसी समय बंगवासियों का हाहाकार बढ़ने और प्रबल होकर नवाब के कानों तक नित्य पहुँचने लगा।

स्वदेश-वासियों के लिए वाणिज्य-व्यापार से धन कमाना असम्भव हो उठा। आढ़तों में जो चीज़ें लाकर रक्खी जातीं, उन्हें अंग्रेज़ ही हड़प कर जाते। वे अपने हाथ कम मूल्य पर बेचने के लिए लोगों को बाध्य करते थे। थोड़े दाम में चीज़ें ख़रीद कर तिगुने-चौगुने दाम में उन्हें बेच अपने घर भरने के लिए वे भारत-वासियों का सर्वनाश करने को तैयार हो गये। कम्पनी के वाणिज्य से इस देश की विशेष क्षति न होती थी, क्योंकि कम्पनी यहाँ से चीज़ें ख़रीदकर विलायत में बेचती थी, किन्तु कम्पनी की

देखा-देखी, लालच से अन्धे हो कम्पनी के कर्मचारी भी अपना अलग-अलग (व्यक्तिगत) व्यापार आरम्भ कर देशी व्यापारियों का सर्वनाश करने लगे। फ़ायदा इतना अधिक होता था कि सभी अंग्रेज़ इस देश के लोगों की रोटी पर हाथ साफ़ करने को तुल गये; कम्पनी की ओर पूरा ध्यान न देकर सब अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए अन्धे होकर अत्याचार करने लगे। नवाब के कर्मचारी उनके अत्याचार का प्रतीकार करने में समर्थ नहीं हुए। अंग्रेज़ बनियों ने धन के लोभ से उन्मत्त होकर नवाब का शासन-क्षमता अस्वीकार करने में भी कमी न की। वांसिटर्ट ने इन बातों को रोकने की बहुत चेष्टा की, पर वह भी सफल न हुए। 'दोष किसका था?' इस प्रश्न की निरपेक्ष भाव से मीमांसा करने पर अंग्रेज़ों को भी स्वीकार करना पड़ा है कि नवाब का कुछ अपराध नहीं; अंग्रेज़ ही अपराधी हैं।
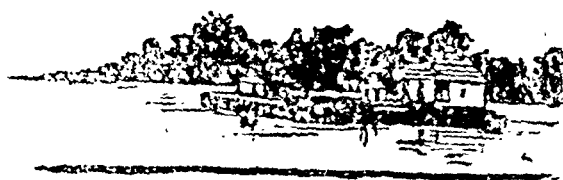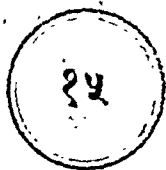
बन्धु-विच्छेद

Mir Kasim was a man of a stamp different, to that of his father-in-law. The pliant disposition which had caused the latter to bend on every decisive occasion to the will of his European masters did not belong to his nature.

—*Col. Malleson.**

अंग्रेज़ मीरजाफ़र को इच्छानुसार चलाते थे; अंग्रेज़ों के साथ मत-भेद या झगड़े की ज़रा भी संभावना उपस्थित होते ही मीरजाफ़र अंग्रेज़ों के हाथ में आत्म-समर्पण कर

* अर्थात्, "मीरक़ासिम अपने ससुर (मीरजाफ़र) के गठन से भिन्न स्वभाव के आदमी थे। मीरजाफ़र की सहज ही प्रभावित हो जाने वाली कमज़ोर प्रकृति—जिसने हर निर्णयात्मक अवसर पर उन्हें अपने

दिया करते थे। बुद्धि, औचित्य एवं स्वाधीनता को बेचकर वह सदैव अंग्रेज़ों की कृपा ख़रीदा करते थे। मीरक़ासिम को उस तरह इच्छानुसार घुमाने की संभावना नहीं थी। उनका चरित्र स्वतंत्र उपादानों से गठित हुआ था, अतः बन्धु-विच्छेद का अवसर उपस्थित होने में विलम्ब नहीं हुआ।

दोष किसका है, इस प्रश्न की स्वतंत्र रूप से आलोचना न करके ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख कर देने से ही सब-कुछ स्पष्ट हो जायगा। अंग्रेज़ों के साथ कलह करके ही मीरक़ासिम सिंहासन त्याग करने को बाध्य हुए थे; किन्तु अंग्रेज़ों के साथ कलह क्यों उपस्थित हुआ, इसके मूल कारण का अन्वेषण करते ही आश्चर्य-चकित होना पड़ता है।

यह देश—बंगाल-बिहार-उड़ीसा—उस समय मुसलमानों के अधीन था। देश के निवासियों के सुख-दुःख के साथ देश के नवाब का सम्बन्ध था। स्वदेशवासियों की रोटी पर अंग्रेज़ों को हाथ साफ़ करते तथा देश के वाणिज्य-व्यवसाय को लूटते देख मीरक़ासिम को बाध्य होकर प्रजा-रक्षा के लिए तलवार हाथ में लेनी पड़ी थी; राज-धर्म की रक्षा के लिए चेष्टा करनी पड़ी थी। इस चेष्टा में ही देश के दुर्भाग्य से उन्हें सिंहासन-च्युत होना पड़ा।

पीछे लिखा जा चुका है कि कम्पनी के कर्मचारी, रातों-रात बड़ा आदमी बन जाने की आशा से वाणिज्य-कर्म में प्रवृत्त हुए थे। कम्पनी से थोड़ा-बहुत जो वेतन मिलता था उससे शान-शौक़त के साथ रहने का काम नहीं चलता था—अभाव बना ही रहता

यूरोपीय (अंग्रेज़ों से अभिप्राय है) प्रभुओं के सामने झुकने को बाध्य किया था—उनके हिस्से में न पड़ी थी।" —कर्नल मैलीसन

था, अतः अर्थोपार्जन के लिए भी उन्हें अन्य उपायों का सहारा लेना पड़ता था। देश के वाणिज्य में लाभ का पूछना ही क्या था? धन के उस आकर्षण से उन्मत्त होकर उन्होंने जिन उपायों का अवलम्बन किया था, उनसे देशी वाणिज्य का सर्वनाश हो जाने पर देशवासियों की क्या दशा होगी, स्वार्थ की प्रबल ताड़ना से अन्धे कर्मचारी इसका विचार नहीं करते थे। वे विलायत को चीजें भेजकर तो व्यापार कर नहीं सकते थे (क्योंकि उसका एकमात्र अधिकार कम्पनी को ही था), अतएव देश में ही जल और स्थल-पथ से व्यापार करके देश का धन लूटते थे। (पिछले नवाब की सरकार ने कम्पनी के व्यापार पर चुंगी माफ़ कर दी थी। कम्पनी ने नवाब का आज्ञापत्र छपाकर उसकी एक प्रति अपने कर्मचारियों को बाँट दी थी। कर्मचारियों को आज्ञापत्र की प्रतियाँ इसलिए दी गई थीं कि कम्पनी के माल के सम्बन्ध में रोक-थाम होने वा आवश्यकता पड़ने पर आसानी के साथ जाँच हो सके) किन्तु कर्मचारीगण, कम्पनी की मोहर से युक्त यह 'दस्तक' नामक अनुमति-पत्र दिखाकर अपना ख़ास माल भी निःशुल्क ले जाने लगे।* अंग्रेज़ों के इस विश्वासघात, बेईमानी और नीचत पूर्ण व्यवहार से राजकोष की तो हानि होती ही थी; शुल्क देकर व्याणिज्य करने के कारण देशी व्यापारियों को भी कम्पनी के कर्मचारियों की प्रतियोगिता में घाटा उठाकर हारना पड़ता था। इस प्रकार देश का व्यापार उजड़ रहा था।

गवर्नर वांसिटर्ट तथा सदस्य वारेन हेस्टिंग्स के अतिरिक्त

* कोष्टक के वाक्य विषय को सुस्पष्ट बनाने के लिये अनुवादक ने ऐतिहासिक आधार पर सम्मिलित कर दिये हैं।

सारे अंग्रेज़ कम्पनी के कर्मचारियों के इस उच्छृंखल वाणिज्य के पक्षपाती थे। उससे सभी को लाभ होता था। लाभ वा धन के लोभ से कर्त्तव्यबुद्धि लुप्त हो गई थी। विलायत के डाइरेक्टर बार-बार निषेध करके भी कर्मचारियों की इस प्रवृत्ति को रोकने में समर्थ न होते थे। इस अनुचित वाणिज्य के अत्याचार से पीड़ित देशी व्यापारियों के आर्त्तनाद एवं हाहाकार से नवाब का दरबार हिल उठा। यह कहा जा सकता है कि मीरक़ासिम इस अत्याचार-जनित हाहाकार पर ध्यान न देते तो शायद इतनी जल्दी बंधु-विच्छेद की नौबत न आती; किन्तु याद रखना चाहिए कि देश का शासन-भार ग्रहण करने के कारण वह समाज और परमेश्वर के निकट कर्त्तव्य-पालन के लिए जिम्मेदार थे, अतएव इस ओर से मुँह कैसे मोड़ सकते थे? देश की शत-शत प्रजाओं के हाहाकार और पीड़ा-जनित आर्त्तनाद की उपेक्षा वह नहीं कर सके, यही उनका अपराध है। इसीसे बंधु-विच्छेद का अवसर उपस्थित हुआ।

अंग्रेज़-'बन्धुओं' के अन्याय-उत्पीड़न से प्रजा की रक्षा करने के लिए मीरक़ासिम कम्पनी के लाभ-मार्ग को अवरुद्ध करने की चेष्टा करने वाले हैं, इस बात का आभास प्राप्त कर कम्पनी के कर्मचारियों ने कलह उपस्थित किया। मीरक़ासिम बाहुबल से अंग्रेज़ कर्मचारियों का अत्याचार-उत्पीड़न दूर कर सकते थे; वह इच्छा करने पर अत्याचारियों को राज-दण्ड से दण्डित कर सकते थे; फिर भी उन्होंने कम्पनी को शिकायत करने का मौक़ा न देने के लिए अंग्रेज़-दरबार में ही निवेदन किया, उसीकी शरण ली। अभियोग के मूल-रूप तथा कारणों

का अनुसन्धान करने के लिए वारेन हेस्टिंग्स को नियुक्त कर गवर्नर वांसिटर्ट ने मीरक़ासिम को शान्त किया। हेस्टिंग्स ने अनेक स्थानों पर घूम-फिरकर जो विवरण लिखा, उससे नवाब की शिकायत तथा कम्पनी के कर्मचारियों के अत्याचार की कोई बात छिपी न रही—उसे अस्वीकार करने का कोई उपाय नहीं रह गया।[1]

ढाका के अंग्रेजों ने सिलहट में अपने सिपाही भेजकर वहाँ के एक प्रतिष्ठित अधिवासी का ख़ून कर डाला था और ज़मींदार को बल-पूर्वक क़ैद कर ले गये थे।[2] जो लोग इन नीच कर्मचारियों के गुप्त, अवैध एवं अनुचित वाणिज्य की पोल खोलने वा उसे रोकने की कुछ चेष्टा करते थे, उन्हें कम्पनी के कर्मचारी फ़ौज भेजकर इसी प्रकार पीड़ित वा शासित करते थे।

नवाब के कर्मचारी इन अत्याचारों को रोकने में समर्थ नहीं होते थे। ज़मींदार लोग आतंक से सिहर उठे; निरीह प्रजा अंग्रेज़-गुमाश्तों के अत्याचार तथा भय से गाँव छोड़-छोड़कर भागने लगी। ये सब बातें विलायत के कर्ता-धर्ता लोगों (बोर्ड ऑव् डाइरेक्टर्स) के कानों तक पहुँचीं। वहाँ से पत्र आया—"हम लोग साफ़ शब्दों में आदेश करते हैं कि हमारी अधीनता में नियुक्त रहने की इच्छा हो तो पत्र पढ़ने के साथ ही नवाब को सूचित करो कि 'हम लोग इन अत्याचारों का पक्ष-समर्थन नहीं करते हैं।' निर्लज्ज और अनुचित भाव से दस्तकों का दुरुपयोग

1. *PROCEEDINGS OF COUNCIL October 14, 1762.*

2. *Mr. Vansittart has received private intelligence that a party of Sepoys were sent to Sylhet by the gentlemen (?) at Dacca on account of some private dispute, who fired upon and killed one of the principal people of the place and afterwards made the Zamindar prisoner and forcibly carried him away.—IBID.*

करके नवाब की चुंगी नष्ट करने एवं उनकी मर्यादा अस्वीकार करने की हमें ज़रा भी इच्छा नहीं है और हम ऐसे प्रत्येक कार्य को अनुचित एवं अवैध समझते हैं।' "१

विलायत के डाइरेक्टरों का यह साधु-संकल्प विफल हो गया। अंग्रेजों का अत्याचार अक्षुण्ण रहकर प्रजा का सर्वनाश करता ही रहा। डाइरेक्टरों की आज्ञा का कर्मचारियों पर कुछ प्रभाव न पड़ा। पड़ता कैसे? वे तो स्वार्थ के लिए अन्धे हो रहे थे। अपना अपराध ढकने के लिए उन्होंने नवाब के नाम निराधार अभियोगों की सृष्टि करने में भी त्रुटि न की। उपाय न देख प्रजा की रक्षा के लिए बाध्य होकर मीरक़ासिम को अंग्रेज़ गुमाश्तों का 'मुचलका' लेने की आज्ञा देनी पड़ी। सिराजुद्दौला ने 'मुचलका' लेने की चेष्टा में अपना सर्वनाश किया था। पुनः वही चेष्टा करने पर फिर सर्वनाश हो सकता है, इसे सोच-समझ और जानकर भी मीरक़ासिम कर्त्तव्य-पालन से विमुख न हुए।

उस ज़माने में राजशाही की ज़मींदारी ही सब ज़मींदारियों से श्रेष्ठ तथा बड़ी समझी जाती थी। बंगाल का बहुत-सा हिस्सा इस ज़मींदारी के भीतर था। प्रतःस्मरणीया रानी भवानी के शासन-कौशल से राजशाही अपने शिल्प-वाणिज्य के लिए जगद्विख्यात हो उठा था। अंग्रेज़ लोग भारतवर्ष से जो द्रव्य विलायत भेजते थे, उसका अधिकांश राजशाही-प्रदेश में ही उत्पन्न

१ पत्र के मूल वाक्य ये हैं—

'We positively direct, as you value our service, that you do immediatly acquaint the Nabab, in the Company's name, that we disapprove of every measure which has been taken in real prejudice to his authority and government, particularly with respect to the wronging in his revenues by a shameful abuse of DUSTICKS.--COURT'S LETTER, DECEMBER 30, 1762.

होता था। गुमाश्तों के अत्याचार एवं कम्पनी के कर्मचारियों की स्वार्थान्ध प्रकृति से इस प्रदेश का शिल्प और वाणिज्य नष्ट होने लगा। मीरक़ासिम के अंग्रेज़ गुमाश्तों का 'मुचलका' लेने का आदेश करने पर, गवर्नर वांसिटर्ट ने ठीक हालत की जाँच के लिए गंगाराम मित्र नामक एक सुयोग्य व्यक्ति को राजशाही भेजा।[१]

1 *I am acquainted that Mr. Chevalier, Mr. Texeira, and sundry English gomastas, without either dustak or order from the Huzoor, do in the Perganna of Rajshahy and other Districts in the Zamindary of Rani Bhabany, oppressively stop and embark goods and force people to buy, by which the inhabitants are obliged to fly the country and the King's revenues are greatly prejudiced. I therefore send you with some Burkandazes. You must, on your arrival at the said Pergannah, prevent those people who have raised such disturbances, who, if they mind you it will be well, if not whatever oppressions they have been guilty of, you must make yourself fully acquainted with, and send me an authentic account of the same and agreeably thereto I shall take account of their oppressive proceedings, and punish them.--PROCEEDINGS, January 17, 1763.*

अर्थात्, "मुझे मालूम हुआ है कि मि० चिवेलियर, टेकज़िरा तथा अंग्रेज़ गुमाश्तों के अन्य कितने ही दल हुज़ूर (नवाब) से आज्ञापत्र वा दस्तक लिए बिना ही राजशाही तथा रानी भवानी की ज़मींदारी के अन्य प्रदेशों की रैयतों एवं व्यापारियों की चीज़ें रोकते तथा उन्हें अपने हाथ बेचने एवं अपनी चीज़ें ख़रीदने को बाध्य करते हैं, उनके साथ ज़बर्दस्ती करते हैं, जिसकी वजह से वहाँ के निवासी गाँव छोड़कर भागने को बाध्य हो रहे हैं और बादशाह (नवाब-सरकार) की मालगुज़ारी तथा आमदनी को बड़ी क्षति पहुँच रही है। इसकी जाँच के लिए मैं आपको कुछ बर्कन्दाज़ों के साथ वहाँ भेजता हूँ। वहाँ पहुँचकर आप, उन लोगों को, जिनके कारण ये सब अत्याचार हो रहे हैं, रोकिए। यदि वे आपका कहा मानलें वा आपकी आज्ञा पालन करें तो ठीक है; वर्ना उनके सारे अत्याचारों, दोषों एवं अभियोगों का, जिनके लिए वे दण्डनीय हों, पता लगाकर मेरे पास सच्चा विवरण लिख भेजिए, ताकि मैं उनके विरुद्ध कार्रवाई करके उन्हें दण्ड दे सकूँ।" —कार्य-विवरण, १७ जनवरी, १७६३ ई०

मित्र महाशय की जाँच का कुछ फल न हुआ। देशी व्यापारी घाटे से त्रस्त होने लगे; देशी व्यापार के बन्द वा नष्ट होने का उपक्रम हुआ; राजकोष की हानि होने लगी; देश-वासी दिन-दिन कंगाल होने लगे। मीरक़ासिम के बार-बार प्रतिवाद करने पर गवर्नर ने उनसे भेंट करने के लिए मुँगेर की यात्रा की।

अंग्रेज़ गुमाश्तों के इस ग़ैर-क़ानूनी उच्छृंखल वाणिज्य से देश की अवस्था कितनी शोचनीय और भयानक हो उठी थी, इसे कितने ही सहृदय एवं सत्य-प्रेमी अंग्रेज़-लेखक मुक्त-कण्ठ से लिख गये हैं। प्रतिष्ठित देशी व्यापारीगण इन अत्याचारों से एक दम उजड़ गये; परगने का परगना त्रस्त, कंगाल तथा हाहाकार-पूर्ण हो गया; सम्पूर्ण देशी व्यापार नष्ट हो गया।[१]

नवाब और अंग्रेज़ गवर्नर में बहुत तर्क-वितर्क हुआ। अंग्रेज कर्मचारियों के आश्रय में उनसे 'दस्तक' ले कम्पनी का झण्डा उड़ाकर कितनों ही ने बिना शुल्क के वाणिज्य आरम्भ कर दिया था। अंग्रेज अधिकारीगण अवसर के अनुसार, कभी वाणिज्य करके और कभी 'दस्तक' बेचकर, अर्थोपार्जन कर रहे थे। उपाय न देख संसर्ग-दोष से इस देश के कितने ही लोगों ने भी अंग्रेजों की देखा-देखी अनुचित उपायों का अवलम्बन करना शुरू कर दिया था। वे लोग भी कभी जाली 'दस्तक' तैयार करके, कभी अपने मित्रों एवं स्नेहियों को सिपाहियों के रूप में सजाकर, कभी अंग्रेज गुमाश्तों को घूस देकर, निःशुल्क वाणिज्य करने लगे थे।[२]

1 The results of this shameful oppressive system were that the respectable classes of native merchants were ruined, whole districts became impoverished; the entire native trade became disorganised.—MALLESON'S DECISIVE BATTLES OF INDIA P. 145.

2 The river was covered with fleets of fleets proceeding up and down under English flags with small guards of SYPAHIS and English DUSTAKS and a system speedily ob-

अंग्रेज गवर्नर इनमें से कोई बात अस्वीकार न कर सके। अत्याचार के निराकरण का उपाय न देख देश अराजक हो उठा था; नवाब की शासन-क्षमता नष्ट हो चली थी; जल-स्थल सर्वत्र देश के निवासियों का व्याकुल आर्त्तनाद सुन पड़ता था। यदि कोई इन अत्याचारों के विरुद्ध अभियोग उपस्थित करने की चेष्टा करता तो अंग्रेज गुमाश्तों के सिपाही उसे मारने-पीटने तथा कड़े से कड़ा दण्ड देने में भी न हिचकते थे। किसी भी देश का शासक इस प्रकार की अराजकता सहन नहीं कर सकता, यह गवर्नर को भी स्वीकार करना पड़ा।[१]

tained amongst the native merchants of using the same DUSTAK over and over again, and finally of forging them; also of dressing up their own followers as English SYPAHIS.— BROOM'S BENGAL ARMY, P. 345.

[१] *For my own part, I think that the honour and dignity of our nation would be better maintained by scrupulous and careful restraint of the DUSTAK, than by extending it beyond its usual bounds, and by putting our gomastas under some checks, than by suffering them to exercise our authority in the country, every one according to the means put into his hands, and thereby bringing an odium upon the name of the English by repeated violence done to the inhabitants.* इसका आशय यह है कि मेरी निज़ी सम्मति में मामूली सीमा से बाहर वा अनुचित प्रकार दस्तकों का उपयोग करने की अपेक्षा उन्हें उचित रूप से व्यवहार करने तथा सावधानी एवं कड़ाई के साथ इस विषय में रोक-थाम करने से हमारे राज्य की इज़्ज़त और मर्यादा अधिक उत्तमता-पूर्वक फैलाई जा सकती है। गुमाश्तों की जाँच करने तथा उन्हें अधिकारों का उचित एवं वैध रूप में प्रयोग करने के लिए बाध्य करने में ही हमारी इज़्ज़त तथा भलाई है। गुमाश्तों को न रोकना और उन्हें अपने अधिकारों का इस प्रकार अनुचित प्रयोग करने का मौक़ा देना, कभी उचित नहीं कहा जा सकता। जो अधिवासियों पर बार-बार इस तरह की ज्यादती कर रहे हैं, वे अंग्रेज़ों का नाम कलंकित कर रहे हैं।

कम्पनी के अतिरिक्त और किसी को विना शुल्क दिये वाणिज्य करने का अधिकार नहीं था। उसी प्रथा को पुनः चलाने के लिए गवर्नर ने अंग्रेज-कर्मचारियों को स्वतंत्र वाणिज्य पर कर लगाने का प्रस्ताव किया। एक 'दस्तक' बार-बार व्यवहृत न हो सके, इसके लिए गवर्नर वांसिटर्ट ने प्रस्ताव किया कि अंग्रेज गुमाश्ता एवं नवाब-कर्मचारी दोनों के हस्ताक्षर विना कोई 'दस्तक' स्वीकार न किया जाय। अंग्रेज-कर्मचारियों के स्वाधीन वाणिज्य पर ९ प्रतिशत टैक्स लगाया जाना गवर्नर ने उचित बताया।

मीरक़ासिम ने गवर्नर की इन बातों में से एक भी स्वीकार न की। इन उपायों से अंग्रेज़ गुमाश्तों का अत्याचार दूर हो जायगा, इसका उन्हें विश्वास नहीं हुआ। गवर्नर के बहुत कहने-सुनने तथा अनुरोध करने पर उस समय इन प्रस्तावों को मानकर दरबार भंग करते हुए उन्होंने कहा—"अच्छा, कुछ दिन देखूँगा; अत्याचारों का प्रतीकार न होने पर शुल्क उठाकर अंग्रेज़ एवं देशी सारे व्यापारियों को समान भाव से वाणिज्य का अधिकार दे दूँगा।"

वांसिटर्ट ने जिन प्रस्तावों पर बड़े अनुनय-विनय के बाद नवाब की स्वीकृति प्राप्त की थी एवं जिनके पालन के लिए नवाब के सम्मुख धर्म की शपथ लेकर वह प्रतिज्ञा-बद्ध हुए थे, कलकत्ते के अंग्रेज उन्हें भी स्वीकार करने को तैयार न हुए। कर देना उन्होंने स्वीकार न किया वरन् वैसी शर्तें पेश करने के कारण वे गवर्नर को ही दोषी ठहराने लगे। उन्होंने कहा कि गवर्नर को कर्मचारियों के वाणिज्य के सम्बन्ध में वैसी शर्तें पेश करने का कोई अधिकार नहीं था अतएव अंग्रेज उन शर्तों को मानने के

लिए बाध्य नहीं हो सकते। इस प्रकार के तर्क-वितर्क से अंग्रेज-दरबार ध्वनित हो उठा। वारेन हेस्टिंग्स के अतिरिक्त और किसी व्यक्ति ने गवर्नर के पक्ष का समर्थन नहीं किया। हेस्टिंग्स ने सदस्यों को बार-बार समझाने की चेष्टा की कि इस प्रकार आचरण करने से अंग्रेजों का नाम घृणित और कलंकित हो जायगा१ परन्तु इसका कुछ फल न हुआ।२

1 *Such a system of Government cannot fail to create in the minds of the wretched inhabitants an abhorrence of the English name, and authority; and how will it be possible for the Nabab, whilst he heard the cries of his people which he cannot redress, not to wish to free himself from an alliance which subjects him to such indignities ?—Hasting's MINUTE, PROCEEDINGS, March 3, 1763.*

अर्थात्, "गवर्नमेण्ट की यह प्रणाली दीन-हीन, जर्जर एवं अत्याचार-पीड़ित अधिवासियों के हृदयों में अंग्रेज़ों के नाम एवं उनके अधिकार तथा शक्ति के प्रति अधिकाधिक एवं ज़बर्दस्त घृणा पैदा करने में चूक नहीं सकती और नवाब के लिए यह कैसे संभव हो सकता है कि अपनी प्रजा का व्यथित आर्त्तनाद सुनते हुए (जिनका सुनना वह बन्द नहीं कर सकते) अपने को ऐसी मित्रता वा सन्धि से मुक्त करने की इच्छा न करें, जिसके कारण उनकी मर्यादा को चोट पहुँचती है ?"

अनुवादकीय नोट—हेस्टिंग्स का यह नोट साफ़-साफ़ बतला रहा है कि अंग्रेज़ों ने ही मीरक़ासिम को सन्धि तोड़ने पर बाध्य किया—इतना ही नहीं वरन् कहा जा सकता है कि ज़बर्दस्ती तुड़वाया, और इन्हीं अंग्रेज़ों ने पीछे मीरक़ासिम के मत्थे सारा दोष मढ़कर अपनी ग़लती को ढकने का प्रयत्न किया। यह प्रयत्न कितना निन्दनीय है, इसे पाठक स्वयं ही विचार लें।

२ मेरी समझ में उस समय 'पार्टीफ़ीलिंग' ज़ोरों पर थी। शुरू से ही गवर्नर का विरोध करना सदस्यों का एक ख़ास काम हो गया था। वे लोग उचित-अनुचित और हिताहित पर भी उतना विचार न करते थे। —अनुवादक

अंग्रेजों ने नमक के व्यापार पर २॥ प्रतिशत कर देना स्वीकार किया। अन्य वस्तुओं को बिना कर दिये ही लाने-लेजाने का प्रस्ताव किया। गवर्नर ने जो शर्तें पेश की थीं, मीरक़ासिम के अनुरोध से उन्हें लिपि-बद्ध करके नवाब के दफ़्तर में दाखिल कर आये थे। उनकी नक़लें सब जगह भेज दी गई थीं। अंग्रेज़ों के शुल्क देने को तैयार न होने पर उनकी नावें रोकी गईं। इसका समाचार पाकर सब अंग्रेज अशान्त हो उठे। इधर अंग्रेज-दरबार का हाल मालूम होने पर मीरक़ासिम के लिए भी क्रोध रोकना असंभव हो गया।

दरबार भंग करते समय गवर्नर के सामने कही हुई बात याद कर, देशी वाणिज्य की रक्षा के लिए, नवाब ने सब जातियों को निःशुल्क व्यापार करने की आज्ञा प्रचारित की। यह प्रसिद्ध घोषणा-पत्र मुसलमानों के सुभान महीने की १९ वीं तारीख़ (५ मार्च, १७६३ ई०) को राजा नौबतराय के सामने लिखा गया था। इसके प्रत्येक शब्द में मीरक़ासिम का असली चरित्र प्रकट हुआ है। अंग्रेजों के साथ झगड़ा करने से सर्वनाश हो जाने की संभावना है अथवा अभी प्रकाश्य कलह का समय नहीं आया है, इन बातों की ज़रा भी पर्वा न करके उन्होंने राजाज्ञा प्रचारित की। अंग्रेज़ों ने इस घोषणा-पत्र का जो अंग्रेज़ी अनुवाद किया है, उसे हम यहाँ अविकल रूप से उद्धृत करते हैं—

"Having been certainly informed that the greater part of merchants of my country have suffered considerable losses, and have laid aside all traffic, sitting idle and unemployed in thier houses,—

Therfore with a view to the welfare and quiet of this kind of people, I have caused all duties of customs, chaukeedary Mangan, collections upon new-built boats and other lesser taxes by land and water, for two years to come, to be removed, and my *Sunnod* is accordingly sent to enforce it.

अर्थात्, "मुझे ठीक-ठीक पता चला है कि मेरे देश के व्यापारियों का अधिकांश भाग, अत्यधिक हानि से क्षति-ग्रस्त हुआ है और विवश हो सब कुछ छोड़कर बेकारी की हालत में दिन बिता रहा है; अतएव उनके उपकार, शान्ति, उन्नति और भलाई के लिए, चुंगी, चौकीदारी, मंगन, नव-निर्मित नावों पर बैठाये हुए कर, उतराई तथा जल-स्थल सम्बन्धी व्यापार के सब छोटे-छोटे टैक्स, अगले दो वर्षों तक के लिए दूर कर दिये जाते हैं। इस आज्ञा को कार्य-रूप में परिणत करने के लिए सनद भेजा जाता है।"

देश में घोषणा-पत्र के प्रचारित होते ही अंग्रेज-मण्डली में बड़ा कोलाहल उठा। उनकी इच्छा थी कि केवल वे ही निःशुल्क व्यापार करें। सब श्रेणी की प्रजा को निःशुल्क वाणिज्य का अधिकार देने से अंग्रेजों का सर्वनाश उपस्थित हुआ। अंग्रेज कहने लगे कि नवाब को इस प्रकार की घोषणा करने का अधिकार नहीं है।

मीरक़ासिम अंग्रेजों के साथ कलह में लिप्त हो, उनकी हत्या करके, बंगाल के इतिहास को कलंकित कर गये हैं। उनके इस कृत्य के लिए भारतवासी-मात्र लज्जित हैं, तथापि उनकी इस

विख्यात घोषणा के लिए वे उन्हें धन्यवाद देना भी नहीं भूल सकते। वंग-वासी तो सदैव उनकी इस कृपा तथा प्रजा-हितैषिता को श्रद्धा के साथ याद करते रहेंगे। अंग्रेज इतिहास-लेखकों को, इस घटना का उल्लेख करते समय, अपनी जाति के कलंक का स्मरण करके लज्जा से सिर नीचा करना पड़ा है। एक अंग्रेज इतिहासज्ञ स्पष्ट ही लिख गये हैं—"मनुष्य स्वार्थान्ध होकर कितना अधःपतित हो सकता है, इसके उत्कृष्ट दृष्टान्त में उस समय के अंग्रेज उपस्थित किये जा सकते हैं।"१

---

1 *The conduct of the Company's servants upon this occasion, furnishes one of the most remarkable instances upon record of the power of interest to extinguish all sense of justice and even of shame. They had hitherto insisted contrary to all right and all precedent, that the Government of the country should except their goods from duty. They now insisted that it should impose duties upon the goods of all other traders, and assumed it a guilty of a breach of place toward the English nation, because it proposed to remit them.--Mill's HISTORY OF BRITISH INDIA (Wilson) vol. III. 337.*

(अनुवादकीय नोट—'मिल का यह कहना बहुत ठीक है कि यह घटना स्वार्थान्धता एवं न्याय की हत्या का बहुत सच्चा और घृणात्मक दृष्टान्त है। एक स्वाधीन राजा के राज्य में जाकर उसकी प्रजा पर अत्याचार करना, नियम एवं क़ानून का उल्लंघन करके व्यापार करना, कर न देना, तिसपर सब श्रेणी के लोगों को निःशुल्क व्यापार का अधिकार देने पर बिगड़ खड़े होना एवं दूसरों पर टैक्स लगाने के लिए कहना, घोर अराजकता है।

समर-सूचना

As a last resource it was agreed that a deputation should be sent to the Nawab, who was then at Mongeer to endeavour to arrange terms with him and to induce him to countermand his order for the abolition of all transit duties.❀ —*Captain A. Broome.*

अंग्रेज़ कर्मचारियों के स्वाधीन वाणिज्य की रक्षा के लिए अंग्रेज़-मात्र कमर कसकर तैयार हो गये। अंग्रेज़-गवर्नर को निरुपाय होकर उनकी आज्ञा पालन करने के

❀ "अन्तिम तदबीर यही तय पाई कि नवाब के पास (जो उस समय मुँगेर में थे) एक डेपूटेशन भेजकर समझौता करने की शर्तें तय की जायँ और इस बात के लिए दबाव डाला जाय कि अंग्रेज़ व्यापारियों के व्यापार

लिए बाध्य होना पड़ा। सब लोगों की सम्मति से मीरक़ासिम पर ही सारा अपराध लगाकर काम निकालने का निश्चय हो गया; मीरक़ासिम के सीधे-सीधे न मानने पर बाहु-बल का प्रयोग करने की बात भी तय हो गई।

अंग्रेज़ों के इस दुष्ट निश्चय की समालोचना करते हुए एक अंग्रेज़ इतिहास-लेखक लिख गये हैं:—"सब लोगों ने एक स्वर से निश्चय किया कि यदि अंग्रेज़ों के अनुरोध पर नवाब इस प्रकार अपनी प्रजा का सर्वनाश करने में असम्मति प्रकाश करें तो बाहु-बल द्वारा प्रतीकार करना ही एकमात्र उपाय रह जाता है!" १

तथापि बाहु-बल का प्रयोग करने के पूर्व धमकी से ही काम निकालने की आशा से एक बार नवाब के पास दूत भेजना स्थिर हुआ। तदनुसार ४ अप्रैल को श्री आमियट और श्री हे नामक दो सदस्यों ने कलकत्ता से मुँगेर की यात्रा की। इधर युद्ध की तैयारी भी होने लगी। पटना के गुमाश्ता एलिस साहब के परामर्श से कुछ सिपाही भी नौका और गोली-बारूद के साथ पटना की ओर भेज दिये गये। एलिस साहब के ऐसे अनुचित व्यवहार से बिहार के नवाब-कर्मचारियों का खुल्लमखुल्ला अपमान हुआ। इधर यह सब हो रहा था और उधर दूत भेजकर समझौता करने का बाहरी पाखण्ड भी चल रहा था।

पर से सब प्रकार की चुंगी उठा लेने के आशय की दूसरी आज्ञा अपनी पहली आज्ञा के विरोध में प्रचारित करें।

1 *One and all had come to the conclusion that when an independent Nawab of Benga should dare to move in a direction contrary to that which had been urged upon him from Calcutta, there was but one remedy, and that remedy was force.*—MALLESON'S DECISIVE BATTLES OF INDIA, P. 14E.

मीरकासिम यदि स्वार्थी, अकर्मण्य और कायर होते तो कुछ भी गोल-माल न उपस्थित होता। उन्होंने अंग्रेजों की सिपाही और गोली-बारूद से भरी हुई नौका रोक कर एलिस साहब के दुर्व्यवहार के विरुद्ध अंग्रेज़-दरबार में अभियोग उपस्थित करने के लिए अपना एक दूत कलकत्ता रवाना किया।

इन सब कारणों से दूत को नवाब के दरबार में सफलता नहीं मिली। उनकी कथा पर कौन विश्वास करता? तथापि मीरक़ासिम ने युद्ध-कलह दूर करने के लिए यथा-साध्य चेष्टा करने में त्रुटि नहीं की। उन्होंने दृढ़ता-पूर्वक व्यक्त किया कि प्रजा-रक्षा के लिए ही उसके व्यापार पर से भी कर उठा लिया गया है। उन्होंने यह बात भी यथासाध्य समझा दी कि प्रजा का सर्वनाश करके अंग्रेज़ कर्मचारियों के अर्थोपार्जन में सहायता करना असम्भव है।

कलकत्ता से नवाब के दूत के लौटने तक आमियट और हे साहब को मुँगेर में ठहरने के लिए बाध्य होना पड़ा। अदृष्ट की विडम्बना के कारण इससे भी मीरक़ासिम की शान्ति की प्यास दूर न हो सकी।[१]

कलकत्ता के अंग्रेज एक बार ही आग हो उठे। आमियट और हे साहब लौट न सके—सिपाहियों की नौका रोक ली गई, नवाब का घोषणापत्र भी उसी प्रकार बना रहा। इससे अंग्रेज-मात्र क्रुद्ध होकर बाहु-बल का आश्रय ग्रहण करने के लिए

1 *They found him, whilst firmly resolved to adhere to the policy which he declared with most perfect truth was the only policy capable of saving the industrial classes of his dominion from absolute ruin, yet anxious, almost painfully anxious, to avoid hostilities.--MALLESON'S DECISIVE BATTLES OF INDIA.*

तैयार हो गये। आमियट और हे साहब को गुप्त-रूप से भाग आने के लिए पत्र लिखा गया और उनके भागकर चले आनेपर बाहु-बल का प्रयोग करने के निश्चय की सूचना एलिस साहब को दी गई। स्वभाव के क्रोधी एलिस साहब पटना के क़िले पर आक्रमण करने की तैयारी करने लगे।

कई दिन बीत जाने पर भी जब कलकत्ता से दूत नहीं लौटा तब मीरक़ासिम ने आमियट साहब को कलकत्ता भेजने का विचार किया। हे साहब को दरबार में ज़मानत के रूप में रखकर आमियट को कलकत्ता भेजने से लड़ाई-झगड़ा दूर होने का उपाय निकल आवेगा, यह सोचकर उन्होंने आमियट को अपना अभिप्राय बतलाया। आमियट ने तुरन्त मुँगेर से कलकत्ता की यात्रा की। मीरक़ासिम नहीं जानते थे कि इसीसे सर्वनाश उपस्थित होगा।

अंग्रेजों ने स्थिर किया था कि २३ जून के पूर्व जिस प्रकार होगा आमियट और हे साहब मुँगेर से भाग आयेंगे और इसके बाद एलिस साहब पटना के क़िले पर अधिकार कर लेंगे। इस निश्चय को कार्यान्वित करने के लिए एलिस दिन गिन रहा था। हे साहब को ज़मानत के तौर पर नवाब-दरबार में छोड़कर आमियट ने अकेले कलकत्ता की यात्रा की है, यह संवाद सुनने के पहले ही एलिस साहब ने बाहु-बल का प्रयोग किया।

एलिस साहब का यह हठ ही सारे अनर्थों का मूल मालूम होता है। किन्तु सच पूछिए तो इसमें अकेले एलिस साहब ही अपराधी न थे। युद्ध उपस्थित होने के बहुत पहले चौदहवीं अप्रैल को ही कलकत्ता की अंग्रेज़ सभा में निश्चय हो चुका था

कि युद्ध आरम्भ होने पर किस सेनापति को किस पथ से किस दिशा में यात्रा करनी पड़ेगी।[1] आमियट और हे साहब का कार्य समाप्त होने के पहले १८ जून को ही कलकत्ता के अंग्रेज़-दरबार में स्थिर हुआ था कि सेनानायक लोग अमुक गुप्त स्थान पर एकत्र होंगे। तदनुसार सभी युद्ध के लिए तैयार थे।[2]

आमियट और हे साहब ने १४ जून को मुँगेर से जो पत्र कलकत्ता भेजा था वह २३ जुलाई को कलकत्ता पहुँचा। उसमें लिखा था—"पटना में सेना भेजने के कारण नवाब बहुत क्रुद्ध हुए हैं; सेना को स्थानान्तर किये बिना शान्ति स्थापित होने की सम्भावना नहीं है। गुरगनखाँ के भाई कलकत्ता गये हैं; उनके ऊपर अत्याचार न हो, इस उद्देश्य से हे साहब को मुँगेर में ठहरना पड़ेगा।"

इस प्रकार आत्म-रक्षा की चेष्टा करके पटना दुर्ग को सुरक्षित करने के लिए मीरक़ासिम ने सेनापति मार्कर को पटना की ओर भेजा। एलिस साहब ने देखा मार्कर के ससैन्य पहुँच जाने

1 *Vansittart's Narrative, vol III, 194*

2 *It is agreed, in order to form a front for the protection of the company's AURUNGS and lands, to secure their investment and revenues in the best manner possible, and to endeavour to collect what we can from other provinces to answer the expence of the war, that our troops be immediately prepared for taking post, according to the following disposition.—VANSITTART'S NARRATIVES. VOL. III. 227.*

यह कहना बाहुल्य मात्र है कि मीरक़ासिम ने अभी तक कम्पनी की ज़मींदारी में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया था। अपने स्वार्थ के लिए कम्पनी के व्यय से लड़ाई-झगड़ा उपस्थित करने के लिए कम्पनी के कर्मचारियों ने ऐसी अलीक बात कम्पनी के दफ्तर में लिपिबद्ध की थी। उस समय जो अंग्रेज़ कर्मचारी कलकत्ते में रहकर कम्पनी के व्यापार का काम करते थे, उनमें सत्यनिष्ठा का बहुत अभाव था।

पर क़िले पर क़ब्ज़ा करना कठिन हो जायगा। आमियट और हे साहब के २३ जून को भागने की बात थी। अतएव २३ तारीख़ तक ठहर कर क़िले पर अधिकार करने के लिए एलिस साहब अत्यन्त व्यग्र हो उठे।

पटना-दुर्ग एक प्रकार से अरक्षित था तथा बहुत थोड़ी सेना के साथ वहाँ के नायब मीर मेंहदीख़ाँ निश्चिन्त होकर राज-कार्य चलाते थे। शहर की जिस चहारदीवारी के भीतर पटने का क़िला बना हुआ था वह भी कमज़ोर और अरक्षित थी। २३ वीं जून की रात को, जब दुर्ग की रक्षक सेना और सेनापतिगण गम्भीर निद्रा की गोद में पड़े हुए थे, एलिस साहब ने चुपचाप अंग्रेज़-कोठी में अपनी सेना एकत्र की। सवेरा होने के पहले ही तस्कर की नाईं नगर की चहार-दीवारी लाँघकर अंग्रेज़ सेना ने सिंह-द्वार खोल दिया। नगर में लूट शुरू हुई। नींद से तुरन्त उठी हुई नवाब-सेना आत्म-रक्षा न कर सकी; मीर मेंहदीख़ाँ मुँगेर भागे; एलिस साहब हँसते हुए अंग्रेज़-कोठी को लौटे; पटना की सड़कें निरीह नागरिकों के ख़ून से तर होने लगीं।

इस घोर विपत्ति के समय भी एक हिन्दू और एक मुसलमान सेनानायक ने मीरक़ासिम के नमक की मर्यादा की रक्षा करने में त्रुटि न की। हिन्दू लालसिंह ने बिखरी हुई सेना एकत्र करके दुर्ग का द्वार बन्द कर दिया और प्राणपण से क़िले की रक्षा का आयोजन करने लगा। मुसलमान मुहम्मदअमीन ने दुर्ग त्यागकर 'चेहल सेतून' नामक पुरानी हवेली को घेर लिया। इस हवेली में अस्वस्थ अंग्रेज़ों ने डा० फुलर्टन के साथ आश्रय ग्रहण किया था। इन सब बातों से एलिस साहब की पटना-

विजय व्यर्थ हो गई—किले पर अधिकार नहीं हुआ और अंग्रेज़ भी घिर गये। हाँ, नगर-निवासी अवश्य अंग्रेज़ सेना के अत्याचार से जर्जरित होने लगे।

ससैन्य पटना के समीप पहुँचकर (रास्ते में) मार्कर को मीर मेंहदीख़ाँ से सारा वृत्तान्त ज्ञात हुआ। नगर पर अधिकार हो जाने पर भी दुर्ग पर अंग्रेज़ सेना अधिकार न कर सकी; लालसिंह वीरता-पूर्वक आत्म-रक्षा कर रहे हैं, यह संवाद पाकर मार्कर को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने तुरन्त जय-ध्वनि करके नगर-तोरण पर आक्रमण कर दिया। अंग्रेज़ सेनानायक ने सिंह-द्वार के सामने तोप लगाकर गोलाबारी से आक्रमणकारियों की गति रोकने में त्रुटि नहीं की, किन्तु मीरनसीर नामक सेनानायक के कौशल से मीरक़ासिम की सेना ने शीघ्र ही अंग्रेज़ों को परास्त कर नगर पर अधिकार कर लिया। पटना का छोटा क़िला, लालसिंह के साहस और पराक्रम से, अंग्रेज़ों के मुख में जाने से बच गया।

मीरनसीर पर नगर की देख-रेख का भार डालकर मार्कर ने अंग्रेज़-कोठी पर आक्रमण करने के लिए उसकी ओर प्रस्थान किया। रण-शिक्षा, शौर्य-वीर्य और समर-कौशल में मार्कर की सर्वत्र प्रसिद्धि थी। आक्रमण का वेग सम्हाल कर कोठी की रक्षा करना अंग्रेज़ों के लिए असम्भव हो गया। चार दिन तक घिरे रहने के बाद, आहार के अभाव से कष्ट पाकर, वे नौका के द्वारा भागने का आयोजन करने लगे। अंग्रेज़ों की कोठी गंगा के किनारे ही बनी हुई थी और नदी की ओर नवाब की सेना का ध्यान भी नहीं था, अतः एलिस साहब को नदी के रास्ते भागने

का सुयोग मिल गया: किन्तु गंगा द्वारा कलकत्ता तक जाने का उपाय नहीं था, क्योंकि मुँगेर-दुर्ग के पास पहुँचते ही पकड़े जाने की सम्भावना थी; अतएव अयोध्या के नवाब का आश्रय ग्रहण करने की आशा से एलिस साहब ने पश्चिम की ओर यात्रा की। वर्षा की प्रबलता के कारण गंगा की धारा बहुत तेज़ हो गई थी, अतएव नौका की गति बहुत धीमी थी। नाव थोड़ी ही दूर गई होगी कि मार्कर की सेना ने आकर रास्ता रोक लिया। भागने में चतुर अंग्रेज सेना ने उपाय न देख युद्ध द्वारा आत्म-रक्षा करने की आशा से १ जुलाई को गंगातट पर व्यूह की रचना की। नवाब की सेना के आक्रमण की प्रतीक्षा में समय न गँवाकर स्वयं ही उसपर आक्रमण करने की आज्ञा अंग्रेज सेनानायकों ने दे दी। पर आज्ञा पाकर भी गोरी पल्टन ने आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया। सिपाही-सेना ने भी इसी दृष्टान्त का अनुकरण किया। फल-स्वरूप अंग्रेज सेना पूर्णतः पराजित हुई। डा० फुलर्टन और चार सार्जेण्टों के अतिरिक्त सभी बन्दी हुए; कितने ही युद्ध-क्षेत्र में मारे गये। इस प्रकार एलिस साहब की सामरिक लीला समाप्त हुई।

यथा समय इस दुर्घटना का संवाद पाकर मीरक़ासिम ने मुर्शिदाबाद पत्र भेज आमियट को रास्ते में ही रोक लेने का आदेश भेजा। सैयद मुहम्मदखाँ उस समय मुर्शिदाबाद के शासक थे। उन्होंने क़ासिमबाज़ार की अंग्रेज-कोठी घेर कर आमियट साहब की नौका रोकने का संकल्प किया। हे और ग्लष्टन को ज़मानत के तौर पर मुँगेर में छोड़ कर, आमक्रेट, वालस्टन, हचिन्सन, जोन्स, गर्डन, कूपर एवं डाक्टर क्रुक के साथ आमियट साहब

नौका द्वारा कलकत्ता की यात्रा कर रहे थे। मुर्शिदाबाद के समीप पहुँचने पर नौका रोक ली गई। रोकने के अतिरिक्त उनकी हत्या इत्यादि की और कोई बात नहीं थी, किन्तु आमियट ने असंतुष्ट होकर अपने सिपाहियों को बन्दूक चलाने की आज्ञा दे दी। उन्होंने आज्ञा मानकर नवाब की सेना पर गोलियों की वर्षा आरंभ कर दी; एक हवलदार और दो-एक सिपाहियों ने भाग कर जान बचाई, शेष सब मारे गये। १ आमियट ने ही सिपाही-सेना को बन्दूक छोड़ने का आदेश देकर यह दुर्घटना उपस्थित की। सामरिक इतिहास के अतिरिक्त अन्य किसी पुस्तक में इस बात का उल्लेख नहीं हुआ है वरन् किसी-किसी इतिहास लेखक ने तो प्रकृत बात छिपाकर इसे हत्याकाण्ड कह कर तिल का ताड़ कर दिया है। अल्पसंख्यक पलायन-परायण अंग्रेज़ सेना का बहुसंख्यक नवाब-सेना द्वारा घिर जाना हत्याकाण्ड ही है, इस में सन्देह नहीं; किन्तु इसके लिए आमियट साहब ही अपराधी हैं। हठवश ही एलिस साहब बन्दी हुए और हठ करने के ही कारण आमियट साहब को ससैन्य संसार से प्रस्थान करना पड़ा।

अंग्रेज़ सौदागरों के इन सब उच्छृंखल व्यवहारों से मीर-क़ासिम ने समझ लिया था कि बाहुबल के अतिरिक्त किसी दूसरे उपाय से शान्ति स्थापित होने की आशा नहीं है। अतएव सेना सजाने में उन्होंने भी कोई त्रुटि न की। किन्तु आत्म-रक्षा के अतिरिक्त आक्रमण करने की आज्ञा नवाब-सेना को नहीं मिली।

1 Mr. Amyatt, refusing to land or surrender, directed his SIPAHIS to fire upon the Nawab's boats, which were approaching to compel them; a short and desperate struggle ensued, the English boats were finally boarded, and the whole party destroyed or made prisoners, with exception of a Havlldar and one or two Sipahis, who made their escape and brought the melancholy intelligence to Calcutta.--BROOME'S BENGAL ARMY, P. 381.

नवाब की आज्ञा से उनकी सेना राजधानी की रक्षा के लिए मुर्शिदाबाद प्रान्त में एकत्र होने लगी। उस समय मीरक़ासिम ने अंग्रेज़ गवर्नर को जो पत्र लिखा था, उससे उनके मन का भाव आज भी समझा जा सकता है। यह पत्र—जो व्यंग का एक अच्छा नमूना है—७वीं जुलाई को गवर्नर को मिला। इसमें नवाब ने लिखा था—"मैं एलिस साहब को हृदय से अपना परम-शत्रु ही समझता आया हूँ। इस समय देखता हूँ कि वह 'बन्धु, कहकर सम्बोधन किये जाने के सर्वथा योग्य हैं। यह बात उनके विविध आचरणों से व्यक्त हो पड़ी है। उन्होंने चोर की तरह रात के समय पटना के क़िले पर आक्रमण करके बाज़ार को लूटा; प्रातःकाल से तीन पहर तक केवल लूट और नर-हत्या से प्रतिष्ठित महाजनों एवं नागरिकों को त्रस्त किया। मैंने एक समय आपसे दो-तीन सौ बन्दूकें माँगी थीं, किन्तु आप मेरे उस अनुरोध को पूरा नहीं कर सके थे; परन्तु दुर्भाग्य कि हमारे साथ आन्तरिक मित्रता होने के कारण ही एलिस साहब ने इस हत्या-काण्ड में अपनी सेना की सारी तोप-बन्दूक़ एवं युद्ध-सामग्री मुझे सौंप दी और स्वयं सेना के भार-वहन की उत्कट चिन्ता से छुट्टी ले ली। इस व्यक्ति के इतना अनिष्ट करने पर भी, मेरे मन में कम्पनी के अनिष्ट की इच्छा न होने के कारण ही मैंने इन सारी बातों की उपेक्षा की; किन्तु इस घटना में कम्पनी की जो कुछ क्षति हुई है, उसके लिए आप ही ज़िम्मेदार हैं। आपने अन्याय से निर्दयता-पूर्वक शहर को लूट कर एवं निर्दोष नगर-वासियों को नर-हत्या से त्रस्त करके कई लाख रुपयों की द्रव्य-सामग्री लूट ली है। इस बात पर भली-भाँति विचार करके

दरिद्रों की क्षति-पूर्ति करना कम्पनी का कर्त्तव्य है। सिराजुद्दौला के समय कलकत्ता की लूट के बाद यही बात हुई थी। आप लोग बड़े विचित्र बन्धु हैं! सन्धि करके—सन्धि-पालन के लिए ईसा के नाम पर धर्म-शपथ करके—आप लोगों ने ससारिक व्यय का निर्वाह करने के लिए हमसे ज़मींदारी ली थी। आपकी सेना हमारे पास रह कर सदैव हमारी उन्नति की चेष्टा करेगी, इस बात की शर्त हुई थी। किन्तु, काम पड़ने पर देखते हैं कि आप हमें नष्ट करने के लिए ही इतनी बड़ी सेना रक्खे हुए हैं! जब आपकी सेना हमारे साथ इस प्रकार का—सन्धि-विरुद्ध—व्यवहार कर रही है, तब मेरे लिखने का यही अभिप्राय है कि, आप मेरी जो ज़मींदारी भोग कर रहे हैं उसका तीन वर्ष का राज-कर आपको मेरे पास जमा करना चाहिए। गत कई वर्षों से कम्पनी के गुमाश्तों ने निज़ामत के अधिकार से जितने अत्याचार किये हैं, बल-पूर्वक जितना धन लूटा है, देश के लोगों की जितनी क्षति की है, इस समय उसका प्रतीकार करना कम्पनी का कर्तव्य है। आप लोगों को अब इतनी हानि उठानी पड़ेगी कि जैसे आप लोगों ने वर्द्धमान एवं अन्य स्थानों का अधिकार प्राप्त किया था, वैसे ही उन्हें लौटा देना पड़ेगा।"❀

अंग्रेज़ों की ओर से इस पत्र का उत्तर मिलने का कोई प्रमाण नहीं पाया जाता। इस पत्र में मीरक़ासिम अंग्रेज़ों के विरुद्ध जितने अभियोग लगा गये हैं, उनके ऊपर मिट्टी डालने

❀ मीरक़ासिम का मूल पत्र अब कहीं नहीं मिलता, केवल वांसिटर्ट साहब का अंग्रेज़ी अनुवाद ही मिलता है। मूल पत्र क्या हुआ, इसका ज़िक्र किसी ने नहीं किया है।

का कोई उपाय नहीं है। नर-हत्या, लूट, सन्धि-भंग, शपथ-भंग इत्यादि बातें स्पष्ट शब्दों में लिखी हुई हैं। इसकी किसी बात को मिथ्या कहने का साहस इतिहास को नहीं है। आज इतने समय बाद ऐसा साहस करके उसमें सफल होने की आशा भी नहीं है।

सिराजुद्दौला ने भी ठीक इसी भाव का पत्र अंग्रेज़ों को लिखा था। मीरक़ासिम के पत्र में उसका आभास मिलता है। इतिहास-लेखकों की कल्पित और अन्दाज़िया बातों की अपेक्षा इन पत्रों से ही उस समय की सच्ची अवस्था अच्छी तरह जानी जा सकती है। मीरक़ासिम के पत्र में अहंकार नहीं, स्वाभिमान है। इस पत्र के प्रत्येक शब्द में अंग्रेज़ों की झूठी बन्धुता का चित्र दीख पड़ता है। किन्तु जिनके व्यवहार को लक्ष्य करके मीरक़ासिम ने इस रूप में अपनी हृदय-वेदना व्यक्त की थी, वे स्वार्थान्ध होकर इंग्लैण्ड के यश पर कलंक की कालिमा लगाने को व्यग्र हो उठे थे। उनके द्वारा सुविचार की कोई आशा न थी। पिछले काल के अंग्रेज़ इतिहास-लेखकों ने मीरक़ासिम के प्रति सुविचार करने में त्रुटि नहीं की है। अंग्रेज़ों के दोष से ही यह युद्ध हुआ, इसे इस समय सभी एक स्वर से स्वीकार करते हैं।

घटना-चक्र में मुसलमान शासन नष्ट हो गया, किन्तु यदि यह चक्र उलटा घूमा होता तो अंग्रेज़ों को उसी समय यह बात समझ में आजाती कि हमारे ही दोष हमारे उच्छेद का कारण हुए हैं। उस समय यह सरल बात उनकी समझ में नहीं आई। उन्होंने बाहु-बल को ही एकमात्र आश्रय समझकर ग्रहण किया।

उस समय का बाहु-बल केवल बाहुओं पर ही निर्भर नहीं था, लोग उसके साथ छल-कौशल दिखलाने के लिए भी लालायित

रहते थे। आज भी यह बात भली-भाँति नष्ट नहीं हुई है। मीर-क़ासिम का पत्र पाकर अंग्रेज़ लोग केवल बाहु-बल पर ही निश्चिन्त होकर बैठ नहीं रहे;—बाहु-बल के साथ छल-कपट के भी हथकण्डे चलने लगे। जिस उपाय से सिराजुद्दौला का अधःपतन किया गया था, मीरक़ासिम के सम्बन्ध में उस उपाय का अवलम्बन करने की विशेष संभावना नहीं थी; तथापि जो कुछ उपाय शेष था उसकी उपेक्षा नहीं हुई। वह उपाय और कुछ नहीं था—सिर्फ़ पुनः मीरजाफ़र !

फिर मीरजाफ़र !

The Nawab Meer Mahomed Cossim Allee Cawn having entered upon and committed acts of open hostility against the English nation, and the interest of the English United East India Company, we, on their behalf, are reduced to the necessity of declaring war against him; and having come to a resolution of placing the Nawab Meer Mahomed Jaffer Cawn Bahadur again in the Government, we now proclaim and acknowledge him as Subahdar of the provinces of Bengal Behar and Orissa.* —*The Proclamation,*

फिर मीरजाफ़र ! फिर वही सन्धि-पत्र ! अंग्रेज़ सौदागर मीरजाफ़र को पुनः सूबेदार कहकर और सलाम करके समर-क्षेत्र की ओर अग्रसर ! इस नई सन्धि में पुराना सन्धि-पत्र डूब गया !

* चूंकि नवाब मीर मुहम्मद क़ासिम अलीख़ाँ ने अंग्रेज़ जाति और

एक बार मीरजाफ़र के साथ सन्धि करके, अंग्रेज बनियों ने बालक सिराजुद्दौला से सिंहासन छीन लिया था। इस बार मीरजाफ़र के साथ सन्धि करके स्वाधीनचेता मीरक़ासिम को सिंहासन-च्युत करने का आयोजन शुरू हुआ। उस बार और इस बार दोनों पक्षों की अवस्था एक-सी नहीं थी। दोनों में अन्तर प्रत्यक्ष दीख पड़ता है। उस बार बंग-वासियों की उत्तेजना से अंग्रेजों को सफलता मिली थी और इस बार अंग्रेजों की उत्तेजना से बंग-वासी विप्लव-साधन में अग्रसर हुए। उस बार मीरजाफ़र केवल प्रभु-विद्रोह में लिप्त हुए थे किन्तु इस बार समग्र बंगाली जाति के विनाश में अग्रसर हुए। उस बार सिंहासन पाने पर स्वाधीन होने की आशा थी; इस बार केवल अंग्रेजों की आज्ञा का पालन करने के लिए ही सिंहासन पर बैठने की व्यवस्था हुई।

अभागे मीरजाफ़र इतने में ही कृतार्थ हो गये। जिस प्रकार हो, सिंहासन पर बैठना ही उनकी दृष्टि में परम लाभ था। अंग्रेजों को निःशुल्क व्यापार करने का अधिकार देकर बंग-वासियों को कर के भार से पीड़ित करने पर बंगाल का सर्वनाश हो

इंग्लिश यूनाइटेड ईस्ट इण्डिया कम्पनी के स्वार्थ के विरुद्ध प्रकट रूप से शत्रुता के कार्य किये हैं और करने पर उतारू हैं, अतएव हम कम्पनी और अंग्रेज़ जाति की ओर से उनसे युद्ध आरम्भ करने की घोषणा करने पर मज़बूर हैं और नवाब मीर मुहम्मद जाफ़रख़ाँ को पुनः बंगाल, बिहार और उड़ीसा की सूबेदारी पर बिठाने का निश्चय करके हम इस बात की घोषणा करते हैं और आज से उन्हें ही सूबेदार मानते हैं।

—अंग्रेज़ों का घोषणापत्र।

जायगा—इसे कौन नहीं समझता था ? पर सब कुछ समझ-बूझकर भी मीरजाफ़र स्वार्थ-वश सिंहासन के लोभ से—इस बात पर सम्मत हो गये।

पहली बार मीरजाफ़र को सिंहासन पर बिठाकर अंग्रेजों ने अनुभव किया था कि इस व्यक्ति के लिए तो सिंहासन की अपेक्षा फाँसी का तख़्ता ही अधिक उपयुक्त होता । हालवेल ने ऐसा ही लिखा था। इसी बात को लेकर थोड़े दिनों बाद उन्होंने मीरजाफ़र को सिंहासन-च्युत कर दिया था। फिर उसी मीरजाफ़र को सिंहासन पर बिठाने के लिए अंग्रेज बनिये इतने व्याकुल क्यों हो उठे ?

बात यह थी कि उस समय भी सम्पूर्ण रूप से राज-शक्ति की उपेक्षा करने का साहस उनमें नहीं जन्मा था; उस समय भी अंग्रेज व्यापारी-मात्र थे। देशवासियों की सहायता के बिना मीरक़ासिम को सिंहासन-च्युत करने का उपाय नहीं था, किन्तु देश के लोग सहसा राजशक्ति के विरुद्ध—मीरक़ासिम के विपरीत—अंग्रेजों की सहायता को तैयार क्यों होने लगे ? मीरजाफ़र को मुर्शिदाबाद के शून्य सिंहासन पर प्रतिष्ठित करने से देश के लोग अपने पुराने नवाब की ओर आकृष्ट होंगे, यह विचार मन में करके अंग्रेजों ने मीरजाफ़र को पकड़ा। जो लोग स्वार्थपरायण थे, उनमें आगा-पीछा सोचने की शक्ति नहीं रह गई थी; वे अंग्रेजों की इस चाल को ताड़ न सके। इसके अतिरिक्त मीरक़ासिम दूर थे और मीरजाफ़र निकट, अतएव वे मीरजाफ़र को ही नवाब कहकर सलाम करने को व्यग्र हो उठे। देखते ही देखते मीरजाफ़र के पक्ष में अनेक गण्यमान्य सरदार जयध्वनि

करके उठ खड़े हुए। जिस देश में जन-साधारण की जयध्वनि इतनी सुलभ और इतनी सस्ती है, मीरजाफ़र ने उसी देश में जन्म ग्रहण किया था; अतएव स्वार्थवश उनकी जर्जर देह सहसा सबल हो उठी। अंग्रेज़-शिविर में उनके प्रवेश करते ही अंग्रेज़ सेना डंका बजाकर युद्ध के लिए आगे बढ़ने लगी।

अंग्रेज़ों ने इस युद्ध के सम्बन्ध में जो घोषणा पत्र (यह घोषणापत्र इस परिच्छेद के आरम्भ में दिया जा चुका है) प्रचारित किया था, उसे पढ़कर उसकी सत्यनिष्ठा की प्रशंसा करने की इच्छा नहीं होती; किन्तु अधिकांश युद्ध-घोषणापत्रों का यही रूप दीख पड़ता है। उनसे इतिहास को लज्जा नहीं आती; इससे भी इतिहास लज्जित नहीं हुआ। मीरक़ासिम का, अंग्रेज़ जाति और कम्पनी के विरुद्ध कुछ भी अत्याचार करने का प्रमाण नहीं मिलता। उनका दोष केवल इतना ही था कि उन्होंने कम्पनी के कुछ स्वार्थपरायण कर्मचारियों के अन्याय एवं उत्पीड़न को बन्द करने की चेष्टा की थी। उनकी इस स्वाधीन वाणिज्य-नीति के सफल होने पर उन स्वार्थी अंग्रेज़ों का व्यक्तिगत स्वार्थ नष्ट हो जाता, अंग्रेज़ जाति वा कम्पनी की कुछ हानि न होती; इतना ही नहीं, उन कर्मचारियों का गुप्त वाणिज्य दूर हो जाने पर कम्पनी के व्यापार की वृद्धि होती। ऐसी अवस्था में अंग्रेज़ जाति और कम्पनी के नाम की दुहाई देकर मीरक़ासिम के विरुद्ध युद्ध-घोषणा करके कम्पनी की आमदनी ख़र्च करना कलकत्ते के अंग्रेज़ों के लिए कितना न्याय-संगत था, इतिहास ने इसका विचार करने की चेष्टा नहीं की है। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि इस अनुचित कार्य में कलकत्ता के अंग्रेज़ कर्मचारियों की ही इच्छा नहीं छिपी

हुई थी वरन् कम्पनी भी भीतर ही भीतर स्वार्थ से उन्मत्त हो उठी थी। इसीलिए तो इसने इन सब बातों के विरुद्ध कुछ कार्रवाई नहीं की। युद्ध का परिणाम यदि बुरा हुआ होता तो वह अवश्य ही कर्मचारियों को इस घोषणापत्र के लिए दण्डित करती।

अंग्रेज़ों के साहस की बात तो जग-विख्यात है; उनके साहस की कहानी पढ़कर चकित हो जाना पड़ता है; किन्तु इस बार अंग्रेज़ों ने जो-कुछ किया, वह साहस नहीं, उन्मत्तता थी। उपयुक्त सेना नहीं थी—तहवील में दस हज़ार से अधिक रुपये नहीं थे—फिर भी मेजर आदम को युद्ध के लिए यात्रा करने की आज्ञा हुई।

जिन सब अंग्रेज़ वीरों का नाम इतिहास में विख्यात है, उनमें से किसी को भी ऐसी असहाय अवस्था में आत्म-विसर्जन करने का आदेश नहीं मिला था। किन्तु ऐसी असहाय अवस्था में भी मेजर आदम ने कुछ हिचकिचाहट प्रकट नहीं की। सब समझते थे कि मीरक़ासिम के साथ शत्रुता करने का अर्थ सर्वनाश है—युद्ध करने पर भी वही होगा, जो चुपचाप बैठने पर होगा; किन्तु आशा मात्र के सहारे अंग्रेज़ सौदागरों ने युद्ध की घोषणा कर दी।

और कोई आशा नहीं थी—बस मीरजाफ़र ही पर एकमात्र आशा थी। बंगाल में मीरजाफ़र के समान देशद्रोहियों का अभाव नहीं था; मीरजाफ़र के समान मूर्ख और आदर-लोलुप अकर्मण्य ज़मींदारों की भी कमी नहीं थी। अंग्रेज़ों को आशा थी कि मीरजाफ़र को किसी प्रकार गद्दी पर बैठा देने से ही इन बंगाली सरदारों को अपने पक्ष में किया जा सकता है,

क्योंकि उस समय निश्चय ही देश दो दलों में विभक्त हो जायगा। कुछ लोग क़ासिमअली का पक्ष लेंगे और कुछ लोग मीर-जाफ़र का। इनमें से एक दल को अपनी ओर मिला लेने से सहज ही हमारा (अंग्रेजों का) उद्देश्य पूरा हो सकेगा। कर्नल क्लाइव के इस नीति का रास्ता दिखलाने पर समस्त अंग्रेज व्यापारी-समाज भी उसके अनुसार चलने को तैयार हो गया। विदेश में शक्ति-विस्तार के लिए यही एक अमोघ नीति है। भारत के इतिहास में इस नीति का प्रधान पार्ट रहा है; इसकी शक्ति का नृत्य पग-पग पर दिखाई पड़ता है। अंग्रेज व्यापारियों ने भारत में पदार्पण करने के बाद ही यह भली-भाँति समझ लिया था कि 'भारतवासी मनुष्यत्व-हीन हैं; वे स्वदेश का सर्व-नाश करके भी स्वार्थ के लिए लालायित रहने वाली जाति के जीव हैं; व्यक्तिगत स्वार्थ के नशे की तीव्रता बर्दाश्त करने की शक्ति का उनमें अभाव है।' ऐसी कमज़ोर और चरित्र-हीन जाति के ऊपर इस विभाजक नीति का प्रयोग करने में अंग्रेज़ क्यों आगा-पीछा करते ?

भारत और विशेषतः बंगाल के कला-कौशल और वाणिज्य की रक्षा के लिए मीरक़ासिम सर्वस्व निछावर करने को भी तैयार थे, किन्तु बंगाल-निवासियों ने मीरक़ासिम को भूलकर मीरजाफ़र का पक्ष क्यों लिया ? जिन्होंने सिराजुद्दौला के सिंहासन पर शौकतजंग को बिठाने की चेष्टा की और उसमें विफल-मनोरथ हो पीछे मीरजाफ़र-जैसे व्यक्ति को देश का शासक बनाया, उनका अपने स्वार्थ के अतिरिक्त और किस कारण से दूसरे का पक्ष लेना सम्भव है ? न्याय-पूर्ण शासन कठोर हुआ करता है।

लेकर सेना में प्रवेश करते थे या हल चलाकर खेती करते थे। कोई-कोई जो धनी थे, अपने संचित ऐश्वर्य से विलासमय जीवन व्यतीत करते थे। व्यापार करके अर्थोपार्जन करने वालों की संख्या उनमें थोड़ी ही थी। यूरोपीय व्यापारियों के साथ सम्बन्ध जोड़कर धन कमाने की नई-नई रीतियों का आविष्कार करने वालों में हिन्दू ही अधिक थे। मीरक़ासिम ने पहले ही देख लिया था कि इस श्रेणी के स्वार्थ-लुब्ध हिन्दू धनिकों में अंग्रेज़ों की भक्ति सबसे प्रबल है। अतएव सोच-समझकर कमज़ोरियों से राज्य की रक्षा के लिए उन्होंने अधिकांश पदों पर ऐसे ही मुसलमानों को नियुक्त किया था, जो अंग्रेज़ों से अनुराग नहीं रखते थे। इस बात को लेकर और इसका मनमाना अर्थ करके कितने ही हिन्दू मीरक़ासिम के शत्रु हो गये थे। इस प्रकार के देश और इस प्रकार के क्षेत्र में मीरजाफ़र को नवाब कहकर सलाम करते ही, अंग्रेज़ों की भाँति अनेक शक्तिमान भारतीय भी मीरजाफ़र को नवाब कहने को लालायित हो उठे, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है।

घोषणा-पत्र के प्रचार के साथ ही मीरक़ासिम समझ गये थे कि मीरजाफ़र के साथ अंग्रेज़ी सेना के मुर्शिदाबाद में प्रवेश करते ही ये सब स्वार्थी भारतीय मीरजाफ़र के चरणों पर झुक पड़ेंगे। अतः सबसे पहले मुर्शिदाबाद को सुरक्षित करने का विचार उन्होंने किया। उस समय मुर्शिदाबाद एकदम अरक्षित अवस्था में था। उसकी रक्षा के लिए बहुत काफ़ी सेना उधर भेजी गई। राजधानी सुरक्षित करके यह सेना क़ासिमबाज़ार की अंग्रेज़ी कोठी को घेर लेगी और आवश्यकता पड़ने पर अंग्रेज़ी सेना की

गति रोककर अंग्रेज़ी शक्ति को चूर करेगी, ऐसी आशा और योजना मीरक़ासिम के हृदय में अंकुरित हो उठी थी। इसके लिए तैयारी करने में उन्होंने त्रुटि नहीं की। सेनानायकों में जो स्वामी-भक्त और विश्वास-पात्र थे, वे ही मुर्शिदाबाद भेजे गये। मुर्शिदाबाद के शासक सैयद मुहम्मदख़ाँ अकेले ही क़ासिमबाज़ार की अंग्रेज़ी कोठी को धूल में मिला सकते थे; तथापि जाफ़रख़ाँ, आलमख़ाँ एवं शेख़ हैबतउल्ला नामक तीन विख्यात सेनापति उनसे मिलकर कार्य करने के लिए मुर्शिदाबाद की ओर भेजे गये। उनके पहुँचने के साथ ही क़ासिमबाज़ार की अंग्रेज़ी कोठी घेर ली गई।

इतनी सेना के सामने अंग्रेज़-कोठी अरक्षित थी, ऐसा कहना अनुचित न होगा। दो-तीन पल्टन शिक्षित सेना, दो-एक पल्टन अर्द्ध-शिक्षित बरक़न्दाज़ एव थोड़े अंग्रेज़ों को छोड़ वहाँ रक्षा का और कोई सामान नहीं था। वे लोग क्या करते,—युद्ध के प्रथम उपक्रम में ही हार स्वीकार करने को बाध्य होना पड़ा! अंग्रेज़ लोग मुँगेर और फिर वहाँ से पटना भेजे गये—पटना का कारागार उनसे भर गया। पल्टनें मीरक़ासिम की सेना में मिला ली गईं; जिन सैनिकों ने इसमें असम्मति प्रकाश की, उन्हें छुट्टी दे दी गई। अंग्रेज़-सेना के कलकत्ता से अधिक दूर अग्रसर होने के पूर्व ही क़ासिमबाजार से इस प्रकार अंग्रेज़ों का नाम लोप हो गया!

मीरक़ासिम की सुशिक्षित अश्वारोही सेना वीरभूमि प्रान्त में पड़ाव डाले हुई थी। उसके नायक थे—मुहम्मदतक़ीख़ाँ। साहस, कर्त्तव्य-निष्ठा और रण-कौशल में तक़ीख़ाँ सब प्रकार

के समाज के श्रद्धा-भाजन थे। मुग़ल-साम्राज्य के इस अधःपतन युग में उनके समान मुसलमान प्रभु-भक्त सेनापति यदि अधिक होते तो इतिहास में मुसलमानों का नाम कलंकित न होता। मीरक़ासिम ने इस समय उन्हें भी मुर्शिदाबाद भेज दिया।

अन्य सेनापतियों को सम्मुख युद्ध का भार देकर स्वयं मुँगेर-दुर्ग में पड़े रहने के कारण अंग्रेज इतिहास-लेखकों ने मीरक़ासिम को रण-भीरु कहा है। किस कारण से मीरक़ासिम ने स्वयं सेना-संचालन का भार ग्रहण नहीं किया, इतिहास में इसका कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। वह प्रधान सेनापति गुर्गनखाँ के साथ मुँगेर में रहकर परामर्श करने एवं जिस जगह जिस सामान और जितनी सेना भेजने की आवश्यकता थी, उसकी व्यवस्था करने लगे। अन्त तक स्वदेश-रक्षार्थ प्राण-पण से युद्ध करने के लिए सेना एवं शस्त्र-संग्रह में प्रवृत्त होना उन्होंने उचित समझा और यही उस समय उचित भी था।

इधर अंग्रेज-सेना असहाय अवस्था में धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगी। सेनापति का असीम साहस एवं अटूट अध्यवसाय ही इसका प्रधान सहायक था। रसद और अस्त्र-शस्त्र ढोने के लिए उपयोगी गाड़ियों एवं वाहनों की कमी के कारण अनेक प्रकार का अतिरिक्त परिश्रम करना पड़ता था। एक गरम देश में इस प्रकार युद्ध-यात्रा करना सहज नहीं है। दिन-दिन सेना थककर सुस्त होने लगी। पलासी-युद्ध के समय जिस पथ से सेनापति क्लाइव ने धीरे-धीरे अपनी सेना को अग्रसर किया था, यह सेना भी उसी पथ से आगे बढ़ रही थी। उस बार मीरजाफ़र से सैनिक सहायता की आशा थी और इसबार केवल मीरजाफ़र ही

था; किन्तु मीरजाफ़र के नाम की दुहाई देकर अंग्रेज़-सेना अनेक प्रकार से फ़ायदा उठाने लगी।

अंग्रेज़-शिविर में आकर वृद्ध मीरजाफ़र नुमाइशी नवाब की भाँति अभिनय करने लगे। उन्होंने जो सन्धि-पत्र लिखाकर अपने को अंग्रेज़ों के हाथ बेचा, उससे बंगाल से स्वाधीनता की छाया भी विलुप्त हो गई। जिन शुभचिन्तकों ने सिराजुद्दौला को पदच्युत करके मीरजाफ़र को सिंहासन पर बिठाया था, उन्होंने पुनः मीरज़ाफ़र को नवाब कहकर अभिवादन किया। इसबार फिर बंगाल-निवासी स्वदेश को भूल व्यक्तिगत ऐश्वर्य बढ़ाने के लिए पागल हो उठे। इन स्वदेश-द्रोही एवं भूले हुए मित्रों की सहायता पाकर मीरजाफ़र अंग्रेज़-शिविर में रहने लगे।

सब प्रकार की विपत्तियों से घिरा हुआ अंग्रेज़-वणिक समाज मुक्ति पाने के लिए प्राण-पण से इस युद्ध में लग गया था किन्तु धन की कमी के कारण अंग्रेज़ों की आशा पर पानी फिर रहा था; मीरजाफ़र ने युद्ध-व्यय के लिए तीस लाख रुपये प्रदान करने का वचन देकर उनकी भुजाओं में बल तथा छाती में साहस का संचार कर दिया—बृटिश-वाहिनी विपुल-विक्रम से आगे बढ़ने लगी।

मीरक़ासिम के स्वयं सेना-संचालन का भार न ग्रहण करने का यद्यपि कोई स्पष्ट कारण नहीं मिलता, फिर भी तात्कालिक अंग्रेज-लेखकों की पुस्तकों में इसका किंचित आभास मिलता है। संकल्प-साधन के लिए मीरक़ासिम को विदेशी रण-पण्डितों पर निर्भर करना पड़ा था। वे सभी नवाब के प्रिय-पात्र कहे जाकर परिचित थे। फिर भी जिस स्थिति में मीरक़ासिम ने राज्य-

सूत्र हाथ में लिया था, उस स्थिति में रहकर उनपर आन्तरिक विश्वास रखना उनके जैसे नीति-निपुण व्यक्ति के लिए कठिन था। सेनापति गुर्गनखाँ उनके दाहिने हाथ समझे जाते थे, तथापि गुर्गनखाँ एवं कितने ही अंग्रेजों में घनिष्ठता थी। मीरक़ासिम ने सब समझ-बूझकर ही अंग्रेजों की गति रोकने के लिए मुसलमान सेनानायकों को नियुक्त किया था। गुर्गनखाँ को मुँगेर में रहकर नवाब को उपदेश देने की आज्ञा मिली। क्या इस व्यवस्था में किसी प्रकार के गुप्त संकल्प की छाया नहीं दीख पड़ती? एक समकालिक अंग्रेज-लेखक ने लिखा है—"मीरक़ासिम में समर-क्षेत्र की सारी कठिनाइयों को सहने की शक्ति थी; उनमें साहस और समर-कौशल का आभाव भी नहीं था; किन्तु 'स्वयं युद्ध-क्षेत्र में पदार्पण करने पर सम्भव है कि कृतघ्न सेनानायकगण शत्रु के हाथ में सौंप दें' यह सोच कर ही उन्होंने युद्ध-भूमि पर पदार्पण नहीं किया!"[1] उस समय की सम्पूर्ण बातों और परिस्थितियों पर विचारकर देखने से उक्त अंग्रेज-लेखक की यह बात ग़लत नहीं मालूम पड़ती। केवल बाहु-बल के भरोसे ही अंग्रेजों ने मीरक़ासिम से युद्ध करने का साहस किया था, इसपर विश्वास नहीं किया जा सकता। जिनके पास धन नहीं, सेना नहीं, उन्होंने किस साहस से युद्ध-घोषणा की थी, आगे की घटनाओं में इसका कुछ-कुछ परिचय मिल जाता है।

1 *Mir Kasim was inured to the hardships of the field; he united the gallantry of the soldier with the sagacity of the statesman; but he did not hazard his own person in any engagement where his officers might have made a merit of their treachery in betraying him.--TRANSACTIONS IN INDIA FROM 1756 TO 1783.*
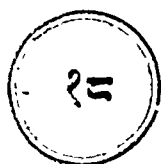
कटवा का युद्ध

The next day Mahammed Takky Khan attacked them. Success was for sometime doubtful. He had two horses killed under him, and had mounted a third when a ball lodging in his forehead, he expired.

—*Scott's History of Bengal.*

सिंहासन पाने की आशा से मीरजाफ़र ने दूसरी बार अंग्रेज़ों से जो सन्धि की, उसकी शर्त्तों से अंग्रेज़ सौदागर ख़ूब उत्साहित हुए। मीरक़ासिम द्वारा प्रचारित अंग्रेज़ों के अनुकूल सब आदेश ज्यों के त्यों रहेंगे; प्रतिकूल आदेश नष्ट कर दिये जायँगे;—अंग्रेज़ों को छोड़ और सब व्यापारियों को

कर देना पड़ेगा; अंग्रेज़ों के सिवाय और यूरोपीय सौदागर क़िले न बनवा सकेंगे;—युद्ध-व्यय के लिए कम्पनी को तीस लाख रुपये देने होंगे और भविष्य में भी सेना का व्यय देना पड़ेगा;—अंग्रेज़-सेना को पचीस लाख एवं अंग्रेज नौ-सेना को साढ़े बारह लाख रुपये पुरस्कार मिलेंगे;—ऐसी सन्धि से अंग्रेज आनन्दित न होंगे तो क्या होंगे ?

जुलाई गरमी का महीना है। सूर्य के प्रखरताप से पृथ्वी लाल हो जाती है। ऐसे समय सहसा युद्ध-यात्रा करना सहज नहीं है। किन्तु लोभ की तीव्र-ताड़ना से ऐसे ही समय अंग्रेज़-सेना युद्ध के लिए बढ़ने लगी, पर अजय नदी के किनारे पहुँचते ही उसे रुकना पड़ा क्योंकि वहाँ जाफ़रखाँ, आलमखाँ, एवं शेख़ हयातुल्ला की सेनायें उसका सामना करने के लिए पहले से ही अड़ी हुई थीं। मुहम्मदतकीख़ाँ के अनुपस्थित होते हुए भी नवाब-सेना ने वीर-भाव से अंग्रेज़ी-सेना पर आक्रमण किया। नवाब-सेना ने इस प्रकार आक्रान्त होकर अंग्रेज़-सेना-नायक लेफ्टेंएट ग्लेन, गोलन्दाजों एवं सिपाहियों के साहस से अपनी रक्षा करने की चेष्टा करने लगे। नवाब-सेना के पास तोपख़ाना नहीं था अतएव अंग्रेज़-सेना गोला-बारी करके उसे त्रस्त करने फिर भी चार घण्टे तक उसके वीर सैनिकों ने घमासान युद्ध किया। इस युद्ध में दोनों ही मारे गये। अंग्रेज-सेनापति, विजयी होकर भी सुखी नहीं हुआ वरन् यूरोपीय गोलन्दाजों एवं सार्जेण्टों में से अधिकांश की मृत्यु हो जाने के कारण अंग्रेज शिविर में हाहाकार मच गया। नवाब-सेना ने तीन बार अंग्रेज़ों से उनका तोपख़ाना छीना किन्तु तीनों बार उनके वेतन-भोगी वीर-भारतीय

सिपाहियों ने उसका उद्धार कर अंग्रेज़ों की लाज बचा ली। इस युद्ध में ग्लेन ने देखा कि 'भारतीयों के द्वारा ही भारतीय पराजित हुए।' सिपाहियों के न रहने पर सम्पूर्ण गोरी पल्टन को नवाब-सेना अपनी क्रोधाग्नि में भून डालती।

जय-लाभ करके भी अंग्रेज़-सेनापति ने पड़ाव नहीं डाला वरन् मेजर आदम की सेना से मिलने के लिए आगे की यात्रा की। कटवा के क़िले में नाम-मात्र के सिपाही थे, अतएव वे अंग्रेज़-सेना की गति रोक नहीं सके। ग्लेन ने सायंकाल के समय दुर्ग में प्रवेश करके रसद इत्यादि पर अधिकार कर लिया। तक़ीख़ाँ के सेना-नायकों में यदि ईर्ष्या का भाव न होता तो अंग्रेज़-सेना के लिए जय प्राप्त कर लेना कठिन था।[१] तक़ीख़ाँ अकेले ही अंग्रेज़ों के आक्रमण की प्रतीक्षा में व्यूह-रचना करने लगे। उन्नीसवीं जुलाई को दोनों दल भिड़ गये। यह युद्ध इतिहास में कटवा-युद्ध के नाम से परिचित है, किन्तु वस्तुतः युद्ध-स्थल पलासी के समीप, भागीरथी के पश्चिम तट पर कटवा से कुछ दूर था।

हल्दी-घाटी के रण-रंग में महावीर प्रताप ने सात स्थानों पर आहत होकर भी युद्ध-क्षेत्र में सेना का संचालन किया था। पृथ्वी के सामरिक इतिहास में वैसे अद्भुत रण-पाण्डित्य के उदाहरण अधिक नहीं पाये जाते। कटवा के युद्ध-क्षेत्र में मुहम्मद तक़ीख़ाँ भी उसी प्रकार के वीरत्व का कीर्ति-स्तम्भ स्थापित कर गये हैं। उनकी रुहेली और अफ़ग़ान पल्टनों के सिपाहियों ने

1 *Owing to some jealousy on the part of their commanders, the irregular troops, which had been so maltreated by Glenn on the 17th refused to join him.*--MALLESON'S DECISIVE BATTLES OF INDIA, P. 155.

जिस प्रकार वीरत्व और साहस का परिचय दिया था उससे अधिक वीरता और साहस का प्रदर्शन अच्छी से अच्छी और सुशिक्षित सेना के लिए भी दुष्कर है। गगन-विकम्पनकारी हाहाकार में कुछ स्पष्ट नहीं समझ पड़ता था। कौन हारेगा, कौन जीतेगा, इसका उस समय अनुमान करना भी कठिन था। तक़ीख़ाँ आहत हुए, उनका घोड़ा मारा गया, फिर भी उनकी भौं टेढ़ी न हुई। पहले घोड़े के गिरते ही चट दूसरे घोड़े पर सवार हो आहत तक़ीख़ाँ ने सबसे आगे बढ़कर शत्रु पर आक्रमण किया। अंग्रेज सेना उस तीव्रवेग को सह न सकी; वह धीरे-धीरे पीछे हटने लगी। तक़ीख़ाँ के घाव से ख़ून का फ़ौवारा छूट रहा था; उसे यत्न-पूर्वक वस्त्र से बाँध दूसरे घोड़े पर सवार हो जिस समय वह सेना-संचालन की व्यवस्था कर रहे थे, उस समय उनका पार्श्वचर (बाडी गार्ड) बोला—"क्या कर रहे हैं? ख़ून का वेग बढ़ता ही जाता है, इस समय युद्ध-भूमि से लौट चलिए।" तक़ीख़ाँ की भौंहें तन गईं। अनुचर की ओर देखकर बोले—"फिरूँगा? किस लिए फिरूँगा? लौट जाकर अपना काला मुँह मीरक़ासिम को दिखाने के लिए? आगे बढ़ो।" सेना अग्रसर हुई। अंग्रेजी फ़ौज नदी के खाते में जा छिपी थी। उसका एक भाग बन्दूक़ों से सज्जित होकर आड़ में छिपा था। नदी जोरों में बह रही थी। तक़ीख़ाँ तुरन्त वहाँ जा पहुँचे और फ़ौज लाने की व्यवस्था कर रहे थे कि शत्रु के आड़ में छिपे हुए सैनिकों ने उनके मुख की ओर लक्ष्य करके बन्दूकों की बाढ़ दाग दी। कई गोलियाँ मस्तक छेदकर निकल गईं। तक़ीख़ाँ बेजान होकर भूपतित हुए। उनके सैकड़ों सहचर तोपों की बाढ़ में भुन गये।

अंग्रेज़ों की जय हुई। जिनकी विजय निश्चिय थी, वेही ऐसे वीर सेनापति की आकस्मिक मृत्यु से पराजित हुए।※

यही तक़ीख़ाँ का संक्षिप्त इतिहास है; यही पराजय मीर-क़ासिम के सर्वनाश की पहली सीढ़ी थी। मुताख़रीन हो या जन-साधारण में प्रचलित इतिहास हो, सर्वत्र ही यह बात दीख पड़ती है। केवल बंकिम बाबू ने अपने उपन्यास को मनोरंजक बनाने के लिए जान-बूझकर इतिहास की हत्या की है। मीर-क़ासिम के स्वयं युद्ध-क्षेत्र में न आने तथा तक़ीख़ाँ-जैसे प्रभु-भक्त वीर के परलोक सिधारने के कारण ही अंग्रेज़ों के लिए विजय

※ इस युद्ध का वर्णन ग़ुलामहुसेन के 'मुताख़रीन', मुस्तफ़ा की टीका; स्काट एवं मेलीसन के इतिहासों एवं अन्यान्य तात्कालिक लेखकों की पुस्तकों में विस्तार-पूर्वक किया गया है। यहाँ 'मुताख़रीन' के अंग्रेज़ी अनुवाद से एक अंश देते हैं—

*Two or three days after, that is fifty of Mohirram, in the year 1177 of the Hijira, Mahammed-taky-qhan came out with resolution to oppose the enemy's march. Putting the foot of courage in the stirrup of steadiness he mounted a, horse whose motions were as fleet as the moments of his unfortunate rider's existence. * * The moment was becoming critical, when a ball of cannon wounded Mohammed-taky-qhan in the foot, and killed his horse, which fell sprawling on the ground. The General, without betraying any anguish, mounted another, and continusd to advance, and to exhort his men ; and he was now very near the ranks of the English who on their side advanced. * * * At this moment, a musket-ball entering at his shoulder came out on the opposite side. That brave man without betraying any emotion, assembled the hemn of his garment, and throwing it over his shodlder, to conceal his men, still advanced. The English were on the point of retreating, but they had placed an ambuscade at the bottom of a little river which was full on his passage ; and the General being arrived there, was looking out for a passage to come to handblows with them. When the ambuscademen, rising at once, made a sudden discharge full in his face, overthrew numbers of his followers, and lodging a bullet in his forehead, that incomparable hero, who was the main, prop of Mir-cassim-qhan's fortune hastened into eternity in the middle of his slaughtered soldiers.'*

युद्ध करते थे। प्रधान पुरुष वा सेनापति के भागते ही सेना भी भाग खड़ी होती थी। तक़ीखाँ की आकस्मिक मृत्यु से कटवा के युद्ध में भी यही बात घटित हो गई।

जिनमें स्वदेश का भाव ही नहीं था, उनमें स्वदेश-द्रोह का भाव कहाँ से आ सकता था? वे तो केवल अपने ही लिए उन्मत्त थे। इसीलिए वे आपस के झगड़े में स्वदेश की बात एकदम ही भूल जाते थे। तक़ीखाँ की हार समग्र जाति की-समग्र देश की हार है, यह बात सहयोगी सेना-नायकों ने नहीं सोची थी। व्यक्तिगत हिंसा-द्वेष में अपनी विचार-बुद्धि खोकर वे स्वदेश की बात ही भूल गये थे। जो व्यक्ति स्वार्थ के लिए ही अस्त्र धारण करते थे, वे तो अपने लाभ के लिए आवश्यकता पड़ने पर अन्नदाता के गले पर भी छुरी फेरने में संकोच न करते थे!

बहुत ही थोड़े आदमियों ने इस हीन स्वार्थ-सीमा को लाँघकर प्रकृत वीरत्व की मर्य्यादा की रक्षा करना सीखा था। सिराज के अनेक सेना-नायकों में मोहनलाल एवं मीरदमन प्रभृति दो-एक व्यक्ति ही इस श्रेणी के थे। मीरक़ासिम के पास तो एक ही आदमी था—मुहम्मद तक़ीखाँ। पहले ही युद्ध में अपनी वह निधि खोकर मीरक़ासिम के लिए अपने अधःपतन की गति रोकना असंभव हो गया।

बंगाल का इतिहास कलंक-कहानी से भरा हुआ है! राजा, प्रजा, सभासद, सेनापति, किसकी बात कही जाय? सबके ही माथे पर कलंक की रेखा दीख पड़ती है! जो दो-एक आदमी इस सीमा से अपने को बाहर कर गये, उनकी कथा भी हम भूल गये हैं! यदि ऐसा न होता तो तक़ीखाँ-जैसे कर्त्तव्यनिष्ठ पुरुष

के नाम पर उपन्यास में ऐसा अत्याचार न किया जाता। वीर-चरित्र में इस प्रकार का कलंक-लेपन करके भी उसका हृदय व्यथित नहीं होता, उसी देश की जनता में उक्त उपन्यास को आदर मिला है। निःपक्ष इतिहास-लेखक इसे हमारी नीचता के अतिरिक्त और क्या कहेंगे? ऐसी बातें केवल इसी देश में संभव हैं। क्लाइव बार-बार विश्वासघात करके भी अपने देश के इतिहास में महापुरुष कहलाकर अमर हो गया है! पराजित न होने पर इस देश में भी यह सम्भव न होता; पर, हाय, वह बात नहीं हुई!
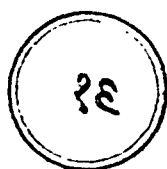
गिरिया का युद्ध

It was at this place that Mir Kasim had resolved to fight his decisive battle,—a battle which should drive the English into the sea, or be the certain precurser of his ruin. —*Malleson.*

सेनापति-हीन होने के कारण कटवा-युद्ध में पराजित होकर मीरक़ासिम की सेना भाग खड़ी हुई। सुयोग पा कटवा के छोटे से क़िले पर अंग्रजों ने अपना अधिकार करके उसकी यथासंभव मरम्मत की और उसकी रक्षा के लिए सिपाहियों की एक पलटन छोड़ मुर्शिदाबाद की ओर अग्रसर हुए। पलासी-क्षेत्र से जिस रास्ते होकर कर्नल क्लाइव ने मुर्शिदा-

बाद की यात्रा की थी, उसी परिचित पथ से अंग्रेजी सेना आगे बढ़ने लगी।

मीरक़ासिम ने मुर्शिदाबाद में काफ़ी सेना भेजी थी। यदि उनके द्वारा नगर-रक्षा का उत्तम आयोजन किया गया होता तो अंग्रेजी सेना के लिए नगर में प्रवेश करना कठिन था। किन्तु मोती-झील में बहुत थोड़े सिपाहियों को छोड़कर शेष सेना इधर-उधर छावनी डाल असावधानी के साथ दिन बिता रही थी। यथासाध्य महल की रक्षा का प्रयत्न करके भी मोतीझील के थोड़े सिपाही शत्रु-सेना की गति न रोक सके। तोप के गोलों की वर्षा और गोलियों की बौछार से देखते-देखते वह इतिहास-विख्यात रमणीय प्रासाद-अवली श्रीहीन हो गई।

मोतीझील का वह गौरव फिर नहीं लौटा। अतीत की विषाद-मयी करुण कहानी कहने के लिए आज भी वह खण्डहर के रूप में वर्तमान है। कुछ दिनों तक अंग्रेज कर्मचारियों ने इसमें निवास किया था, किन्तु इस समय वह बात भी नहीं है। एक दिन यही महल मुगलों की अनुपम विभव-छटा में मुर्शिदाबाद के नागरिक सौन्दर्य से विदेशी पर्य्यटकों को आश्चर्य-चकित करता था। वह बात आज दूसरे आश्चर्य की सृष्टि करती है। मुर्शिदाबाद में पर्याप्त नवाब सेना के रहते हुए भी अंग्रेजी सेना ने इतनी आसानी से कैसे नगर पर अधिकार कर लिया, यह एक ऐतिहासिक आश्चर्य का विषय समझ पड़ता है। बंगाल के इतिहास की इन सब घटनाओं की आलोचना करके विदेशी लेखक भारतीयों को भीरु और कापुरुष लिख गये हैं। अपनी पराजय और हीनता को देखते हुए यह बात असत्य भी नहीं कही जा सकती। पर, हाँ,

इतना ध्यान में रखना आवश्यक है कि इन सब घटनाओं के मूल में नवाब के सेनानायकों की कर्त्तव्य-हीनता ही प्रधान रूप धारण कर बैठी थी। इन सेनानायकों के भलीभाँति अपना कर्त्तव्य-पालन करने पर बंगाल के इतिहास का आज कुछ दूसरा ही रूप होता। अंग्रेज़ी सेना के मुर्शिदाबाद के पास पहुँचने पर नवाब-सेना राजधानी की रक्षा की चेष्टा छोड़ गिरिया-युद्धभूमि में एकत्र होने लगी। राजधानी के प्रति की गई यह उपेक्षा ही अंग्रेज़ों की विजय का प्रधान कारण थी।

नगर की रक्षा में असमर्थ हो मुर्शिदाबाद के शासक के भागते ही अंग्रेज़ों ने पहले क़ासिमबाज़ार वाली कोठी पर अधिकार किया। जिस समय मीरजाफ़र ने अनुगतों के साथ समारोह-पूर्वक नगर में प्रवेश करके अलीवर्दीखाँ के पुराने महल को अपना निवासस्थान बनाया, उस समय मुर्शिदाबाद का राजपथ श्मशान की भाँति श्रीहीन हो रहा था। विजयोन्मत्त सैनिक नागरिकों को त्रस्त करने लगे; जहाँ जो पाते, लूट लेते। क्षमताशून्य नाम-मात्र के नये नवाब ने अंग्रेज़ों की कृपा से सिंहासन पर पदार्पण किया, किन्तु उनका यह राज्याभिनय अदृष्ट का उपहास ही मालूम पड़ा!

अब वे दिन नहीं रहे! मीरक़ासिम ने समझा था कि मुसलमानों की राजधानी होने पर भी मुर्शिदाबाद में धन-कुबेर जगतसेठ का ही सबसे अधिक प्राधान्य है। उनसे ऋण लेकर व्यापारादि करने के कारण सभी अमीर-उमरा, राजा-ज़मींदार एवं व्यापारी उनके अनुगत होकर रहते थे। जगतसेठ अंग्रेज़ों के अकृत्रिम बन्धु थे। जगतसेठ के न होने पर मीरजाफ़र के लिए

भी सिराजुद्दौला के विरुद्ध षड्यंत्र करना कठिन था। इसीलिए युद्ध की सम्भावना उपस्थित होते ही जगतसेठ राजवल्लभ, कृष्ण-चन्द्र इत्यादि अंग्रेज-बन्धुओं को मुँगेर के कारागार में क़ैद कर दिया गया। मीरजाफ़र के मुर्शिदाबाद में प्रवेश करते ही अपने दुःखों के अवसान का दिन आया समझ इस प्रकार के गण्य-मान्य नागरिकों की आशा-लता हरी हो गई। न जाने किसके भाग्य में कब क्या होना लिखा है, यह सोचते-सोचते जो मीर-क़ासिम के भय से मृतप्राय हो जीवन की घड़ियाँ बिता रहे थे, वे इस परिवर्तन से प्रसन्न हो उठे। अमीर-उमरा लोग इस नये राज-विद्रोह से प्रसन्न न होकर भी जीविका एवं स्वार्थ के लिए आदर-पूर्वक मीरजाफ़र के आगे झुककर दरबार की शोभा बढ़ाने लगे। वाणिज्य-लुब्ध सौदागर लाभ की आशा-मात्र से उत्फुल्ल हो उठे। मीरक़ासिम सन्देहवश प्रायः हिन्दुओं के साथ ज्यादती करते थे, अतएव हिन्दू भी उनसे खिन्न थे। वे भी मीरजाफ़र को पाकर प्रसन्न हुए। राजा के परिवर्तन से समग्र देश का भला होगा या बुरा, इस बात पर विचार करने वाले लोग उस समय बहुत ही कम थे। व्यक्तिगत स्वार्थ की रक्षा के लिए सभी व्याकुल हो रहे थे। मीरक़ासिम की हार, मीरजाफ़र के अभ्युदय, स्वाधीन वाणिज्य के सर्वनाश एवं अंग्रेज़ वणिकों की पदोन्नति से स्वार्थ-सिद्धि का सुयोग पा मुर्शिदाबाद के गण्य-मान्य लोग धीरे-धीरे मीरजाफ़र के पक्ष में मिल गये।[१] देश की प्रजा के सुख-दुःख

1 *The more respectable inhabitants submitted quietly, if not cheerfully, to the change of government, and the mercantile community welcomed any arrangement that held out a prospect of delivering them from the exactions of Meer Kasim Khan, whose necessities and suspicions of the Hindus had led him into the commission of great severities towards that class, particularly as regards the family of the Seths, the mem-*

से उदासीन होकर अपने मतलब के लिए अन्धा हो जाने से देश का किस प्रकार सर्वनाश हो जाता है, भारत या बंगाल के इतिहास में इसके उदाहरणों का अभाव नहीं है। मीरजाफ़र के इस अभ्युदय में यह घटना एक बार पुनः प्रकाशित हो पड़ी!

कटवा के युद्ध में अंग्रेज़ों की बड़ी हानि हुई थी, अतएव मुर्शिदाबाद पर अधिकार करते ही वे बल-संचय के लिए यत्न-शील हुए। कटवा-युद्ध में आहत अंग्रेज़ सैनिकों के लिए कासिमबाज़ार की कोठी में चिकित्सालय की स्थापना हुई; उनकी देख-रेख और रक्षा के लिए सिपाही-सेना का एक दल भी वहाँ भेजा गया। इस व्यवस्था के बाद कैप्टन कैम्पबेल सिपाहियों को संग्रह कर एक नई पल्टन बनाने की चेष्टा करने लगे। उधर कलकत्ता के शहर-कोतवाल कैप्टन आयरनसाइड को भी एक नई सेना बनाने की आज्ञा मिली। इन दोनों नायकों ने मुर्शिदाबाद एवं कलकत्ते से बहुत ही थोड़े समय में दो पल्टन सिपाहियों का सङ्गठन कर लिया। उस समय रुपया ख़र्च करने पर थोड़ी ही चेष्टा से सेना का संग्रह किया जा सकता था। आज जो प्रजा अस्त्र धारण करने में असमर्थ है, आज जिसे अस्त्र-शिक्षा का अभ्यास नहीं है, आज जो हथियार रखने के साधारण अधिकार से हीन है, उसकी उस समय दूसरी ही अवस्था थी। विप्लव-कालिक अराजकता में बाहु-बल ही लोगों का प्रधान सहायक था। ज़मींदारों को बाहु-बल से आत्म-रक्षा करनी पड़ती थी; ग्रामवासियों को बाहु-बल के द्वारा ही चोरों एवं डाकुओं के

bers of which wealthy firm he had made prisoners and carried to Monghеer, on account of their supposed connection with the English.--BROOME'S BENGAL ARMY, P. 375.

आक्रमण का जवाब देना पड़ता था; जो निरीह नागरिक थे, उन्हें भी धन-मान की रक्षा के लिए समय-समय पर सिपाही रखने पड़ते थे। बंगाली ब्राह्मणों एवं कायस्थों में भी कितने ही लोग सेना-संचालन करते थे। इसको जानकर ही, विपत्ति पड़ने पर, अंग्रेज इस देश वालों की खुशामद करते फिरते थे। क्लाइव की इतिहास-विख्यात 'लाल पल्टन' की कथा जो भूल गये हैं, उन्हें ये बातें कहाँ याद होंगी, किन्तु उस समय कितने ही बंगवासी वा भारतीय अपनी अद्भुत् वीरता के कारण कम्पनी द्वारा पुरस्कृत हुए थे। आज भी मालदा की 'काल-कटारी' इस प्रकार की जागीर का परिचय दे रही है। इन छोटी-छोटी जागीरों का साधारण नाम 'इंगलिश' है। उनकी उत्पत्ति के इतिहास का अनुसंधान करने पर बंगवासी भारतीयों की पल्टन का हाल सहज ही मालूम होता है। उस जमाने में किसी श्रेणी-विशेष की उपेक्षा नहीं थी। सेना-संगठन के समय जो उसमें प्रविष्ट होना चाहता था, वही योग्य होने पर रख लिया जाता था। जातिगत वा देशगत भेद-भाव प्रचलित नहीं था। अतएव अंग्रेजों ने थोड़े समय में ही दो नई सिपाही पल्टनों का संगठन कर लिया। थोड़े ही दिनों की शिक्षा के बाद ये पल्टनें समर-क्षेत्र में जाने योग्य हो गईं। इस प्रकार मुर्शिदाबाद में एक हज़ार गोरों एवं चार हज़ार सिपाहियों के जुटने पर युद्ध-यात्रा का आयोजन होने लगा।

नवाब-सेना गिरिया के निकट एकत्र हुई थी। मार्कर, समरू एवं मीर आसादौलाखाँ उसके साथ सतर्क भाव से अंग्रेज सेना के आक्रमण की प्रतीक्षा कर रहे थे। यही अन्तिम युद्ध था—या तो अंग्रेजों को समुद्र में सदैव के लिए विलीन होना पड़ेगा, या

फिर सब-कुछ समाप्त हो जायगा—यह सोचकर ही मीरक़ासिम ने सेना-समावेश की थी। कम से कम अंग्रेज़ इतिहास-लेखक तो ऐसा ही लिख गये हैं!

मीरक़ासिम ने जिस स्थान पर सेना एकत्र की थी, उस स्थान पर धैर्य के साथ अंग्रेज़ सेना के आक्रमण की प्रतीक्षा करने पर इस प्रकार पराजित न होना पड़ता। अंग्रेज़ों के सामरिक इतिहास में यह बात स्पष्ट शब्दों में लिखी हुई है। मुर्शिदाबाद से सूती तक गंगा के किनारे एक पुरानी सड़क थी। उसमें एक स्थान पर वाशलीनाला नामक एक छोटी-सी नहर भागीरथी से मिलती थी। नवाब की सेना ने पहले सूती नामक स्थान पर छावनी डाली थी। छावनी के सामने मिट्टी की ऊँची और मज़बूत दीवार बनाकर सामने का भाग सुरक्षित किया था। इस स्थान पर रहकर बीच-बीच में अश्वारोही सैनिकों को भेज अंग्रेज़ों को अस्त-व्यस्त करने की सुविधा थी; उनकी रसद इत्यादि लूटकर उन्हें तितर-बितर करने की भी सम्भावना थी; पर नवाब-सेना ने वैसा नहीं किया। पहली अगस्त को अंग्रेज़-सेना के वाशलीनाला पार करते ही वह अपनी सुरक्षित छावनी छोड़ शत्रु-संहार के लिए आगे बढ़ने लगी।

गोरी पल्टन को बीच में रखकर एवं सिपाहियों को दोनों ओर खड़ाकर अंग्रेज़ों ने व्यूह की रचना की। दूसरी अगस्त को ब्राह्म-मुहूर्त्त में ही दोनों ओर से युद्ध की घोषणा हो गई। यदि इतना ही होता तो भी कोई नुक़सान नहीं था, क्योंकि गोलियाँ लक्ष्य पर नहीं बैठ पाती थीं, पर धीरे-धीरे दोनों दल आगे बढ़ते जाने के कारण बहुत निकट हो पड़े। तब यथा-रीति

युद्ध आरम्भ हुआ। इस युद्ध का विस्तृत विवरण 'मुताखरीन' एवं अन्य इतिहास-ग्रन्थों में मिलता है। इस युद्ध में मीरक़ासिम के मुसलमान सेनानायकों ने जैसे रण-पाण्डित्य का परिचय दिया, वैसी वीरता मार्कर एवं समरू भी न दिखा सके!

मीर आसादौला के अश्वारोही दल में मीर बदरुद्दीन नामक एक नायक था। उसने अपने साहस एवं पराक्रम से अंग्रेज़ों को घबरा दिया। उसने अंग्रेज़ी व्यूह के बायें भाग को भेदकर कैप्टन स्टिवार्ड के दल पर विद्युद्वेग से आक्रमण किया एवं अधिकांश अंग्रेजों को ज़मीन पर सुलाकर छोड़ा। कैप्टन साहब की सेना अब-तब कर रही थी। रक्षा का दूसरा उपाय न देख उसके सैनिक वाशलीनाले में कूदने लगे; कितने ही जल में डूब मरे। यदि मेजर कार्नाक ठीक समय पर सहायतार्थ न आ जाते तो स्टिवार्ड की सेना का एक आदमी भी जीता बचता या नहीं, इसमें सन्देह है; किन्तु ऐसा होने पर भी अंग्रेज़ सेना के नाश की गति का रुक जाना सम्भव नहीं था। पीछे से बदरुद्दीन एवं आगे से मीर नसीर—दोनों ओर से दोनों मुसलमान वीर ऐसे प्रबल प्रताप से अंग्रेज़ी व्यूह के बायें भाग को छिन्न-भिन्न करने लगे कि अंग्रेज़ी सेना दो तोपों के साथ अपना सारा सामान छोड़ भाग खड़ी हुई। ऐसे समय यदि शेरअलीखाँ ने प्रबल वेग से शत्रु के दक्षिण-पार्श्व पर आक्रमण किया होता तो निश्चय ही युद्ध में नवाब की विजय हुई होती। किन्तु वैसा न हुआ। बदरु-दीन के घायल होते ही साहसी अश्वारोहियों की गति रुक गई। इस प्रकार के सहसा भाग्य-परिर्तन से आसादौला हत-बुद्धि हो पड़े। इसी समय सुअवसर देख मेजर आदम ने सारी ताक़त से

नवाब की सेना पर आक्रमण किया। जिन्होंने बाहु-बल से प्राय: जय पा ही ली थी, वे ही नायक को आहत देख घबराकर भाग खड़े हुए। समरू एवं मार्कर सुशिक्षित सेना-दल लेकर पीछे हट गये। इस समय मीर नसीरखाँ ने, पलासी-युद्ध के मोहनलाल की भाँति, वीरता-पूर्वक आगे बढ़कर अंग्रेज़ी सेना की गति रोकने की चेष्टा की; पर अपनी चेष्टा में, अकेले होने के कारण, वह सफल न हुए!

कटवा-युद्ध के विजयी सेनापति ग्लेन ने शरीर-त्याग किया; कैप्टन स्टिवार्ड सेना-रक्षा के लिए युद्ध करने जाकर आठ स्थानों पर आहत हुए; तथापि जय अंग्रेज़ों की हुई। उपयुक्त समर-शिक्षा से सुशिक्षित होकर समरू तथा मार्कर के समान दुर्द्धर्ष वीरों के संचालन-कौशल में युद्ध करके भी नवाबी सेना पराजित क्यों हुई, यह आश्चर्य की बात है। इतने दिनों बाद इस रहस्य का ठीक पता लगाने का कोई उपाय नहीं है। अंग्रेज़ों ने लिखा कि गिरिया का युद्ध विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस युद्ध में अंग्रेज़-सेनानायकों की कर्त्तव्य-परायणता से ही अंग्रेज़ों का मुँह उज्ज्वल हुआ एवं मुसलमानों के पराजित होने पर भी इस युद्ध में मुसलमान सेनानायकों का मुख मलीन नहीं हुआ। बदरुद्दीन, मीरनसीर एवं आसाद्दौला ने इस युद्ध में जैसे साहस और पराक्रम का परिचय दिया, वैसा ही पराक्रम यदि समरू एवं मार्कर भी दिखलाते, तो गिरिया का युद्ध-क्षेत्र ही अंग्रेज़ी सेना का समाधि-स्थल हो जाता।

गिरिया नाम में विश्वासघात की कहानी सदैव के लिए मिल गई है। एक बार इसी जगह अलीवर्दी की विश्वासघातकता से

सरफ़राज़ख़ाँ मारे गये थे। इस बार वहीं मीरक़ासिम का पराभव हुआ।

इसके बाद उधवानाला के अतिरिक्त दूसरे किसी स्थान पर अंग्रेज़ी सेना की गति रोकने की सम्भावना नहीं थी। मीरक़ासिम इसे जानते थे। जय की अपेक्षा पराजय का ही उन्होंने अधिक अनुमान किया था। गिरिया जय करके भी उधवानाला को जय करने की सम्भावना अंग्रेज़ों के लिए नहीं थी। मीरक़ासिम ने सोच-विचारकर उसे पहले से ही सुरक्षित कर रक्खा था।

उधवानाला का युद्ध

In one morning with an army 5000 strong, of whom one-fifth only were Europeans, Adams had stormed a position of enormous strength, defeated 40,000 and destroyed 15000 men, captured upwards of a hundred pieces of cannon, and so impressed his power on the enemy that they had no thought but fight.

—*Col. Malleson.*

उधवानाला-युद्ध का वर्णन करते समय मैलीसन लिख गये हैं—"एक दिन प्रातःकाल मेजर आदम ने पाँच हज़ार सैनिकों को लेकर इतने पराक्रम से शत्रु की चालीस हज़ार

सेना पर आक्रमण किया कि उसमें शत्रु के १५००० आदमी मारे गये एवं सैकड़ों गोले छोड़कर नवाब की सेना भाग खड़ी हुई।"

सामयिक इतिहासों में इस युद्ध का जो वर्णन मिलता है, उससे मालूम होता है कि बाहु-बल की अपेक्षा समर-कौशल की ही इस युद्ध में प्रधानता थी। फलानुसार इसकी गणना भी पलासी-युद्ध की भाँति अंग्रेजों से सम्बन्ध रखने वाले भारतीय इतिहास के प्रधान युद्धों में है। इस युद्ध में मीरक़ासिम की सारी आशायें नष्ट हो गईं; इस युद्ध से भारत में अंग्रेजों का पैर दृढ़ता-पूर्वक जम गया; इस युद्ध में ही मुग़ल-साम्राज्य का टिम-टिमाता हुआ दीपक सदैव के लिए बुझ गया! इस हिसाब से यह युद्ध भारत के पिछले काल के इतिहास में हमारे पतन का चिर-स्मारक हो रहा है!

उधवानाला के समीप भागीरथी के किनारे नवाबी राज्य में एक छोटा क़िला बना था। उसकी एक ओर भागीरथी बहती थी और दूसरी ओर उधवानाला बहता था। अपनी परिस्थिति एवं सुदृढ़ प्राचीर के कारण यह स्थान दुर्ग था। क़िले के नीचे होकर मुर्शिदाबाद से पटना जाने वाली सड़क बनी हुई थी। भागीरथी के किनारे पगडंडी थी; उसके एक ओर जल-मग्न तराई थी और दूसरी तरफ़ छोटी-छोटी पर्वतमालायें दूर तक फैलकर उसे सुर-क्षित और दुर्गम बना रही थीं। इस स्थान पर नई चहार-दीवारी बनाकर एवं तोपों को उपयुक्त स्थान पर लगाकर बहु-संख्यक सैनिकों द्वारा शत्रु की गति रोकने की तैयारी मीरक़ासिम ने पहले से ही कर रक्खी थी। गिरिया के युद्ध में पराजित सैनिक भी

आकर नवाव-सेना में सम्मिलित हो गये थे। इस प्रकार उधवा-नाला का नवाब-शिविर कई सहस्र सिपाहियों का आश्रय-स्थल हो उठा। इस सुरक्षित एवं सुदृढ़ दुर्ग को वहुत समय तक गोला-बारी करके भी तोड़ सकने की सम्भावना नहीं थी। बाहु-बल वा पराक्रम से यह जीता जा सकेगा, ऐसी आशा स्वप्न में भी किसी को नहीं थी।

यहाँ पहुँचकर दो कोस की दूरी पर पालकीपुर नामक गाँव में मेजर आदम ने छावनी डाली और घेरा डालने का आयोजन करने लगे। सामने बढ़ने की सुविधा नहीं थी; नवाब की सेना भी सदैव गोली चलाकर अंग्रेजों की गति रोकने को तैयार थी; ऐसी अवस्था में अंग्रेज सेनापति ने भागीरथी के तट पर तोप-मंच बाँधकर उस पर से गोले बरसाना शुरू किया।

तोप-मंच बाँधने में अधिक समय नहीं लगता, सुशिक्षित कारीगर बहुत थोड़े समय में यह काम कर सकते हैं, तथापि मेजर आदम तीन सप्ताह में केवल तीन मंच बना सके। इससे समझा जा सकता है कि नवाबी सेना किस सतर्कता के साथ गोली चला रही थी।

चौबीसवें दिन इन तोपों से गोलों की वर्षा आरम्भ हुई, पर इन मंचों पर एवं उनके आस-पास दुर्गावरोध के लिए उपयोगी बन्दूकों एवं अन्य अस्त्रों-शस्त्रों को लगाकर भी अंग्रेज सेनापति उस प्राचीर का कुछ न बिगाड़ सके।[1]

1 Even when on the twenty-founth day, opened fire from the three batteries he had constructed. the nearest of which was about three hundred yards from the enemy's intrenchment, he found that though manned with seige-guns, the fire produced little or no impression on the massiver amparts which Mir Kasim had throw i up --MALLESON'S DECISIVE BATTLES OF INDIA, P. 167.
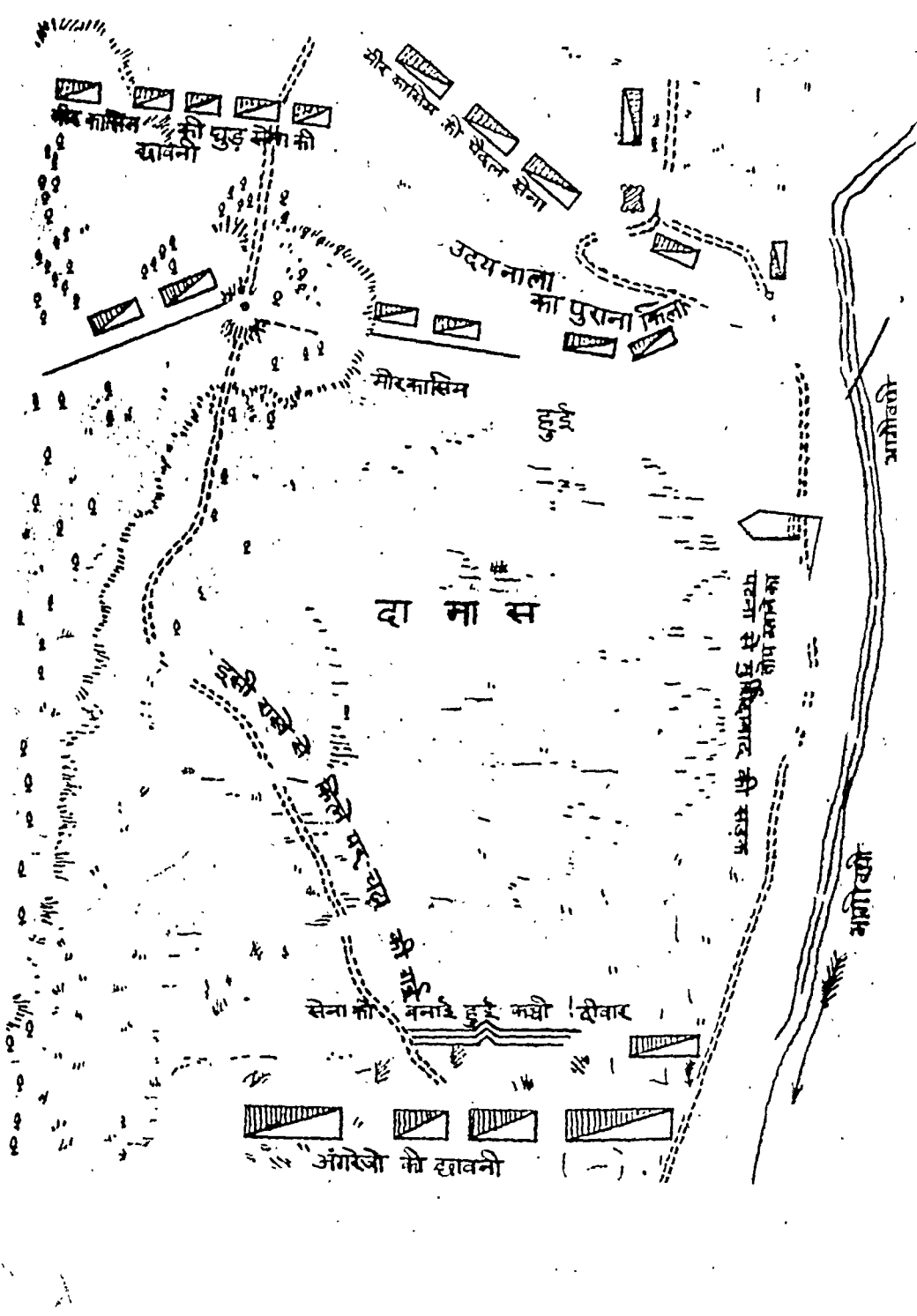
दुर्ग की ओर अग्रसर होने की चेष्टा ही घेरे सम्बन्धी समर-कौशल का नियमित रूप है। इस चेष्टा के लिए तोप-मंच से निरन्तर गोलाबारी करके दुर्ग की प्राचीर तोड़नी पड़ती या उसे लाँघकर दुर्ग में प्रवेश करना पड़ता। उधवानाला में इतने दिन रहकर एवं अनेक उपाय करके भी इन दोनों में से किसी बात की सुविधा मेजर आदम न कर सके। तराई पार किये बिना ससैन्य दुर्ग के नीचे पहुँचना असम्भव था एवं प्राचीर तोड़े बिना दुर्ग में प्रवेश भी नहीं किया जा सकता था। मेजर आदम को जब दोनों ओर से निराशा हुई तो उनका साहस, पराक्रम, आशा एवं विश्वास सब एक बार ही शिथिल पड़ गया। स्वयं मैलीसन इसे मुक्त-कण्ठ से स्वीकार कर गये हैं।[१]

किन्तु इस प्रकार 'न जयौ न तस्थौ' अवस्था में पड़े रहना ही अंग्रेज़ सेनापति के सौभाग्य का कारण हो उठा। थोड़े दिनों बाद नवाबी सेना ने मन में सोचा कि उधवानाला को जीतना अंग्रेज़ों का काम नहीं है। उस समय वे दुर्ग-रक्षा के कार्य में शिथिल होकर विलासिता एवं नाच-गान में दिन काटने लगे।[२] इधर अंग्रेज़-सेनापति, एकमात्र दुर्ग-जय की चिन्ता में ही सतर्कभाव से सुअवसर की प्रतीक्षा करने लगे।

अंग्रेज़-सेनापति के सौभाग्य से थोड़े ही दिनों में ऐसा अवसर प्राप्त हो गया। एक दिन निस्तब्ध रात्रि में मीरक़ासिम की सेना का एक व्यक्ति दुर्ग से भागकर चुपके-चुपके अंग्रेज़-शिविर

1 Nearer he could not advance his guns, nor on the other face could he move his infantry, for the morass, saturate that time of the year, covered the position. The difficulties which presented themselves on all sides were, indeed, sufficient to make the bravest despair.—MALLESON'S DECISIVE BATTLES OF INDIA, P. 187

SCOTT'S HISTORY OF BENGAL.

में आया। पहले यह आदमी कम्पनी का नौकर था; पीछे मीर-क़ासिम की सेना में नौकरी कर ली थी। मीरक़ासिम का नमक खाकर भी वह विश्वासघातक उनका सर्वनाश करने को तैयार हो गया! इतिहास से इसके नाम का पता नहीं लगता; इस व्यक्ति का वर्णन करते समय सभी इसको 'अंग्रेज़-सैनिक' लिख गये हैं!

मेजर आदम ने बड़ी प्रसन्नता से विश्वासघातक सैनिक का गुप्त संवाद सुना—मालूम हुआ कि तराई एवं खाई सर्वत्र गहरी नहीं है; उसमें एक स्थान ऐसा है, जहाँ से उसे पार किया जा सकता है। इसकी जाँच कराके जब सेनापति ने देखा कि बात ठीक है, तो उसकी बात का विश्वास किया।[१]

अब आदम ने क्षणमात्र भी विलम्ब न किया। रात में उसी समय से, अंग्रेज़ी-सेना अस्त्र-शस्त्र के साथ, कष्ट-पूर्वक तराई एवं खाई पार करके क़िले के नीचे एकत्र होने लगी। प्राचीर के बाहर नवाब की सेना के जो दो-चार सैनिक झपकी ले रहे थे, वे सावधान होने के पहले ही संगीन से मार डाले गये! कुछ सैनिकों के चुपचाप तेज़ी से प्राचीर लाँघकर फाटक खोलने के साथ ही अंग्रेज़-सेना तूफ़ान की नाईं क़िले में पिल पड़ी! नवाब-सेना ने आँख खोलते ही देखा, क़िले में चारों ओर शत्रु की सेना व्याप्त है। उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई। युद्ध बिना किस प्रकार शत्रु ने क़िले में प्रवेश पा लिया, इसे न समझ सकने के कारण सब भाग खड़े हुए। दूसरा उपाय न देखकर नवाब-सेना के नायकों ने सेना को लौटाने के विचार से भागने का रास्ता रोक लिया।

1 1810

'जो भागेगा, उसे गोली मार दी जायगी—युद्ध करूँगा, भागूँगा नहीं, चाहे प्राण जायँ'—ऐसी प्रतिज्ञा कर वे कमर कसकर तैयार हो गये; किन्तु किसी ने इस बात पर कान न दिया। विवश होकर वे अपनी ही भागती हुई सेना पर गोलियों की वर्षा करने लगे। भागने का रास्ता बन्द हो गया। सैनिक पर सैनिक गोलियाँ खाकर मरने लगे। दोनों ओर से त्रस्त हो, अपने नायकों के कठोर आदेश से उस समय नवाबी-सेना के पन्द्रह हजार सैनिकों ने प्राण गँवाये।[१] इसके बाद दुर्ग-विजय के लिए अंग्रेजी-सेना को और परिश्रम न करना पड़ा। समरू, मार्कर एवं आराटून इत्यादि विदेशी सेनापतियों ने युद्ध नहीं किया। वे अंग्रेजों के हाथ में विजय-मुकुट सौंपकर मीरक़ासिम के लिए एक मुट्ठी चिताभस्म ले उधवानाला से भाग खड़े हुए!

अंग्रेजों के सामरिक इतिहास में इसे ही अश्रुतपूर्व विजय कहा गया है![२] किन्तु मीरक़ासिम दूसरे ही रूप में इसका वर्णन कर गये हैं। जब उन्होंने यह कलंक-कहानी सुनी तो और आत्म-संवरण न कर सके—तुरन्त (५ सितम्बर, १७६३ ई०) अंग्रेज सेनापति के पास निम्नलिखित पत्र भेजा—

"That for these three months you have been laying waste the King's country with your forces,

1 It was yet barely day-light and the enemy confounded by the suddenness of the attack coming from several quarters, were thrown into inextricable confusion, to add to which, their own guard stationed at the bridge over the Nullah, had orders to fire on any one attempting to cross, with a view of compelling the troops to resistance, a duty which was performed with fearful effect; a heap of dead speedily blocked up the passage.—BROOME'S BENGAL ARMY, VOL. I. 485.

2 BROOME'S BENGAL ARMY.

what authority have you ? If you are in possession of any Royal Sunad for my dismission, you ought to send me either the original or a copy of it, that having seen it, and shown it to my army I may quit this country, and repair to the presence of his Majesty. Although I have in no respect intended any breach of public faith, yet Mr. Ellis regarding not treaties or engagements in violation of public faith, proceeded against me with treachery and night-assaults. All my people then believed that no peace or terms now remained with English, and that wherever they could be found, it was their duty to kill them. With this opinion it was that the aumils of Murshidabad killed Mr. Amyatt, but is was by no means agreeable to me that that gentleman should be killed. On this account I write ; if you are resolved on your own authority that I will cut off the heads of Mr. Ellis and the resf of your chiefs and send them to you.

Exul not upon the success which you have gained merely by treachery and night-assaults, in two or three places over a few jamadars sent by me. By the will of God, you shall see in what manner this shall be revenged and retaliated."

उधवानाला के युद्ध में ही मीरक़ासिम का सर्वनाश हुआ,

अतएव उनके इसे अस्वीकार कर पत्र लिखने से क्या होता ? इसके बाद फिर नवाब की सेना अंग्रेजों की गति रोकने में समर्थ नहीं हुई ।

मीरक़ासिम के अनुग्रह से आर्मीनियन सेनानायकगण क्षमताशाली हो उठे थे । आराटून या ख़ाजा ग्रेगरी नामक अरमानी सेनापति मीरक़ासिम के दरबार में गुर्गनख़ाँ के नाम से प्रसिद्ध थे । विश्वास करके तोपख़ाने का सारा भार मीरक़ासिम ने उन्हीं-पर छोड़ दिया था । कुछ इतिहास-लेखकों ने लिखा है कि उनकी कर्त्तव्य-हीनता से ही मीरक़ासिम का अधःपतन हुआ; किन्तु उन्होंने अपने कर्त्तव्य-पालन में ऐसी शिथिलता क्यों की, प्राप्त इतिहास में इसका कोई उत्तर नहीं मिलता ।

गुर्गनख़ाँ के भाई ख़ाजा पिन्टू बंगाल के इतिहास में प्रसिद्ध हैं । वह सिराजुद्दौला के समय से ही अंग्रेजों की हित-चिन्ता में लगे थे । एक भाई के अपने पक्ष में होने पर मेजर आदम ने उसकी सहायता से गुर्गनख़ाँ को भी मिलाने का यत्न किया था । इस बात को कोई नहीं जानता था पर किसी कारणवश मेजर आदम के अत्याचार से व्यथित हो ख़ाजा पिन्टू ने कलकत्ता के अंग्रेज दरबार में जो पत्र भेजा था, उसीसे यह बात प्रकट हो पड़ी ।[१] धीरे-धीरे यह समाचार मीरक़ासिम के कानों तक पहुँचा । इसके लिए गुर्गनख़ाँ निर्दयता-पूर्वक मारे गये । अंग्रेजों ने गुर्गनख़ाँ से जैसा बन्धु-भाव स्थापित किया था, उससे आगे

1 *Your petitioner begs leave to observe to this Hon'ble Board, at Ouda Nullah. place where the enemy had strong works and great forces, your petitioner by direction from Major Adams wrote two letters to Marcar and Arratoon two Armenian officers, who amongst others, commanded the enemy's forces.--LONG'S SELECTIONS, Vol. 1, 339.*

बहुत काम निकलने की संभावना थी; किन्तु उनकी हत्या से उसका अन्त हो गया।[1]

मीरक़ासिम के विश्वास-भाजन ख़्वाजा ग्रेगरी उर्फ़ गुर्गनख़ाँ ने अंग्रेजों की सचमुच सहायता की थी, यह बात मेजर आदम के उस पत्र से भी प्रकट होती है, जो उन्होंने गुर्गनख़ाँ की हत्या की सूचना के साथ कलकत्ता भेजा था। वह पत्र यों है—

"Dear Sir,— We had a report yesterday that Coja Gregory has been wounded some days ago by a party of his Mogal cavalry who mutinied for want of their pay between Sovage Gurree and Nabab Gunj, it is just now confirmed by a hurcarra arrived from the enemy with this addition that he died next day and that 40 principal people concerned were put to death upon the occasion; though it was imagined that the Moguls were induced to affront and assault Coja Gregory by Cossim Ally Khan, who began to grow very jealous of him on account of his good behaviour to the English."[2]

इन सब घटनाओं के एकत्र न होने पर—केवल बाहु-बल से उधवानाला-समर जय करने पर—मेजर आदम अवश्य ही अद्वितीय वीर कहे जा सकते थे। थोड़ी-सी सेना के साथ, कठि-

1 His brother commanded the artillery of the Nawab at Patna, and was subsequently murdered there the Nawab suspecting him of being too friendly to the English. Had he been alive the massacre (of Patna) might have been prevented through his influence.
—REVD LONG.

2 LONG'S SELECTIONS, VOL 1, 333.

नाइयों को अतिक्रम करके, उन्होंने जिस भाँति कई युद्ध जीते, इसके लिए नवाब के सेनानायकों की विश्वास-घातकता ध्यान में रखते हुए भी उनकी प्रशंसा ही करनी चाहिए। 'जिस तरह हो शत्रु को नाश करो' यह आज-कल की युद्ध-नीति का प्रधान सिद्धान्त है अतः आर्मीनियनों की सहायता से समर जीतने पर भी, (अरमानी सेनापति भले ही विश्वास-घातक कहे जायँ) अंग्रेज सेनापति का नाम इतिहास में गौरव-पूर्वक ही लिया गया है।

पटना का हत्याकाण्ड

It is true you have Mr. Ellis and many other gentlemen in your power; if a hair of their heads is hurt, you can heve no title to mercy from the English; and you may depend upon the utmost fury of their resentment, and that they will pursue you to the utmost extremity of the earth; and should we unfortunately not lay hold of you, the vengeance of the Almighty cannot fail overtaking you, if you perpetrate so horrible an act as the murder of the gentlemen in your custody. —*Major Adams.*

उधवा नाला के युद्ध में सारी आशाओं को नष्ट होते देख मीरक़ासिम उन्मत्त की भाँति हिताहित-ज्ञान-शून्य हो उठे। उनके सीधे हृदय में परिस्थितियों के दबाव से कुटिलता

का जन्म हुआ। दो-चार विश्वासघातकों के आचरण से अपमानित एवं उद्विग्न होकर वह सबको सन्देह की दृष्टि से देखने लगे। मनुष्य का चरित्र परखने एवं पहचानने की शक्ति लुप्त हो गई। वह पटना के अंग्रेज क़ैदियों की हत्या करने को तैयार हो गये।

अंग्रेज-सेनापति ने उनको इस पापमय संकल्प को छोड़ देने के लिए पत्र लिखा; प्रधान मंत्री अली इब्राहीमख़ाँ ने भी बहुत-कुछ समझाया-बुझाया; परन्तु सबकी चेष्टायें विफल हो गईं!

मीरक़ासिम की मानसिक अवस्था की उदारता-पूर्वक आलोचना करने पर, उन्हें पागल कहकर क्षमा करने की इच्छा होती है। जिनके विश्वास पर उन्होंने स्वयं सेना-संचालन का भार ग्रहण नहीं किया, वे जब एक-एक करके विश्वासघात करने लगे, तब मीरक़ासिम अपने ऊपर संयम न रख सके।[1] घटना-प्रवाह से उनका सन्देह दिन-दिन बढ़ता ही गया।

अरबअलीख़ाँ नामक एक विश्वासी सेना-नायक के ऊपर मुँगेर दुर्ग का शासन-भार छोड़ मीरक़ासिम ने पटना की यात्रा की थी। पहली अक्तूबर को मुँगेर में प्रवेश करते ही उस क़िलेदार अरबअली की विश्वासघातकता के कारण अंग्रेजों ने मुँगेर-दुर्ग पर अधिकार कर लिया। यहाँ दो हज़ार सैनिक भी उन्होंने क़ैद कर लिये।[2]

मुँगेर की यह सेना अंग्रेज़ी पल्टन में मिला ली गई और

1 *The recurrence of such serious disasters had rendered Meer Kossim Khan suspicious of all his officers, and more especallly of Goorgeen Khan who was reported to be in communication with the English, through the medium of his brotder Aga Pedroos.*

—*BROOME'S BENGAL ARMY, Vol. 1., 390.*

2 *The English having had Monghyr delivered up to them by the treachery of the Governor, Arab Ali Khan, were advancing fast towards Patna. SCOTT'S HISTORY OF BENGAL, 428—429.*

इस भाँति नवाब की सेना ही के द्वारा नवाब के सर्वनाश की चेष्टा हुई।१ ये सब बातें जब मीरक़ासिम के कानों तक पहुँचीं तब वह सामना करने का साहस न कर सके। उन्होंने तुरन्त क़त्ल का आदेश दिया!

इस हत्याकाण्ड के कारण मीरक़ासिम का वीर चरित्र कलंकित हो गया है। इस घटना से एशिया और यूरोप के लोक-चरित्र की भिन्नता भी स्पष्ट प्रकट होती है। एलिस साहब के अपराधों का अन्त नहीं था; तथापि जिस समय मीरक़ासिम का पत्र मिला, अंग्रेज सेनापति इन सब जातीय क़ैदियों की प्राण-रक्षा के लिए व्याकुल हो उठे; उस समय इन स्वदेश-भक्त वीरों ने सेनापति के पास लिख भेजा—"हम लोगों के दिन पूरे हो चले हैं, अतएव हमें पुरुषोचित वीरता के साथ प्राणदण्ड ग्रहण करना चाहिए। हम लोगों की एकमात्र प्रार्थना यही है कि हमारे प्राण बचाने की आशा वा उत्कण्ठा से आप एक मिनट के लिए भी अपनी युद्ध-प्रणाली में परिवर्तन न कीजिएगा।"२ जीवन के अन्तिम मुहूर्त्त में इस प्रकार स्वदेश एवं स्वजाति की कल्याण-कामना को प्रधानता देकर न जाने कितने नर-नारी इंग्लैण्ड का मुख उज्ज्वल कर गये हैं; उनके इतिहास में ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है। केवल इसी घटना से एलिस साहब की सारी

3 Broome's Bengal Army, Vol. 1. 390.

1 Whatever may have been the faults of Mr. Ellis and his advisers, the close of their career was honourable to themselves and the country that produced them; they wrote to Major Adams expressing their conviction that their fate was sealed and their readiness to submit to it like men, and begging that no consideration for their position might for a moment interfere with the plans or measures of the English commander and his troops.--BROOME'S BENGAL ARMY, P. 388.

कलंक-कालिमा धुलकर स्वच्छ हो गई है और इतिहास-लेखकों ने आदर-पूर्वक उनका नाम लिया है।

राजा रामनारायण, जगत्सेठ, स्वरूपचंद, राजनगर-निवासी वैद्यराज राजवल्लभ इत्यादि अंग्रेज-हितैषी भारतीय पहले ही निर्दयता-पूर्वक क़त्ल किये गये थे! गुर्गनखाँ ने ख़ीमे के अन्दर ही शरीर-रक्षकों के अस्त्राघात से पंचत्व प्राप्त किया था। सेनानायकों में भी कितने ही इस प्रकार क़त्ल कर दिये गये थे। अन्त में अंग्रेज़ बन्दियों की बारी आई। उनका सिर काट लेने का आदेश हुआ। समरू को छोड़ और कोई इस काम के लिए तैयार न हुआ। वह ईसाई था, पर उसने बड़ी ही निर्दयता से इस काम को पूरा किया।[१]

पटना की लोमहर्षण हत्या-कहानी का वर्णन बड़ा ही कारुणिक है। डा० फुलर्टन को छोड़ और कोई नर-नारी बालिका-बालक नहीं बचा। डा० फुलर्टन अपनी सरलभाषा में जो लिख गये हैं, उसके प्रत्येक शब्द से वेदना, करुणा एवं आँसू की बूँदें टपकती हैं। नवाब के कर्मचारियों में जितने हिन्दू-मुसलमान थे, उनमें कोई यह पशुता-पूर्ण कार्य करने को तैयार नहीं हुआ, यही हमारे लिए एक सान्त्वना का विषय है।

समरू के सिपाही जिस समय पटना के कारागार के समीप इस अमानुषिक कार्य को पूरा करने के लिए एकत्र हुए, उस समय प्रभात का तरुण-सूर्य पूर्व-गगन में लालिमा बिखेर रहा

1 *The intelligence of the fall of Mongyr filled up the measure of Meer Kussim's fury, the surrender being attributed to treachery. He now issued the fatal order for the massacre of his unfortunate prisoners but so strong was the feeling in the c none amongst his officers could be found to undertake the office, untill S his services to excute it.--BROOME'S BENGAL ARMY, Vol. I. 390*

था; साहब लोग केवल चाय पी सके थे। इसी समय समरू ने आकर एलिस, हे एवं लसिंग्टन साहब को बुलाया। एक-एक जो बाहर आते, वे क़त्ल होते थे। शीघ्र ही यह कथा भीतर के सब अंग्रेज क़ैदियों को मालूम हो गई। तब आस-पास—छुरी, काँटा, शीशी, बोतल, कुर्सी, कोच—जो चीजें मिलीं, उन्हींसे उन्होंने अपनी आत्म-रक्षा की चेष्टा की। उस समय सैनिकों को क़त्ल करने की आज्ञा मिली। वे आदेश-पालन के लिए अग्रसर तो हुए, परन्तु कार्य की भीषणता देख सिहर गये और निरस्त्र क़ैदियों पर वार करने में हिचकिचाहट प्रकट करते हुए कहने लगे—"क्या यह वीरोचित व्यवहार है? यह तो क़साईखाने की हत्या होगी—बन्दियों को अस्त्र-शस्त्र दीजिए; बिना युद्ध के यों किसी पर वार नहीं किया जा सकता!"

इस धिक्कार से भी नराधम समरू का हृदय विचलित नहीं हुआ। वह आँखें लाल करके गरज उठा; जिन सैनिकों ने धिक्कारा था, उन्हें ज़मीन पर गिरा कर वह बार-बार उत्तेजना-पूर्ण स्वर में आदेश देने लगा।[१] अन्त में वही हुआ, जो होना था; कोई भी मुँगेर की तरफ़ नहीं लौट सका। दूसरे ही दिन सवेरे इन क़त्ल किये हुए निहत बन्दियों की लाशें कुँए में डाल दी गईं। उस समय भी गलस्टन के शरीर में प्राण मौजूद था। सिपाही उन्हें बचाने की सलाह कर रहे थे, किन्तु प्रार्थना करने पर उन्हें भी

1 Their very executioners, struck with their gallantry, requested that arms might be furnished to them, when they would set upon them and fight them till destroyed, but that this butchery of unarmed men was not the work for Sipahis but for "Hallal Khores". Sumroo enraged struck down those that objected, and compelled his men to proceed in their diabolical work until the whole were slain.--BROOME'S BENGAL ARMY. VOL. 1. 399.

जीते-जी कुँए में डाल दिया गया! जो बीमार थे, वे बेचारे भी न बचे। एलिस के हँसते हुए बच्चे की भी रक्षा न हुई![1]

जब हत्या का यह समाचार कलकत्ता के अंग्रेज़ दरबार को मालूम हुआ तो सबके सब दुःखी हो गये। दरबार के अधिवेशन में कोई सहसा हृदय का आवेग प्रकट नहीं कर सका; रुद्ध-कण्ठ से बदला लेने के लिए सबने निश्चय किया कि 'इस मध्यान्ह में कोई जल की एक बूँद भी न पियेगा; सभी शाम को धर्म-मन्दिर में एकत्र होंगे; दुर्ग में, रणतरी से एवं भागीरथी-किनारे सर्वत्र बन्दूक़ की सलामी दी जायगी; चौदह दिन तक अंग्रेज़ शोक-चिन्ह धारण करेंगे एवं जो कोई मीरक़ासिम को पकड़ लावेगा उसे एक लाख रुपये पुरस्कार-स्वरूप मिलेंगे।'[2]

जिन्होंने मीरक़ासिम की निष्ठुर राजाज्ञा के कारण इस प्रकार जान देकर अंग्रेज़ी राजशक्ति के विस्तार में योग दिया था,

1 Neither age nor sex was spared, and Sumroo consummated his diabolical villany by the murder of Mr. Ellis' infant child.--IBID.

2 It is therefore agreed and ordered that a general deep mouring shall be observed in the settlement for the space of fourteen days to commence next Wednesday, the 2nd of November.

That the morning of the day shall be set apart and observed as a public fast and humiliation, and that intimation be accordingly given to the chaplains to be prepared with a sermon and forms of prayer suitable to the occasion.

* * * * *

After paying this necessary duty to the memory of our countrymen, we are further agreed and determined to use all the means in our power for taking an ample revenge on the persons who may have been concerned in this horrid execution, and with a view of detering in future all ranks and degrees of people from ordering or executing such acts of barbarity.

Resolved, therefore, that a Manifesto of the action be published throughout all the country with a proclamation promising an immediate reward of a lack of Rupees to any persons or person who shall seize and deliver up to us Cossim Aly Khan and that he or they shall further receive such other marks of favour and encouragement as may be in our power to show in return for this act of public justice.--LONG'S SELECTION, VOL. 1 p. 335--336.

उनकी शव-राशि पर पीछे से स्मृति-चिन्ह स्थापित किया गया, जो आज तक सुरक्षित है। इस स्मृति-चिन्ह पर जो कुछ लिखा हुआ है, उसे पढ़ते-पढ़ते आज भी हृदय अवसन्न हो जाता है; आज भी मीरक़ासिम का अमानुषिक अत्याचार आँखों के सामने नाच उठता है; आज भी मन में आता है कि हाय, न जाने कब इस पृथ्वी पर ऐसे अत्याचारों का सदैव के लिए अन्त हो जायगा!

जितने दिनों तक राज-धर्म पालन करने के लिए मीरक़ासिम ने अन्यायी अंग्रेज वणिकों के उत्पीड़न से प्रजा एवं देश की रक्षा की चेष्टा की, उतने दिनों तक अंग्रेज दरबार से भी कई सदस्यों ने उनके पक्ष का समर्थन किया। भारत की अवस्था का वर्णन सुन कर विलायत के 'कोर्ट ऑफ़ डाइरेक्टरर्स' ने भी मीरक़ासिम के ही पक्ष में सम्मति दी थी। उसने एलिस एवं आमियट इत्यादि अंग्रेज़ों को पद-च्युत करके मीरक़ासिम के साथ पुनः संधि-स्थापन करने का आदेश भेजा था।

आमियट की हत्या से सहसा युद्धानल प्रज्वलित न होने पर एवं पटना के हत्याकाण्ड में अपनी नृशंसता का परिचय न देने पर, वांसिटर्ट-सरीखे न्याय-प्रिय गवर्नर की शुभाकांक्षा से, मीरक़ासिम अपने उद्देश्य में सफल हो सकते थे; किन्तु डाइरेक्टरों के उक्त आदेश के भारत पहुँचने से पहले ही मीरक़ासिम के जीवन-नाटक की यवनिका गिर पड़ी![1]

---

1 *Court's letter, dated 8 February 1764, as published in Long's Selections, Vol I 370—372.*

देश-त्याग

Conquests are not our aim, and if we can secure and preserve our present possessions in Bengal, we shall rest well-satisfied. —*Courts' Letter.*

विलायत के डाइरेक्टर लोग राज्य-विस्तार के लिए लालायित नहीं थे। राज्य-लोभ के कारण लक्ष्य-भ्रष्ट होने पर वाणिज्य नष्ट हो जायगा, कष्ट-संचित अर्थ से केवल सेना की ही मनोकामना पूरी होगी और कहीं पराजित हुए तो सदैव के लिए अंग्रेजों के भारतीय वाणिज्य का नाश हो जायगा, इसी आशंका से विलायत के कर्ता-धर्तागण पहले से ही राज्य-विस्तार के विरोधी थे। वे केवल धन बटोरने के २
मीरक़ासिम के समय में भी उन्होंने लिख भेजा

विस्तार और आक्रमण हमारा उद्देश्य नहीं है ; बंगाल में वाणिज्य-विस्तार सम्बन्धी जो अधिकार मिले हैं, उन्हीं की रक्षा में हमें सन्तोष है ।" किन्तु इस देश के अंग्रेज मीरक़ासिम को समुचित शिक्षा देने के लिए, और संभव होने पर सशरीर क़ैद करने के लिए, इतने दृढ़ संकल्प हो उठे थे कि अंग्रेजी सेना मीरजाफ़र को सिंहासन पर बिठाकर ही चुप नहीं हुई वरन् मुँगेर से पटना एवं पटना से कर्मनाशा तक मीरक़ासिम का पीछा करने में सचेष्ट हुई ।

१७६३ ई० की पाँचवीं अक्तूबर को पटना का लोमहर्षण हत्याकाण्ड घटित हुआ । उस समय अंग्रेजी सेना मुँगेर में थी । १५ वीं अक्तूबर को मुँगेर से प्रस्थान करके २८ वीं तारीख को वह पटना नगर की सीमा पर पहुँची । एकाएक नगर पर आक्रमण करने का कोई उपाय नहीं था । मीरक़ासिम के आदेशानुसार नगर-रक्षा के लिए सुशिक्षित सेना तैयार थी । लाचार हो मेजर आदम ने नगर घेरकर तोप-मंच निर्माण करने की तैयारी की । इस कार्य में बाधा देने के लिए नवाबी सेना दुर्ग से निकल कर बार-बार अंग्रेजों पर आक्रमण करने लगी । उसके आक्रमण-कौशल से अंग्रेजी सेना घबरा उठी । अन्त में सेनापति ने कर्तव्य का निश्चय करने के लिए सबकी सम्मिलित सभा की । सबने सोच-समझ कर सहिष्णुता का ही उपदेश किया । पीछे स्थिति और ज़टिल हो गई । अंग्रेज सेना के आगमन के पूर्व ही सुशिक्षित अश्वारोहियों के साथ मीरक़ासिम दूर हट गये थे । जो लोग दुर्ग-रक्षा के लिए नियुक्त किये गये थे, उनकी संख्या भी कम नहीं थी । जिन अश्वारोहियों ने मीरक़ासिम के साथ दुर्ग-त्याग

किया था, उनके द्वारा अंग्रेजी सेना के पिछले भाग पर आक्रमण किया जा सकता था। इस परिस्थिति में पड़कर मेजर आदम सहसा दुर्ग पर आक्रमण करने का साहस न कर सके। किन्तु थोड़े ही दिनों में यह आशंका दूर हो गई। सेनापति ने देखा कि अश्वारोही-गण मीरक़ासिम की रक्षा के लिए दूर ही से लौट जाते हैं, वे आक्रमण नहीं करेंगे, केवल दुर्ग की सेना ही युद्ध के लिए सचेष्ट थी। शत्रु-पक्ष की इस दुर्बलता को समझ कर अंग्रेज़- सेनापति दुर्ग पर आक्रमण करने का उपाय करने लगे।

पटना का क़िला, नगर के पूर्वोत्तर, गंगा किनारे बना हुआ था। घेरे की दीवारें बत्तीस फ़ुट ऊँची थीं; उसके नीचे मिट्टी का प्राचीर बनवाकर मीरक़ासिम ने उसे और सुदृढ़ कर दिया था। दुर्ग के नीचे ५० फ़ुट के घेरे में एक खाई भी थी। दुर्ग की रचना अधूरी थी, किन्तु दुर्ग-रक्षक सैनिक रण-कुशल थे। उन्होंने दुर्ग-द्वार के सम्मुख ही दीवारें खड़ी करके एक आँगन-सा बना लिया था, जिससे द्वार खुलने वा टूटने पर भी एकसाथ अधिक मनुष्य प्रवेश न कर सकें। प्राचीर पर स्थान-स्थान पर बन्दूकों का प्रबंध करके सेना सतर्क भाव से क़िले की रक्षा कर रही थी, पर नवम्बर के पहले ही सप्ताह में शत्रु-सेना के गोलों से प्राचीर दो स्थानों पर खण्डित हो गई। इन स्थानों से दुर्ग में प्रवेश करने की संभावना देख मेजर ने छठी नवम्बर को ज़ोर-शोर का आक्रमण किया। नवाबी सेना बहुत प्रयत्न करके भी अंग्रेज़ों की गति रोक न सकी। दुर्ग में प्रवेश करने के साथ ही अंग्रेज़ नायक एक-एक करके प्राण देने लगे, फिर भी शत्रु की सेना परास्त नहीं हुई, वरन् अपने स्वाभाविक धैर्य एवं अध्यवसाय के कारण अन्त में विजयी

हुई। नगर और दुर्ग पर उसका अधिकार हुआ; पटना की मुग़ल-राज्यशक्ति सदैव के लिए विलुप्त हो गई। आक्रमण का समाचार पाकर मीरक़ासिम ने अपने भतीजे मीरअबूअलीख़ाँ एवं बख़्शी रोशनअलीख़ाँ को अश्वारोही सेना के साथ पटना जाने का आदेश दिया था। किन्तु हुआ वही, जो होना था वे देर से पहुँचे। पटना के समीप पहुँचने पर उन्हें मालूम हुआ कि दुर्ग और नगर पर अंग्रेजी झण्डा फहरा रहा है!

अंग्रेजों के यात्रा-पथ में कटवा, मुर्शिदाबाद, गिरिया, उधवा-नाला, मुँगेर एवं पटना इतने स्थानों पर मीरक़ासिम ने जो रोकथाम की थी, उन सबको पार करके जब अंग्रेज पटना तक पहुँच गये, तब मीरक़ासिम को खड़ा होने का स्थान नहीं रह गया। तब भी उनके शिविर में तीस हज़ार रक्षक सेना वर्तमान थी; तब समरू का दल एवं मुगल अश्वारोही दल उनकी आज्ञा पालन करने को प्रस्तुत थे; किन्तु सेनापति वा सैनिक किसी में पहले का-सा उत्साह नहीं रह गया था। बार-बार हार कर वे हताश हो गये थे। सेना में बाहु-बल की ऐसी अवसन्नता एवं निराशा देख मीरक़ासिम देश छोड़ने को बाध्य हुए। पहले उन्होंने रक्षा के लिए महिलाओं को रोहतासगढ़ भेजा, किन्तु पीछे वहाँ से भी उन्हें हट जाना पड़ा। अन्त में स्वयं ससैन्य देश-त्याग करने को बाध्य होना पड़ा!

इन सब घटनाओं की आलोचना करते समय बाज़-बाज़ इतिहास-लेखकों ने लिखा है—"बार-बार पराजित होने के कारण मीरक़ासिम स्वयं भी हताश हो गये थे।"[1] किन्तु यह बात ठीक

1 *Meer Kasim Khan, overcome by this continued series of disasters, gave himself*

नहीं मालूम पड़ती। मीरक़ासिम ने कभी यह नहीं सोचा कि अंग्रेज़ों ने हमें बाहु-बल से हराया है। प्रत्येक युद्ध में आत्मरक्षा का उपयुक्त उपाय करके उन्होंने सेना एकत्र की थी; बाहु-बल की दृष्टि से अपनी सेना को सुदृढ़ बनाने में उन्होंने कहीं भी त्रुटि नहीं की थी। गिरिया, उधवानाला, मुँगेर, पटना, सर्वत्र नवाबी सेना का अगला भाग व्यवस्था-पूर्वक सुरक्षित किया गया था; यथेष्ट गोला-बारूद एवं रसद का संग्रह हुआ था; एक दल की सहायता के लिए दूसरा दल शस्त्रास्त्र से सुसज्जित हो थोड़ी ही दूर पर प्रतीक्षा किया करता था। इन सब उपायों के रहते हुए भी अंग्रेज़ विजयी हुए। किन्तु क्या इस विजय का श्रेय उनके बाहु-बल को है? मीर-क़ासिम ने इसे कभी स्वीकार नहीं किया। उन्होंने अंग्रेज़ों को जो अन्तिम पत्र लिखा था, उससे भी यही ध्वनि निकलती है। सत्य हो या झूठ, पर मीरक़ासिम यह भली-भाँति समझ गये थे कि 'सिराज के समय में जो घटित हुआ था, वही आज भी घट रहा है! वही अंग्रेज़ वणिक, वही मीरजाफ़र, वही जगत्सेठ, राजवल्लभ एवं कृष्णचन्द्र मिलकर उसी प्रकार का कुटिल षड्यंत्र कर रहे हैं।' यही जानकर ज्ञान-शून्य हो मीरक़ासिम ने हत्याकाण्ड कर डाला! वह अधीर हो उठे थे। जब सर्वत्र उसी कौशल से अपने को पराजित होते देखा, तब निराश होकर उन्होंने देश-त्याग किया और अवध में आश्रय ग्रहण करने का निश्चय किया। पटना की ओर यात्रा करते समय बीच में पकड़े जाने पर सिराज की जिस प्रकार भागू कहला कर अनुचित निन्दा हुई थी, मीरक़ासिम की

...[illegible] that fortune had turned against him.—BROOME'S BENGAL ARMY, p. 401.

भी वही हालत थी। भागकर जान बचाने के लिए उन्होंने देश-त्याग नहीं किया वरन् देशोद्धार के लिए ही ऐसा करने को वह बाध्य हुए थे। देश में खड़ा होकर लड़ने का स्थान रहने पर वह कभी ऐसा न करते!

प्राण-भय से भागने पर अंग्रेज़ सेनापति मीरक़ासिम का पीछा करने के लिए व्यस्त न होते। उस समय युद्धाडम्बर को बढ़ाना अंग्रेज़ों के लिए असंभव हो उठा था। राज्य अराजक, ख़ज़ाना ख़ाली, महाराष्ट्र-सेना आक्रमणोन्मुख, वृद्ध मीरजाफ़र नाम मात्र के नवाब—ऐसी अवस्था में व्यर्थ युद्ध बढ़ाने की सम्भावना अंग्रेज़ों के लिए नहीं थी; महिलाओं को रोहतासगढ़ भेजने की बात सुनकर मेजर आदम ने सोचा कि कदाचित् अब मीरक़ासिम उसे ही अपनी राजधानी बनावें, अतः उनका पीछा करना आवश्यक हो उठा।

नवाबी सेना का एक बड़ा अंग मुँगेर इत्यादि स्थानों में विजय के पश्चात् अंग्रेज़ी सेना से मिल गया था, अतएव अंग्रेज़ों को मीरक़ासिम की रहन-सहन और गति-विधि अनुमान करने में बहुत सुविधा हो गई थी। मीरक़ासिम के सहसा रोहतासगढ़ त्याग करने पर अंग्रेज़ी सेना उनको न पा सकी। इच्छा का अभाव नहीं था, चेष्टा का भी अभाव नहीं था; किन्तु सामर्थ्य के अभाव से ही अंग्रेज़ सेनापति मीरक़ासिम की गति न रोक सके। १७६३ ई० की छठी नवम्बर को पटना का क़िला अंग्रेज़ों के हाथ आया। टूटे प्राचीर की मरम्मत कराने, दुर्ग-रक्षा के लिए सेना को यथास्थान रखने एवं उनके रसद इत्यादि की व्यवस्था करने में विलम्ब हो गया। तेरह नवम्बर को अंग्रेज़ी सेना ने बाँकीपुर

से रोहतासगढ़ की ओर प्रस्थान किया। उन्नीस नवम्बर को दाऊदनगर के पास पहुँचकर मालूम हुआ कि मीरक़ासिम ने महिलाओं को धन-रत्नादि के साथ दूसरी जगह भेज दिया है। कप्तान स्मिथ मीरक़ासिम को बन्दी करने की आशा से तुरन्त कर्मनाशा की ओर चले; किन्तु सरसराम तक जाने पर कप्तान साहब को हताश होकर यह संकल्प छोड़ देने को बाध्य होना पड़ा।

बार-बार असफल होकर मीरक़ासिम भली-भाँति समझ गये कि जिनके बाहुबल के भरोसे स्वाधीनता की रक्षा का मैंने आयोजन किया था, उनमें कोई स्वाधीन शासन की रक्षा के लिए लालायित नहीं है। उनमें कोई-कोई तो खुल्लम-खुल्ला विश्वासघात एवं देश-द्रोह कर रहे थे और अधिकांश स्वार्थ से अन्धे हो अंग्रेज़ों की कल्याण कामना में दत्तचित्त थे। जिन्होंने वीरों की भाँति गौरव-पूर्वक मीरक़ासिम के इस महान् यज्ञ में हाथ बटाया था, उनमें अधिकांश मर चुके थे और जो बच गये थे, वे निराशा से शिथिल हो रहे थे। ऐसी अवस्था में बिहार में रहकर सिराजुद्दौला की भाँति व्यर्थ प्राण गँवाने की संभावना थी। तब क्या मुसलमान शासन की रक्षा नहीं हो सकेगी? इस प्रश्न पर विचार करके मीरक़ासिम एकदम हताश नहीं हुए थे, क्योंकि उस समय भी दिल्ली का नाम विलुप्त नहीं हुआ था; उस समय भी बादशाह के नाम से मुसलमानों के हृदय उत्साह से भर जाते थे; उस समय भी अवध के वज़ीर मुसलमान-शासन की आशा की भाँति अपने राज्य की स्वतंत्रता बनाये हुए थे।

वज़ीर (अवध के नवाब पीछे बादशाह दिल्लीश्वर के वज़ीर कहलाते थे) की शरण में जाकर उनके सहयोग से बादशाह

की सहायता ले स्वदेशी शासन बंगाल में पुनः स्थापित करने की संभावना से आशान्वित होकर मीरकासिम ने बहुमूल्य उपहार के साथ अवधेश की सेवा में दूत भेजा। अवध के नवाब शाह शुजाउद्दौला वीर कहलाकर प्रसिद्ध थे, तब क्या वे वीर की मर्य्यादा को ठुकरा देंगे? वीर होते हुए भी शुजाउद्दौला स्वयं दिल्ली की मुसलमान राजशक्ति चूर कर अवध की शक्ति बढ़ाने को व्याकुल थे। इस संघर्ष से मुसलमान शक्ति में जो शिथिलता आगई थी, उसकी ओर मीरकासिम ने कुछ ध्यान नहीं दिया था। जिस बादशाह ने अंग्रेजों के शिविर में आतिथ्य ग्रहण करके अंग्रेजों को बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा की दीवानी का सनद देने का प्रस्ताव किया था वह इस समय उनके विरुद्ध खड़ा होने का साहस कर सकेगा, यह बात मीरकासिम के दिमाग़ में नहीं आई थी। नदी की प्रखर धारा में बहते हुए असहाय मनुष्य की नाईं उन्होंने तृण के टुकड़े को ही प्रबल आश्रय समझ लिया। शुजाउद्दौला के व्यवहार से उनकी आशा और प्रबल हो उठी।
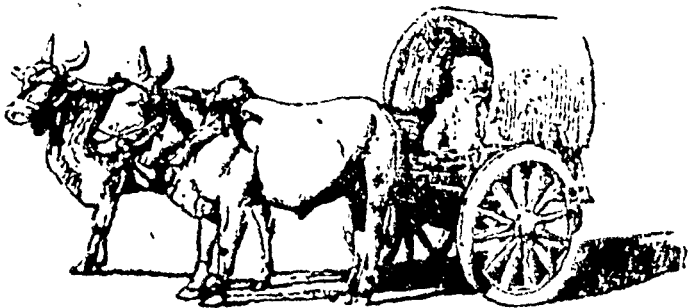
मित्र-लाभ

Meer Kasim Khan received message from Shoojah-oo-dowla, with an invitation to enter his territory, a promise of protection and support, and a copy of the Koran, in the fly-leaves of which this promise and his safe passport written with Shooja-oo-dowla's own hand.

—*Broome's Bengal Army.*

कर्मनाशा के किनारे पहुँचने पर मीरक़ासिम को शुजाउद्दौला का उत्तर मिला। अवधेश ने कुरान के साथ ही उसके आवरण पृष्ठों पर अपने हाथ से आश्रय एवं सहायता

की बात लिखी थी एवं स्नेह-पूर्वक धर्म-बन्धु कहकर सम्बोधन किया था। इस पत्र से आशान्वित हो मीरक़ासिम सपरिवार नदी पार करने को तैयार हुए। साथियों ने उन्हें इस चेष्टा से विरत करने की बहुत चेष्टा की, पर कोई फल न हुआ। कोई मुसलमान कुरान हाथ में लेकर मिथ्या प्रतिज्ञा द्वारा किसी को (और विशेषतः अपने धर्म-बन्धु को) धोखा दे सकता है, इसका विश्वास न करके बालक सिराजुद्दौला अपमानित हुआ था; मीर-क़ासिम का भी शुजाउद्दौला के प्रतिज्ञापत्र के कारण वही हाल हुआ। वह साथियों की बात पर ध्यान न देकर तुरन्त नदी पार करके सपरिवार बनारस पहुँचे। काशी-नरेश बलवन्तसिंह अवधेश के प्रधान सामन्त थे। उन्होंने मीरक़ासिम का आदर-अभ्यर्थना करने में कोई त्रुटि न की।

उस समय भारत-भर में स्वार्थ-चिन्ता ही प्रबल हो उठी थी। मीरक़ासिम बहुत धन-रत्न लेकर पटना से भागे थे। यदि उनके साथ सुशिक्षित सैनिकों का देह-रक्षक दल न होता तो उनके नौकर उनका सर्वस्व लूट लेते। लूट का अवसर पाने के उद्देश्य से सभी ने मीरक़ासिम को अनेक प्रकार की राय दी थी। इस प्रकार के स्वार्थमय परामर्श का अर्थ समझ कर ही उन्होंने साथियों की बात पर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने भली-भाँति सोचकर देखा था कि शुजाउद्दौला कभी प्रतारणा नहीं करेंगे। इसीलिए मित्र-लाभ से प्रसन्न हो उन्होंने अवध की यात्रा की।

मेजर आदम यह समाचार सुनकर कुछ हताश हुए। एका-एक अवध पर आक्रमण करने का साहस न करके दुर्गति नदी के किनारे छावनी डाल उन्होंने शुजाउद्दौला को लिख भेजा—

"मीरजाफ़र ही बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा के असली नवाब हैं; मीरक़ासिम राज-विद्रोही एवं अंग्रेज-हत्याकाण्ड के अपराधी हैं; उन्हें आश्रय देने पर आपके साथ हमारा कलह होगा।" किन्तु शुजाउद्दौला ने अंग्रेज सेनापति का पत्र रद्दी की टोकरी में डाल दिया।

इस घटना के बाद मेजर आदम अधिक दिन जीवित न रहे। सर्वदा सैनिक कार्रवाइयों में लगे रहने के कारण उनका स्वास्थ्य नष्ट हो गया था। फिर जब उन्होंने देखा कि अवध के नवाब पर कोरी धमकी का कुछ असर नहीं हो सकता, तो लौट पड़े। पटना एवं मुंगेर होते हुए कलकत्ता पहुँचने पर थोड़े ही दिन बाद उनकी मृत्यु हो गई। अंग्रेजों में हाहाकार मच गया। जिस वीर ने अंग्रेजों की शक्ति को सुदृढ़ करके सर्वत्र गौरव-लाभ किया था, वह सदैव के लिए संसार से चला गया।

मीरक़ासिम ने सदल-बल अवधेश का आश्रय पाकर इलाहाबाद में छावनी डाली। बादशाह (दिल्लीश्वर) उस समय शुजाउद्दौला का आश्रय लेकर लखनऊ में रहते थे। शुजाउद्दौला ही उस समय सब कुछ हो रहे थे। स्वयं बादशाह ने कृपा-भिखारी होकर जिसका आतिथ्य स्वीकार किया था, उसकी मर्यादा का सर्वत्र विजयी होना स्वाभाविक ही था। रुहेलों ने बादशाह को आश्वासन दे ही रक्खा था; शुजाउद्दौला ने भी उन्हें आश्रय-दान दिया; किन्तु बुन्देलखण्ड के राजा किसी की अधीनता स्वीकार करने को तैयार नहीं हुए। उनको दबाये बिना बादशाह के लिए सिंहासन पाने की कोई आशा नहीं थी। शुजाउद्दौला के प्रधान मंत्री बेणीबहादुर पर बुन्देलों को दबाने का भार पड़ा। इसी

समय मीरक़ासिम ससैन्य इलाहाबाद में छावनी डालकर मित्र-दर्शन की आशा से यथायोग्य तैयारी करने लगे।

शुजाउद्दौला के इलाहाबाद पहुँचकर मीरक़ासिम के शिविर में पदार्पण करने का अभिप्राय जताते ही तैयारी ज़ोर-शोर से शुरू हो गई। काम की हुई सुनहली किनखाबों से सुदीर्घ मण्डप बनाकर उसमें शुजाउद्दौला की अभ्यर्थना के लिए सिंहासन रक्खा गया। सिंहासन के बगल में मीरक़ासिम के पात्र-मित्र-गण समुचित वेश धारणकर अवधेश के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे। पट-मण्डप के दरवाज़े से लेकर बहुत दूर तक मीरक़ासिम के सुशिक्षित सैनिक सैनिक वेश-भूषा एवं शस्त्रास्त्र से सज्जित होकर दोनों ओर क़तार से खड़े हुए। उस पथ से सेना की जय-ध्वनि सुनते हुए दस हज़ार अश्वारोही सैनिकों के साथ वीरवर शुजाउद्दौला ने मण्डप में प्रवेश किया। उनके सिंहासनासीन होने पर मीरक़ासिम ने उन्हें अनेक बहु-मूल्य रत्नादि भेंट किये। दोनों ओर से शिष्टाचार-प्रदर्शन में त्रुटि नहीं हुई। बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा के अन्तिम स्वाधीन नवाब के वैभव से विमुग्ध हो शुजाउद्दौला ने सबके सामने उन्हें धर्म-बन्धु कहकर आलिंगन किया। मीरक़ासिम के मन में राज्योद्धार की आशा प्रबल हो उठी। बातचीत के बाद दोनों नवाब एक सुसज्जित हाथी पर सवार हो बादशाह के शिविर में गये एवं यथोचित आदर-प्रदर्शन एवं उपहारादि से दिल्लीश्वर की मर्यादा की रक्षा की। आर्य्यावर्त्त की इन तीन मुसलमान शक्तियों के सम्मिलन की बात सुनकर अंग्रेज़ों की चिन्ता बढ़ गई।

इस समय अंग्रेज़ों का अदृष्ट-गगन मेघाच्छन्न हो रहा था।

मेजर आदम की मृत्यु के पश्चात् ही अंग्रेज़ी सेना में विद्रोह फैल गया। बिहार-विजय समाप्त होते ही सेना को पुरस्कृत करने का वचन मीरजाफ़र ने दिया था। बिहार-विजय समाप्त हो गया, मीरक़ासिम देश छोड़ अवध भाग गये, बंगाल-बिहार-उड़ीसा सर्वत्र मीरजाफ़र के नवाब होने की घोषणा कर दी गई, तथापि सेना को वह पुरस्कार न मिला। इससे रुष्ट होकर पहले गोरों ने, फिर पीछे 'काले सिपाहियों' ने विद्रोह की घोषणा की। यही पहला सिपाही-विद्रोह था। इसे दबाने के लिए मीरजाफ़र और अंग्रेज सब लग गये। जब पुरस्कार देने के बाद किसी प्रकार विद्रोह शान्त हुआ, तब भी अंग्रेज़ी सेना पर सेनानायकों का वह पहला विश्वास नहीं रह गया। उन्होंने सेना को बाँटकर विभिन्न स्थानों पर भेज दिया, ताकि उनके आपस में मिलने की सम्भावना न रहे। इन सैनिकों को अपनी ओर मिलाने के लिए मीरक़ासिम के गुप्तचर अंग्रेज़ी शिविर में लुक-छिपकर पहुँचने लगे। आहट लगने पर सेनानायकों की चिन्ता और बढ़ गई। इस समय मीर-जाफ़र के अतिरिक्त अंग्रेज़ों का और कोई अनन्य-बन्धु नहीं था। जिस विद्या के लिए मीरजाफ़र इतिहास में विख्यात हैं, अंग्रेज़ों की रक्षा के लिए उसी विद्या से काम लेने का निश्चय हुआ।

मीरजाफ़र का नाम स्वदेश-द्रोह के कलंक से सदैव के लिए कलंकित हो गया है, इसीलिए उनका मंत्रणा-कौशल हम आज भूल गये हैं; किन्तु यदि ध्यान से देखा जाय तो कूट-प्रयोग में वह सिद्ध-हस्त थे। उनके मंत्रणादाता महाराज नन्दकुमार इसीके लिए इतिहास में प्रसिद्ध हैं। इस बार भी कौशल-प्रयोग में त्रुटि न हुई। जो उपाय किया गया, उसे उस समय की स्थिति को

देखने एवं देश-काल का विचार करने पर अन्यर्थ कहा जा सकता है। मीरजाफ़र ने गुप्त रूप से शुजाउद्दौला के पास दूत भेजा; मीर शम्सुद्दीन नामक गुप्तचर के द्वारा दोनों नवाबों में पत्र-व्यवहार आरम्भ हुआ। इससे वेणीबहादुर ने ईर्ष्यान्वित हो बादशाह के दरबार में अनेक चालें चलकर उन्हें मीरजाफ़र के पक्ष में मिला लिया। इधर मीरक़ासिम राज्य-भ्रष्ट; उधर मीरजाफ़र राज्य-लोभ से उत्साहित; मीरक़ासिम अकेले एवं मीरजाफ़र अंग्रेज़ों की सहायता से बलवान! ऐसी अवस्था में मीरक़ासिम को छोड़ मीरजाफ़र की ही ओर खड़ा होने से दिल्लीश्वर को पुनः सिंहासन पाने की सम्भावना थी। इन सब प्रलोभनों से लुब्ध होकर एक सनद एवं खिलअत के साथ बादशाह ने राजा शिताबराय को मीरजाफ़र के पास भेजा। अंग्रेज़ों की सहायता से मीरजाफ़र ने सभी जगह जो विजय पाई थी, उसपर दिल्लीश्वर ने इस पत्र में हर्ष प्रकट किया था। उधर यह सब हो रहा था और इधर मीरक़ासिम के साथ पहले की ही भाँति शिष्टाचार चल रहा था। मित्र पाकर इस प्रकार अपमानित होने पर भी मीरक़ासिम ने राजनीति से काम लेना आरम्भ किया। वह अकातर भाव से धन-व्यय करके दरबारियों एवं सरदारों को मिलाने लगे। मीरजाफ़र की सिर्फ़ बात थी और मीरक़ासिम की सुवर्ण-मुद्रा;—उमरावगण बात पर लुब्ध होकर भी सुवर्ण-मुद्रा की मर्यादा की रक्षा करने में उपेक्षा न दिखा सके![1]

1 *Thus the Emperor and the Nawab Vazier were at the same time in communication with, and pledged to both the opposing parties and it appeared doubtful for sometime which side they would finally espouse,—a circumstance that compelled with the earnest entreaties of Meer Jaffier Khan, who was very sanguine in his expectations on this subject had so long retained the English inactive.—BROOME'S BENGAL ARMY, P. 427.*

इस प्रकार बादशाह के दरबार में मीरक़ासिम का पक्ष प्रबल हो उठा। इस प्रकार के विपुल अर्थ-व्यय से पास का खज़ाना शीघ्र खाली हो जायगा, इस विचार को उन्होंने जरा भी प्रधानता न दी। जो कोई कुछ कहता, आशा से उत्फुल्ल मीरक़ासिम वही मान लेते। पीछे स्थिर हुआ, बुन्देलखण्ड के पराजित हुए बिना बादशाह या अवधेश किसी का मीरक़ासिम के राज्योद्धार के लिए अग्रसर होना असंभव है, क्योंकि अवसर पाते ही बुन्देलखण्ड के राजा अवध पर चढ़ाई कर सकते हैं। पहले इसकी व्यवस्था किये बिना मीरक़ासिम को सहायता देना असंभव है।

इससे देर होने की संभावना थी, फिर बेणीबहादुर तो उधर मिला ही था, वह क्यों बुन्देलखण्ड शीघ्र विजय करने की चेष्टा करता? मीरक़ासिम ने विचार करके स्वयं बुन्देलखण्ड पर आक्रमण करना निश्चय किया। उनकी इच्छा जानकर बादशाह ने उन्हें ही सेनापति का पद दिया। सिंहासन पाने से पूर्व मीरक़ासिम हाथ में तलवार लेकर सेना-संचालन करते थे; सिंहासन-च्युत होकर वह फिर हाथ में शस्त्र ले सेना-संचालन का कार्य करने को अग्रसर हुए। अंग्रेज़ों के इतिहास में रणभीरु शब्द से उल्लिखित होने पर भी निष्पक्ष विचारक जानते हैं कि मीरक़ासिम रणभीरु नहीं थे। बहुत थोड़े समय में बुन्देलखण्ड जीतकर वह बादशाह के पास पहुँचे।

अब टालमटोल करने का कोई उपाय न रह गया। मीरक़ासिम के साथ सन्धि करके शुजाउद्दौला बिहार-विजय की तैयारी करने लगे। सन्धि की मुख्य शर्तें ये थीं—गंगा पार कर बिहार में

वज़ीर की सेना के पदार्पण करने के बाद मीरक़ासिम ग्यारह लाख रुपये प्रतिमास 'तनख़ाह' देंगे, स्वराज्य की प्रतिष्ठा के बाद बादशाह को उचित राज-कर देंगे, एवं वज़ीर साहब (अवधेश) को, आवश्यकता पड़ने पर सेना से सहायता करेंगे। इस सन्धि के बाद नवाबी सेना काशी की ओर बढ़ने लगी।
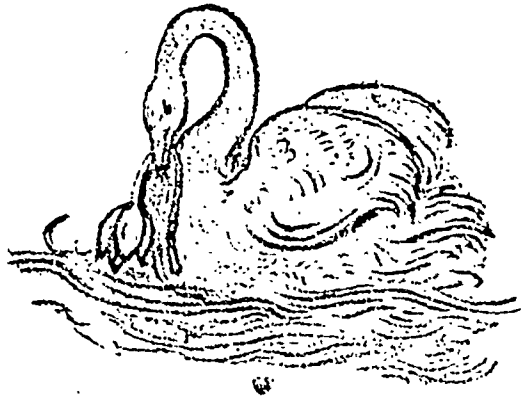
विजय-यात्रा

The Moguls, who are the only good horsemen in the country, can never be brought to submit to the illtreatment they receive from gentlemen wholly unacquainted with their language and customs.

—*Major Carnac.*

मेजर आदम के पश्चात् मेजर कार्नाक प्रधान सेनापति हुए। उन्होंने पद पाते ही अंग्रेजी सेना को सुसंस्कृत करना शुरू किया। अश्वारोही मुगलसेना ही उस समय अंग्रेजी सेना का प्रधान अंग थी। अंग्रेजी सेनानायक अपने स्वाभाविक औद्धत्य के कारण प्रायः इसका अपमान किया करते थे। वह भी ऐसे कृत्यों का उत्तर देने में कमी न करती थी। इससे अंग्रेजी-

शिविर में सदैव कलह मचा रहता था। इस झगड़े को दूर करने के उद्देश्य से मेजर कार्नाक ने मीर मेंहदीखाँ को मुग़ल अश्वारोही दल का नायक बनाने का विचार किया।

मीर मेंहदीख़ाँ पटना के शासक थे। उन्होंने मीरक़ासिम का नमक खाकर भी उनके विरुद्ध मीरजाफ़र का पक्ष ग्रहण किया था। कलकत्ता के अंग्रेज दरबार में मीर मेंहदी की नियुक्ति का प्रस्ताव करने पर इस घटना का हवाला देकर लोगों ने उनकी नियुक्ति का विरोध किया, जिससे मजबूर होकर मेजर साहब को यह विचार त्याग देना पड़ा; परन्तु उस समय अंग्रेज-सेनानायकों के उद्धत स्वभाव के विरुद्ध उन्होंने जो कुछ लिखा था, वह इतिहास में आज भी ज्यों का त्यों अंकित है।

बक्सर के पास छावनी डालकर आक्रमण की प्रतीक्षा में मेजर साहब रसद एकत्र करने लगे; उन्हें रसद का अभाव ही सबसे अधिक चिन्ताजनक जान पड़ा। काशिराज बलवन्तसिंह नवाबी सेना के लिए रसद संग्रह कर चुके थे, अतएव अंग्रेज सेनापति को फिर से रसद संग्रह करने में कठिनता हुई। दुर्भिक्ष की आशंका से खाद्य-सामग्री महँगी हो गई। मीरक़ासिम के अनुचरों ने मूल्य बढ़ाने में त्रुटि नहीं की; महाराज नन्दकुमार ने ज्यादा लाभ के लोभ से अंग्रेजी सेना के लिए खाद्य-द्रव्य बहुत महँगा कर दिया।[1]

ऐसी अवस्था में सहसा आगे बढ़कर युद्ध-घोषणा करने का उपाय नहीं था। नवाबी सेना आगे बढ़ने लगी; अंग्रेजी-सेना

1 There appears good reason to believe that Nand Kumar, the infamous but able minister of Meer Jaffer Khan was deeply concerned in creating and profitting by the scarcity.--BENGAL ARMY, P. 429.

शिविर में ही दिन बिताने लगी। कलकत्ता का अंग्रेज़-दरबार अवधेश का विश्वास नहीं करता था। मीरक़ासिम के राज्योद्धार के लिए वह अंग्रेज़ों से कलह करेंगे, ऐसा विश्वास करके उसने लिख भेजा था—"वज़ीर साहब यदि सचमुच समर-लोलुप हो गये हों तो उनके विहार में पैर रखने के पहले ही उनके राज्य पर आक्रमण करना उचित है।"

लाचार होकर मेजर साहब को युद्ध का भार लेना पड़ा। सेनापति की सभा में उपस्थित अनेक व्यक्तियों ने बिना रसद के शत्रु के राज्य पर आक्रमण करने का विरोध किया। वे पटना की ओर लौटने के लिए व्याकुल हो उठे। इन सब कारणों से अप्रैल के आरम्भ में ही अंग्रेज़ी सेना पटना की ओर चल पड़ी। इससे सिपाही लोग सेनापति कार्नाक को रणभीरु कहकर उसका उपहास करने लगे। पटना के पास छावनी डालने के पश्चात् एक दिन एक घटना से मेजर साहब को सिपाहियों के सामने बहुत लज्जित होना पड़ा। उस दिन सुबह को वह खीमे में बैठकर ताश खेल रहे थे। ऐसे ही समय अपने खीमे के सामने शत्रु-सेना को देख वह भागकर सिपाहियों के पट-मण्डप में पहुँचे; उनकी ऐसी अवस्था देख सिपाही अपनी हँसी न रोक सके। इस घटना से मेजर को बहुत उपेक्षा सहनी पड़ी। इन्हें जासूसों की नियुक्ति के लिए हर महीने काफ़ी धन मिलता था, तब भी शत्रु-सेना इस प्रकार एकाएक उनके खीमे के सामने कैसे आ गई? इस प्रश्न पर विचार करके बहुतों ने मन में स्थिर किया कि सेनापति गुप्त-चरों की तनख़ाह स्वयं ही उड़ा लेते हैं।

युद्ध के प्रथम प्रयास में ही अंग्रेज़ सेनापति के पटना की

ओर लौटने के कारण मीरक़ासिम की सेना को आगे बढ़ने का अवसर मिला। उसने पटना तक अग्रसर होकर अंग्रेज शिविर को घेर लिया। पटना के पश्चिम का समस्त देश विना विशेष प्रयत्न के ही मीरक़ासिम के हाथ आ गया।

प्रायः एक महीने तक नवाबी-सेना अंग्रेजी शिविर को घेरे पड़ी रही। इतने समय में कोई दल किसी को पराजित नहीं कर सका। एक दिन शुजाउद्दौला ने अंग्रेज़ी शिविर पर आक्रमण किया। वह दिन बड़ा भयंकर था। सवेरे से लेकर शाम तक रण-कोलाहल शान्त नहीं हुआ। दोनों ही ओर के वीरों ने रण-कौशल की पराकाष्ठा कर दी। उस दिन सिपाही-सेना के प्रबल प्रताप से अंग्रेज़ों की लाज रह गई। उस दिन शुजाउद्दौला ने जैसी वीरता के साथ बार-बार आक्रमण किया था, मीरक़ासिम भी यदि उसी प्रकार पराक्रम-पूर्वक आक्रमण में सहायता करते तो उसी दिन पटना पर उनका अधिकार हो जाता एवं बिहार से अंग्रेजी शक्ति का नाश हो जाता, किन्तु घटना-चक्र से सारा परिश्रम व्यर्थ हो गया। पीछे बरसात आने पर मीरक़ासिम को बक्सर आकर छावनी डालनी पड़ी।*

धन ही मीरक़ासिम का प्रधान बल है, इसे समझकर अंग्रेज़ों ने अनेक प्रकार से उन्हें अर्थहीन करने की चेष्टा की थी। दिल्लीश्वर अर्थाभाव से तंग थे। धन का पता पाने पर वह छल-बल-

* इस युद्ध का विवरण लिखकर मेजर कार्नाक ने जो पत्र कलकत्ता के अंग्रेज़-दरबार को भेजा था, उसका एक अंश यहाँ उद्धृत करते हैं—

All the principal officers distinguished themselves in their respective stations, and can not say too much of the good behaviour of the army in general and particularly of the Sepahis, who sustained the front of the attack.

कौशल किसी प्रकार से मीरक़ासिम से धन ले सकेंगे, इस आशा से अंग्रेज़ गवर्नर ने पहले ही दिल्लीश्वर को एक पत्र लिखा था [1] किन्तु इससे मीरक़ासिम का कोई अनिष्ट न हुआ वरन् दिल्लीश्वर ने संधि-स्थापन के लिए ही यथासाध्य यत्न किया। किन्तु समरू और मीरक़ासिम को पाये विना अंग्रेजों ने समझौता करने से इन्कार किया। इसीलिए वह प्रयत्न विफल हो गया, क्योंकि दिल्लीश्वर या शुजाउद्दौला किसी ने शरणागत का त्याग करना उचित नहीं समझा।

शुजाउद्दौला के पटना छोड़ने पर भी अंग्रेज़ी सेना ने उनका पीछा न किया वरन् डर कर मेजर कार्नाक कलकत्ता-दरवार की आज्ञा का पालन करने में इधर-उधर करने लगे। एक तो वर्षा की वजह से सेना कम हो गई थी, दूसरे सेना में अब तक विद्रोह का कुछ भाव वर्तमान था, अतएव मेजर साहब ने आगे बढ़ने में असम्मति प्रकाश की; किन्तु कलकत्ता के अंग्रेज़-दरवार ने उनकी बात पर कुछ ध्यान नहीं दिया। वार-वार आगे बढ़ने का आदेश वहाँ से आने लगा। अन्त में एकदम लाचार होकर मेजर साहब ने विचारार्थ सभा बुलाई और अधिकांश सज्जनों की सम्मति से युद्ध-यात्रा की आज्ञा देने को वाध्य हुए। किन्तु उन्हें युद्ध में भाग न लेना पड़ा। वह शीघ्र ही पद-त्याग करके मेजर मुनरो को कार्य-भार दे कलकत्ता चले गये।

[1] *May it please your Majesty, Meer Kasim has carried away with him the money due to the Imperial Court, which was collected in the Treasury together with all the riches of the country. I hope and trust that your Majesty will take from him the balances due to the Court. From the time of Meer Kasim's expulsion Meer Jaffer Khan has been [illegible] ready to obey your commands, and we Englishmen are strict allies to him [illegible] servants of your Majesty, but Mahamud Jaffer Khan is exhausted by the*

मेजर मुनरो ने जिस समय कार्य-भार ग्रहण किया, उस समय शुजाउद्दौला बक्सर में छावनी डालकर बरसात बिताने की तैयारी कर रहे थे। उस समय उनपर आक्रमण करने का कोई उपाय नहीं था। एक तो बरसात के दिन, दूसरे खाद्य-द्रव्य का भी अभाव था। फिर सेना में विद्रोही भावनायें प्रबल हो रही थीं। गोरे-काले सभी असन्तुष्ट थे। सिपाहियों का असन्तोष दिन-दिन बढ़ रहा था; क्योंकि युद्ध के समय तो उन्हें सबके आगे डटकर प्राण गँवाना पड़ता था, पर पुरस्कार या बँटवारे के समय उनके साथ उचित व्यवहार नहीं किया जाता था। मेजर मुनरो ने विद्रोह का मूल कारण दूर करके सुशिक्षा और सुशासन से सेना को अधिक उपयोगी बनाने के लिए पटना में रहकर ही बरसात बिताना उचित समझा।

इधर नवाब के शिविर में भी वर्षा-काल सुविधाजनक नहीं हुआ। बरसात के कारण युद्ध बन्द रहने पर भी सेना में कलह बढ़ने लगा। एक छोटे शिविर में तीन पराक्रान्त स्वाधीन नरपतियों के दीर्घकालिक निवास को दुखकर बनाने वाले विघ्नों की कमी नहीं थी। कुचक्री व्यक्ति छोटी-छोटी बातों को लेकर आपस में सदैव कलह किया करते थे। युद्ध-काल में यह गृह-कलह चुपचाप भीतर ही भीतर दृढ़ हो रहा था। वर्षा-काल में वही प्रबल वेग से ईर्षा-द्वेष की वर्षा करने लगा। एक खीमे से दूसरे में छोटी-छोटी बातें तिल से ताड़ होकर फैलने लगीं। पीछे एक दिन शुजाउद्दौला ने सुना कि मेरे उपकारों को भूलकर मीरक़ासिम ने स्वयं मेरी ही हत्या करने का विचार किया है! ऐसी झूठी बात पर कोई विश्वास

expenses of the present war, and the country is ruined by the violences and oppressions of Meer Kasim--Letter from Governor to the King of Delhi

न करता, पर विश्वासघातक समरू से यह बात सुनकर शुजाउद्दौला मन ही मन मीरक़ासिम से एकदम असन्तुष्ट हो उठे। शाहआलम भी अधिक दिन से सैनिक छावनी में रहते-रहते अधीर हो गये थे। वह गुप्त रूप से अंग्रेज़-सेनापति के साथ संधि करने में प्रवृत्त हुए। मीरक़ासिम की आशा का इस प्रकार समूल उन्मूलन होने का उपक्रम हुआ। इन सब बातों का पता न पाने के कारण वह भावी सुख की आशा से सुख-पूर्वक बरसात काटने लगे। इसीलिए कहना पड़ता है कि भाग्य की शक्ति अजेय है।

भाग्य-विपर्यय

As a last resource Meer Kasim Khan endeavoured to work upon the feeling of shame in the breast of Shooja-oo-dowlah, and assuming the garb of a *fakeer* he seated himself outside his tent with the few of his still faithful adherents clad in like manner.

—*The Bengal Army.*

किस उद्देश्य से शुजाउद्दौला ने मीरक़ासिम को धर्म-बन्धु कहकर स्नेह-पूर्वक आश्रय दिया था, यह अधिक दिन तक छिपा न रह सका। लाभ के लोभ से ही उन्होंने ऐसा किया था, यह धीरे-धीरे प्रकट होने लगा। पहले मनोमालि-

न्य, उसके बाद उपेक्षा और पीछे प्रकाश्यभाव से भर्त्सना का सूत्रपात हुआ। मीरक़ासिम ने सेना की तनखाह देने का वचन दिया था। जिस समय उन्होंने ऐसी शर्त की थी, उस समय उसके पालन करने की शक्ति एवं संभावना थी; क्योंकि एक तो उस समय खजाना खाली नहीं हुआ था, दूसरे पटना पर अधिकार होते ही विहार प्रदेश का राजकर मिलने की आशा थी। पटना पर अधिकार न होने से वह आशा निर्मूल हो गई थी; बादशाह वज़ीर एवं उनके उमरावों को उपहार एवं समय-समय पर घूस देते रहने के कारण खजाना खाली हो गया था। जो कुछ बचा था, उसे भी मीर सुलेमान नामक विश्वासघाती धन-रक्षक लेकर शुजाउद्दौला के ख़ीमे में चला गया। लाचार होकर मीरक़ासिम शुजाउद्दौला के निकट विचार-प्रार्थी हुए; किन्तु अपहृत धन-रत्नादि में से हिस्सा लेने के कारण उन्होंने विचार तो नहीं किया, उलटे तनखाह के रुपयों के लिए मीरक़ासिम की ही भर्त्सना करके उन्हें विदा कर दिया। मीरक़ासिम सम्मान्य शरणागत, अतिथि एवं धर्म-भ्राता थे; किन्तु स्वार्थान्ध हो शुजाउद्दौला ने इस बात का विचार न किया। अपने ख़ीमे को लौटने पर मीरक़ासिम ने फिर उसके भीतर प्रवेश न किया। अभिमान, मर्मवेदना, निराशा एवं विश्वासघात की दारुण-चोट से उनका हृदय टूट गया। वह अपने दस-पाँच सच्चे सेवकों एवं शुभचिन्तकों के साथ फ़क़ीरों के कपड़े पहन ख़ीमे के द्वार पर बैठ गये। जिसने देखा, उसीकी आँखों से आँसू निकल पड़े; सभी शुजाउद्दौला को धिक्कारने लगे। अन्त में स्वयं शुजाउद्दौला ने वहाँ जाकर मीरक़ासिम को वेश बदलने पर बाध्य किया। किन्तु अधिक दिन तक लाज अघाने

का उपाय नहीं था। धन-हीन सिंहासन-च्युत नाम-मात्र के नवाब के रूप में मीरक़ासिम शान्त न रह सके। ख़र्च में कमी करके वह धन का संग्रह करने लगे।

मीरक़ासिम समरू की सेना को विदा करने को तैयार हुए। आधुनिक प्रणाली से समर-शिक्षा पाने पर भारतीय यूरोपीय सैनिकों की समता कर सकते हैं या नहीं, इसकी परीक्षा करने के लिए मीरक़ासिम ने कितने यत्न, कितने व्यय से इस सेना को सुशिक्षित किया था, आज उसीको अर्थाभाव के कारण विदा करते हुए उनका हृदय फटने लगा; पर दुराचारी समरू इससे ज़रा भी विचलित न हुआ। वह पहले से ही छिपे-छिपे शुजाउद्दौला का शरणागत हो चुका था और मीरक़ासिम से विदा होने पर अस्त्र-शस्त्र के साथ उनके शिविर में आश्रय लेने की व्यवस्था कर चुका था। उसने अस्त्र-शस्त्र देना स्वीकार न किया वरन् उद्धत स्वर में बोल उठा—"देखते नहीं हो कि अस्त्र-शस्त्र तुम्हारे हाथ में शोभा नहीं पाते!" मीरक़ासिम ने सजल आँखें ऊपर उठा कर देखा, समरू की सेना शुजाउद्दौला के शिविर के समीप अपनी छावनी डाल रही है। एक पैदल सिपाही वा भेरी-वाहक ने भी उन्हें सलाम नहीं किया!

इसके बाद से भद्रता का सूक्ष्म आवरण नष्ट हो गया। शुजाउद्दौला के आदेश से समरू की सेना ने मीरक़ासिम के ख़ीमे को घेर लिया। हाहाकार मच गया, पर किसी ने इसपर कान न दिया। सब मिलकर मीरक़ासिम को बन्दी कर ले गये; ख़ीमा लूट लिया गया; बेगमों के वस्त्रों तक भी तस्करों के हाथ पहुँच गये। देखते ही मीरक़ासिम का सर्वस्व लुट गया। इस लूट-

खसोट में केवल एक व्यक्ति को छोड़ उनके अन्य अनुगत नौकरों ने भी विश्वासघात करने में कमी नहीं की। केवल एक आदमी शेख मुहम्मदअसूर ने स्वामि-भक्ति का परिचय दिया। वह कुछ धन-रत्नादि लेकर गुप्त-पथ से रुहेलखण्ड चला गया और मीर-क़ासिम के परिवार की व्यवस्था करके उनके छूटने की प्रतीक्षा करने लगा।

इधर शुजाउद्दौला बक्सर में ही नृत्य-गीत में दिन बिताने लगे। मेजर कार्नाक के व्यवहार से अंग्रेज़ी शक्ति की दुर्बलता का परिचय पाकर वह निश्चिन्त हो गये; अपनी रक्षा का कोई उपाय न किया। इस बात का पता पाते ही मेजर मुनरो ने युद्ध के लिए यात्रा की।

निकट पहुँचने पर मेजर साहब की गति रुक गई। नवाब की घुड़सवार-सेना के पराक्रम से अंग्रेज़ी-सेना घबरा उठी। आगे बढ़ना तो दूर रहा, पीछे लौटना भी दूभर हो गया। अंग्रेज़-सेना-नायकों ने घोड़ों को कुदाकर किसी प्रकार नाला पार कर प्राण बचाये। नालों को उलाँघने में अनभ्यस्त मुग़ल अश्वारोही उनका पीछा न कर सके। विजय के नशे में चूर हो जाने के कारण ही नवाब की सेना का सर्वनाश हुआ। लांछित होकर अंग्रेज़ी-सेना अधिक सतर्कता से आगे बढ़ने लगी। व्यूह रचकर युद्धोन्मुख-भाव से वह धीरे-धीरे बक्सर के समीप पहुँच गई। यदि उस दिन उस थकी सेना पर नवाब की सेना ने आक्रमण किया होता तो अंग्रेज़ों का सर्वनाश हो जाता। शुजाउद्दौला को ससैन्य आगे बढ़ते देखकर अंग्रेज़ी सेना में आतंक फैल गया, किन्तु उस दिन आक्रमण न करके शुजा के लौट जाने के कारण उसे विश्राम

करने का अवसर मिल गया। उस रात को अंग्रेजी-सेनानायकों को विश्राम करने का अवसर नहीं मिला; आपस में राय करते-करते ही संवेरा हो गया।

१७६४ ई० की २३ अक्तूबर को प्रातःकाल होते ही नवाब की सेना शिविर से बाहर निकलने लगी। उस दिन अंग्रेजी-सेना युद्ध के लिए तैयार नहीं थी, किन्तु सेनापति के आदेश से उसे तैयार होना पड़ा। पहले दोनों पक्षों ने दूर से बाढ़ दागकर युद्ध की घोषणा की; पीछे दोनों दल भिड़ गये। ऐसा जान पड़ता है, मानों शुजाउद्दौला विजय की आशा से फूल उठे थे। धन-रत्न एवं बेगमादि को शिविर में छोड़ उन्होंने निश्चिन्त भाव से युद्ध-क्षेत्र में पदार्पण किया था। न जाने क्या सोचकर मीरक़ासिम को मुक्ति दे दी। मीरक़ासिम के शिविर छोड़कर चले जाने के बाद ही युद्ध की घोषणा हुई। उस दिन मुग़ल-सेनानायकों ने वीरता का आदर्श उपस्थित कर दिया; अंग्रेज-नायकों ने भी वीरता की पराकाष्ठा कर दी। अंग्रेजी सेना के विजयी होने की सम्भावना नहीं थी, किन्तु उसीकी विजय हुई। मुग़ल-सेनानायकों की मृत्यु हो जाने से सेना भाग खड़ी हुई; इस प्रकार अंग्रेजों के जय-लाभ का पथ सरल हो गया।

मेजर मुनरो ने युद्ध-क्षेत्र से ही इस विजय का समाचार कलकत्ता लिख भेजा; विस्तृत रिपोर्ट पीछे भेजी। इस रिपोर्ट को ही बक्सर-युद्ध का विशेष विवरण कहकर अंग्रेजों के सामरिक इतिहास में स्थान मिला। इस युद्ध में अंग्रेजों की ओर के हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने गोरों से अधिक वीरता का परिचय दिया था, किन्तु इतिहास में इस बात की चर्चा प्रायः नहीं-सी है। मेजर

तथा अवध की तिजारत देनी चाही। मेजर मुनरो ने उनकी रक्षा कि गोरी सेना के हतहतों की संख्या केवल १५१ थी; सिपाहियों में हताहतों की संख्या ६८५ थी। इसका प्रधान कारण यही था कि इस युद्ध में भाग लेने वाली सेना में ८५७ गोरे एवं ७०७२ सिपाही थे। सिपाहियों के ही बाहु-बल से इस युद्ध में अंग्रेज़ विजयी हुए. इसे अंग्रेजी इतिहास-लेखकों ने मुक्त-कण्ठ से स्वीकार नहीं किया है।

एक असावधानी के कारण ही शुजाउद्दौला की पराजय हुई। उन्होंने सब कुछ शिविर में रखकर युद्ध-क्षेत्र में सेना का संचालन किया था। दो-चार सेनानायकों के मरते ही उनकी सेना भागकर शिविर लूटने लगी। इससे प्रायः सभी को युद्ध छोड़ शिविर की ओर भागना पड़ा। नाला पार करके जो कुछ मिला उसे लेकर ही शुजाउद्दौला ने पुल तुड़वा दिया। उस समय तक जो नाला पार नहीं कर सके थे, उन्हें अंग्रेजी-सेना की संगीनों से घायल होकर प्राण त्यागने पड़े। युद्ध समाप्त होने के बाद एक सप्ताह तक घायलों की चिकित्सा की सुव्यवस्था न हो सकी; अंग्रेजों के आहत युद्ध-क्षेत्र में ही पड़े रहे। सेनापति रोज उन्हें देखकर अन्न-जल का इन्तजाम कर दिया करते थे, किन्तु चिकित्सा न होने से उनको पीड़ा असह्य होने लगी। अन्त में बड़ी मुश्किल से उनकी चिकित्सा की व्यवस्था हुई।

दिल्लीश्वर शाह आलम युद्ध-भूमि के पास ही छावनी डालकर निरपेक्ष दर्शक की भाँति युद्ध देख रहे थे। अंग्रेजों की विजय होते ही उन्होंने अपने को पूर्ण-रूप से अंग्रेजों का हिताकांक्षी घोषित किया। उन्होंने अंग्रेजों को विहार-बंगाल एवं उड़ीसा की दीवानी

साहब की रिपोर्ट में हताहतों की संख्या देखने से विदित होता है का भार ग्रहण करके कलकत्ता समाचार भेजा। 'जिन तीन मुसलमान नरपतियों ने स्वदेशी-शासन को सुदृढ़ करने के लिए धर्म की शपथ करके हाथ मिलाया था, उसमें निरुपाय होकर मीरक़ासिम फ़क़ीर हो गये; शाहआलम ने अंग्रेजों के हाथ आत्म-समर्पण किया; एवं शुजाउद्दौला पराजित हो अपने राज्य को लौट गये। यह सब इतनी जल्दी स्वप्न की नाईं घटित हो गया!

मीरक़ासिम का क्या हुआ, इस करुण प्रश्न का विस्तृत उत्तर देने के लिए इतिहास में बहुत कम वर्णन मिलता है। शिविर से मुक्त होकर अधिक दूर जाने के पहले ही रण-क्षेत्र से भागी हुई नवाब-सेना चारों ओर फैल गई थी। शुजाउद्दौला ने दया करके मीरक़ासिम को एक हाथी दिया। हाथी और आरोही दोनों ही दीन-हीन वेश में थे। आरोही को शत्रु के हाथ समर्पित कर देने से एक लाख रुपये मिलने की आशा थी। भागते हुए सैनिकों ने इस उपाय से रुपया पैदा करने की चेष्टा में त्रुटि न की। चारों ओर दुर्भाग्य का ताण्डव देख मीरक़ासिम ने हाथी छोड़ सदर राह त्याग कर जंगल के रास्ते पैदल चलना आरम्भ किया। भूख, प्यास, थकावट एवं दुर्भाग्य की चोट से उनकी दशा ऐसी हो रही थी कि बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा के भूतपूर्व नवाब के रूप में पहचानने की सम्भावना नहीं थी। इसी से मीरक़ासिम की जीवन-रक्षा हुई। किन्तु जान बचने पर भी जीवन धारण करने की सुव्यवस्था नहीं हुई। बहुत क्लेश से किसी प्रकार रुहेलखण्ड पहुँचे। वहाँ कुछ दिन तक प्रभु-भक्त शेख मुहम्मदअसूर की चेष्टा से पेट में दाना पड़ता रहा। धीरे-धीरे सारा सामान समाप्त हो गया।

उनकी व्यथा से व्यथित होकर कुछ दिन तक वहाँ के नवाब नजफ़ुद्दौला ने उन्हें वृत्ति दी थी। उसके बाद मीरक़ासिम का क्या हुआ, इसका किसी को पता नहीं चला।

१७७७ ई० की छठी जून को दिल्ली की सीमा पर एक टूटी कुटी के आँगन में एक अज्ञात पुरुष की मृत-देह धूल में लोट रही थी; उसे दफ़नाने की भी सामग्री न थी। कुटी में एक जीर्ण शाल पाकर नागरिकों ने उसे ही बेचकर समाधि-क्रिया की व्यवस्था की। जिस समय वह मृत-शरीर क़ब्र में रक्खा जाने लगा, उसी समय न जाने किसने अकस्मात् चीख़कर बता दिया कि यही बंगाल के अन्तिम स्वाधीन नरपति मीरक़ासिम हैं!! वह आर्त्त-नाद भी तुरन्त आकाश में विलीन हो गया!

दीवानी सनद

At this happy time, our Royal Firman, indispen-sibly required obedience, is issued;—that whereas, in consideration of the attachment and servce of the high and mighty the noblest of cxalted nobltes, the chief of illustrious warriors, our faithful servants and sincere well-wishers, worthy of our Royal favours, the ENGLISH COMPANY, we have granted them the DEWANEE of the Provinces of Bengal Behar and Orissa from the beginning of Fussul Rubby of the Bengal year 1171. —*The Sunnud.*

बक्सर-युद्ध के दूसरे दिन अंग्रेज-सेनापति मेजर मुनरो को शाहज़ादा शाहआलम का एक पत्र मिला था। यह पत्र ही कम्पनी बहादुर के असाधारण सौभाग्य-लाभ का मूल-

सूत्र कहा जाता है। इसमें शाहआलम ने लिखा था—"मुझे अंग्रेज़ों की विजय से बहुत प्रसन्नता हुई है; इतने दिन बाद मेरी मुक्ति का अवसर आया है। आज तक मैं वजीर शुजाउद्दौला के आश्रय में नजर-बन्द की भाँति दिन बिताता रहा हूँ। अब अंग्रेज़ कम्पनी को बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा की दीवानी का सनद देकर मैंने उसके आश्रय में जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया है।"[1] तीनों नरपति मुसलमान शासन की रक्षा के लिए युद्ध-क्षेत्र में अग्रसर हुए थे, जिनमें मीरक़ासिम ने शुजाउद्दौला के उत्पीड़न से फ़क़ीरी ग्रहण कर ली, शुजाउद्दौला पराजित होकर भाग गये। ऐसी अवस्था में शाहआलम अंग्रेज़ों का आश्रय ग्रहण करने को लालायित हो उठे। इस प्रकार बंगाल-बिहार-उड़ीसा की दीवानी का सनद पाने से अंग्रेजों को भारतवर्ष में राज्य-विस्तार का अवसर मिल गया।

इसके पहले भी शाहआलम ने अंग्रेज़ों को दीवानी देने का आग्रह किया था। कर्नल क्लाइव इसके लिए तैयार थे, पर विलायत के डाइरेक्टरों को उस समय भी भारत की प्रकृत अराजकता की बात पर विश्वास न था; उनको आशंका थी कि शासन में हस्तक्षेप करने से कहीं व्यापार भी नष्ट न हो जाय। शाहआलम के पुनः यह प्रस्ताव उपस्थित करने पर मेजर मुनरो एकाएक इस-पर राय न दे सके। कलकत्ता के कोर्ट में बहस चलने लगी; शाहआलम ने अंग्रेज़ों के शिविर में आश्रय ग्रहण किया।

[1] *On the day following the battle of Buxer, the Emperor Shah Alam ... British Commander, congratulating him upon the victory, and representi... self had been hitherto a mere state-prisoner in the hands of Shouja-... had at length been freed by this fortunate event, and was now only ... self once more under British protection.—BROOME'S BENGAL ARMY*

१७६४ ई० की १९ वीं नवम्बर को कलकत्ता-कोर्ट की सम्मति पाकर दूसरे ही दिन अंग्रेज़-सेनापति ने दिल्लीश्वर के स्वागत का आयोजन किया। २४ तारीख़ को अंग्रेज़-सेनानायकों ने बादशाह के सम्मुख उपस्थित हो यथा-रीति प्रणाम कर 'नज़र' दी।[1] इसके बाद चुनार के क़िले पर आक्रमण करने की तैयारी आरम्भ हुई। शुजाउद्दौला के सेनापति मुहम्मद बशीरख़ाँ ने चुनार-दुर्ग की रक्षा का यथा-साध्य प्रबन्ध किया था। अंग्रेज़ी-सेना दुर्ग पर अधिकार न कर सकी। उसके सैकड़ों सैनिक मारे गये। अंग्रेज़ों ने बनारस के समीप जो शिविर स्थापित किया था, उसपर भी आक्रमण होने की आशंका थी; अतएव अंग्रेज़-सेनापति चुनार छोड़ने को बाध्य हुए और कलकत्ता-कोर्ट तथा शुजाउद्दौला दोनों में सन्धि करा देने को व्याकुल हो उठे।

सन्धि करने में शुजाउद्दौला को इन्कार नहीं था। बेणीबहादुर के साथ अंग्रेज़-सेनापति की बात-चीत चलने लगी। किन्तु मीरक़ासिम एवं समरू को पकड़कर उपस्थित करने की बार-बार उत्तेजना देने के कारण शुजाउद्दौला सन्धि की बात स्वीकार न कर सके। उन्होंने रुहेलखण्ड के हाफ़िज़ रहमतख़ाँ से सन्धि करके उनके वीर रुहेले सिपाहियों को ले विजय की आकांक्षा से इलाहाबाद में छावनी डाल दी। रोहिलों के परामर्श से मराठी-सेना के नायक मल्हारराव होल्कर द्वारा सहायता ग्रहण करने

1 *Such of the officers as will be off duty to-morrow, who choose to wait on the King and wish him joy of being put in possession of Shooja-oo-Dowla's country by the English, are desired to meet at the Head Quarters at 9 o'clock to-morrow morning; it is necessary to acquaint them that it is customary to make him a Salam on the occasion, and the least that should be given by a Captain is five gold mohurs, and three by a Subaltern.—CARACCIOLI, VOL. 11. 62-63.*

का ठीक-ठीक हो गया। इस प्रकार शक्ति-संचय करने के पश्चात् शुजाउद्दौला ने अपने राज्य में पदार्पण किया।

देशी दशा क्या हुई ? जिस देश की असहाय प्रजा के शिल्प-वाणिज्य की रक्षा के लिए मीरक़ासिम सर्वस्व खोकर अन्त में फ़क़ीरी ग्रहण करने को बाध्य हुए, उसकी कथा लिखते समय अंग्रेज़ लेखक भी समवेदना प्रकट करने को मजबूर हुए हैं। देश अराजक हो उठा; अंग्रेज़-मात्र दुर्द्धर्ष हो उठे; नाम मात्र के नवाब मीरजाफ़र अपनी रक्षा न कर सके। उनका स्वास्थ्य पहले से ही खराब हो रहा था। कलकत्ता लौटते ही उन्हें झगड़ों में पड़ना पड़ा। रुपया, रुपया, रुपया ! और कुछ नहीं केवल रुपया !! रुपयों के अभाव से कम्पनी बहादुर का क्रोध प्रबल हो रहा था। देश अराजक होने के कारण राजकर एकत्र नहीं हो पाता था। उधर ख़ज़ाना खाली था; मीरजाफ़र के पारिवारिक व्यय की भी सुविधा नहीं थी। जल-स्थल सर्वत्र बिना शुल्क दिये व्यापार करके अंग्रेज़ वणिकों ने कर की आमदनी घटा दी थी। देशी वाणिज्य का नाम लोप होने-होने को हो गया। ऐसे समय अंग्रेज़ों की अर्थ-लालसा जागकर विकराल रूप धारण करने लगी।[1] मीरक़ासिम के 'अत्याचार' से जिन अंग्रेज़ सौदागरों की हानि हुई थी, उसे पूरा करने की शर्त्त मीरजाफ़र ने की थी। इसके लिए पाँच लाख से अधिक न देना पड़ेगा, यह जानकर मीरजाफ़र ने आसानी से स्वीकार कर लिया था किन्तु पीछे वही पाँच लाख क्रम से दस

[1] *The disturbed state of the country, and the abuse of the English privileges of trade, together with the infamous conduct of the native agents employed by those so [illegible], added to the confusion and difficulties in collecting the revenues, and crippled the resources and industry of the country.--BROOME'S BENGAL ARMY, P. 437.*

लाख, दस लाख से बीस लाख, बीस लाख से तीस लाख एवं तीस लाख से तिरपन लाख हो गया ! 'मीरक़ासिम के स्वाधीन वाणिज्य वाले घोषणापत्र के प्रचार से देशी व्यापारियों को लाभ एवं हम लोगों को नुक़सान हुआ है', यह कहकर सभी अंग्रेज हानि की सूची बनाने लगे। इस बात से कम्पनी का कोई सम्बन्ध न था। इन कर्मचारियों की मनस्तुष्टि के लिए कम्पनी का रुपया बाकी रखकर मीरजाफ़र ने उनकी काल्पनिक हानि के एवज़ में पचीस लाख रुपये दिये, फिर भी ऋण से छुटकारा न मिला।[१] इस प्रकार रुपये लेकर अंग्रेज कर्मचारियों ने उसे कम्पनी को आठ रुपये सैकड़ा सूद पर उधार दे दिया। चूँकि मीरजाफ़र के यहाँ कम्पनी का रुपया बाक़ी था अतएव यह भार और बड़े रूप में उनके सर आ पड़ा। अभागे मीरजाफ़र जिस समय ऐसी शोचनीय अवस्था में थे, उसी समय कम्पनी के कर्मचारियों ने कम्पनी का रुपया चुकाने के लिए उन्हें तंग करना आरम्भ किया! स्क्राफटन लिख गये हैं—'इस समय अंग्रेज कर्मचारियों ने मीर-ज़ाफ़र को 'कामधेनु' बना रक्खा था !'[२]

कलकत्ता में इस प्रकार विडम्बना सह, गलितकुष्ट से पीड़ित मीरजाफ़र मुर्शिदाबाद लौटकर १७६५ ई० के जनवरी महीने में

1 The amount of which compensation, it was stated would not exceed five lakhs of Rupees ; but the demand gradually increased to ten--twenty--thirty--and finally to fifty-three lakhs of rupees, chiefly on account of alleged losses by the interruption of an illicit trade. So strong was the prevelance of personal interest over public duty, that although the claims of the Company were still undischarged, more than half of these demands for compensation were extorted from the Nawab, and the money immediately lent to Government at 8 per cent interest by their own servants, who, however regardful of private advantage were rapidly sinking the pecuniary affairs of the company into a state of ruin." IBID.

2 The Nawab was in fact no more than a banker for Company's servants, who could draw upon him as often and to great an amount as they pleased.—SCRAFTON.

परलोक सिधारे। पाप नष्ट करने के लिए मृत्यु के समय महाराज नन्दकुमार ने, श्री किरीटीश्वरी देवी का चरणामृत लाकर उनके मुख में छोड़ दिया।

मीरजाफ़र ने जिस उपाय से गद्दी पाई थी, उसकी इस देश के इतिहास में बार-बार निन्दा हुई है। जिस उद्देश्य से उन्होंने अपने को बेंचा था, उसकी भी इतिहास में प्रशंसा नहीं है। एक अंग्रेज लेखक स्पष्ट लिख गये हैं—"इस देश के लोग यदि कभी विदेशी शासन से मर्म-पीड़ित होंगे, तब वे मीरजाफ़र को ही मूल कारण कहकर निन्दा करेंगे—नवाबी का बाह्य आडम्बर फैलाकर आत्म-सुख की आशा से ही उन्होंने देश को बेच दिया था!"[१] इस ऐतिहासिक घटना के साथ एक और सिद्धान्त जोड़ा जा सकता है—किसी प्रकार अपने वंश का प्राधान्य स्थापित करने के लोभ से ही उन्होंने ऐसा किया था पर वह प्राधान्य उनके ही जीवन में नाम-मात्र का रह गया। उनको तो कुछ शासन-क्षमता भी थी पर उनके उत्तराधिकारी उससे भी वंचित हुए; जिन्होंने जय-पराजय में चिरसहचर रहने का वचन देकर संधि की थी, उन्होंने दीवानी-सनद ग्रहण करके मीरजाफ़र के पुत्र को 'नवाब नाज़िम' बना डाला!

नवाब के निर्वाचन में देश के लोगों को ज़बान हिलाने का अधिकार नहीं था। यदि अधिकार होता तो वे दो अत्याचारियों से एक को सदैव के लिए विदा करके कम्पनी बहादुर को ही नवाब चुनते। शाहआलम के दीवानी-सनद देने की इच्छा प्रकट

[१] *If the people of this country ever writhe under a foreign [illegible], they have to [illegible] this man,—this Mir Jaffier, who sold his country that he might wear the [illegible] [illegible].—MALLESON.*

लाख, दस लाख से बीस लाख, बीस लाख से तीस लाख एवं तीस लाख से तिरपन लाख हो गया ! 'मीरक़ासिम के स्वाधीन वाणिज्य वाले घोषणापत्र के प्रचार से देशी व्यापारियों को लाभ एवं हम लोगों को नुक़सान हुआ है', यह कहकर सभी अंग्रेज़ हानि की सूची बनाने लगे। इस बात से कम्पनी का कोई सम्बन्ध न था। इन कर्मचारियों की मनस्तुष्टि के लिए कम्पनी का रुपया बाकी रखकर मीरजाफ़र ने उनकी काल्पनिक हानि के एवज़ में पचीस लाख रुपये दिये, फिर भी ऋण से छुटकारा न मिला।[१] इस प्रकार रुपये लेकर अंग्रेज़ कर्मचारियों ने उसे कम्पनी को आठ रुपये सैकड़ा सूद पर उधार दे दिया। चूँकि मीरजाफ़र के यहाँ कम्पनी का रुपया बाक़ी था अतएव यह भार और बड़े रूप में उनके सर आ पड़ा। अभागे मीरजाफ़र जिस समय ऐसी शोचनीय अवस्था में थे, उसी समय कम्पनी के कर्मचारियों ने कम्पनी का रुपया चुकाने के लिए उन्हें तंग करना आरम्भ किया! स्क्राफ्टन लिख गये हैं—'इस समय अंग्रेज़ कर्मचारियों ने मीर-ज़ाफ़र को 'कामधेनु' बना रक्खा था !' [२]

कलकत्ता में इस प्रकार विडम्बना सह, गलितकुष्ट से पीड़ित मीरजाफ़र मुर्शिदाबाद लौटकर १७६५ ई० के जनवरी महीने में

1 The amount of which compensation, it was stated would not exceed five lakhs of Rupees ; but the demand gradually increased to ten--twenty--thirty—and finally to fifty-three lakhs of rupees, chiefly on account of alleged losses by the interruption of an illcit trade. So strong was the prevelance of personal interest over public duty, that although the claims of the Company were still undischarged, more than half of these demands for compensation were extorted from the Nawab, and the money immediately lent to Government at 8 per cent interest by their own servants, who, however regardful of private advantage were rapidly sinking the pecuniary affairs of the company into a state of ruin.—IBID.

2 The Nawab was in fact no more than a banker for Company's servants, who could draw upon him as often and to great an amount as they pleased.—SCRAFTON.

परलोक सिधारे। पाप नष्ट करने के लिए मृत्यु के समय महाराज नन्दकुमार ने, श्री किरीटीश्वरी देवी का चरणामृत लाकर उनके मुख में छोड़ दिया।

मीरजाफ़र ने जिस उपाय से गद्दी पाई थी, उसकी इस देश के इतिहास में बार-बार निन्दा हुई है। जिस उद्देश्य से उन्होंने अपने को बेंचा था, उसकी भी इतिहास में प्रशंसा नहीं है। एक अंग्रेज़ लेखक स्पष्ट लिख गये हैं—"इस देश के लोग यदि कभी विदेशी शासन से मर्म-पीड़ित होंगे, तब वे मीरजाफ़र को ही मूल कारण कहकर निन्दा करेंगे—नवाबी का बाह्य आडम्बर फैलाकर आत्म-सुख की आशा से ही उन्होंने देश को बेच दिया था!"[1] इस ऐतिहासिक घटना के साथ एक और सिद्धान्त जोड़ा जा सकता है—किसी प्रकार अपने वंश का प्राधान्य स्थापित करने के लोभ से ही उन्होंने ऐसा किया था पर वह प्राधान्य उनके ही जीवन में नाम-मात्र का रह गया। उनको तो कुछ शासन-क्षमता भी थी पर उनके उत्तराधिकारी उससे भी वंचित हुए; जिन्होंने जय-पराजय में चिरसहचर रहने का वचन देकर संधि की थी, उन्होंने दीवानी-सनद ग्रहण करके मीरजाफ़र के पुत्र को 'नवाब नाज़िम' बना डाला!

नवाब के निर्वाचन में देश के लोगों को ज़बान हिलाने का अधिकार नहीं था। यदि अधिकार होता तो वे दो अत्याचारियों से एक को सदैव के लिए विदा करके कम्पनी बहादुर को ही नवाब चुनते। शाहआलम के दीवानी-सनद देने की इच्छा प्रकट

1 If the people of this country ever writhe under a foreign yoke, they have to [illegible] this [illegible] Mir Jafar, who sold his country that he might wear the pageantry of royalty.—MALLESON.

करने पर भी ऐसा क्यों किया गया, यह प्रश्न उठाकर बहुतेरे अंग्रेज इतिहास-लेखकों ने कुतूहल प्रगट किया है। एक ने लिखा है—'नाममात्र का नवाब न रहने पर धन हड़पने की सुविधा न होगी, यह सोचकर ही अंग्रेज लोग नवाब नियुक्त करने को इतने लालायित हुए।'[१]

मीरन का पुत्र छः वर्ष का था; मीरजाफ़र के पुत्र नजमुद्दौला बालक नहीं थे। अंग्रेजों ने उन्हें ही गद्दी पर बिठाया। विलायत के डाइरेक्टर लोग इससे असन्तुष्ट हुए। ऐसा क्यों हुआ, इसका रहस्य जानने की चेष्टा में उन्होंने त्रुटि नहीं की। मिल लिख गये हैं—"मीरन के पुत्र के घूस देने में असमर्थता प्रकट करने के कारण ही ऐसा हुआ।[२]" अंग्रेजी कोर्ट के सदस्यों को इस उपलक्ष में लगभग बारह लाख रुपये मिले थे।[३] ऐसी अवस्था में अंग्रेज इतिहास-लेखकों की बात काटने का उपाय नहीं है किन्तु उन लोगों ने केवल अर्थलोभ से ही दीवानी-सनद ग्रहण करना अस्वीकार किया था, ऐसा कहने से अविचार होता है। उन्होंने इस कार्य में हिचकिचाहट भी प्रकट की थी; विलायत के डाइरेक्टरों ने भी हिचकिचाहट प्रकट करते हुए कलकत्ते की अंग्रेजी कोर्ट को इस विषय में बार-बार सावधान कर दिया था। दीवानी का सनद ग्रहण करने पर बादशाह को उचित कर देना होगा;

1 *Possibly they considered that were the Dewanee to pass into the hands of the Company, there should be no Nawab, from whose treasury they could enrich themselves on the plea of presents, restitution, compensation &c,—the frequent periodical assertion of which demands had been reduced to system.*—BROOME'S BENGAL ARMY, P. 498.

2 *Nudjum-oo-Dowla could give presents; the infant son of Meerun,—whose revenues must be accounted for to the Company, could not.*—MILL'S HISTORY OF BRITISH INDIA, VOL, III. 358.

3 *Second Report, p. 21.*

अराजक देश में शीघ्र राज-कर संग्रह न होने पर व्यापार के लाभ से रुपया निकाल कर देना होगा, जिससे कम्पनी के मुख्य कार्य व्यापार में क्षति होने की सम्भावना उठ खड़ी होगी, यही सब सोचकर कलकत्ता की कोर्ट सनद ग्रहण करने में टालमटोल करती आ रही थी। पीछे लार्ड क्लाइव ने आकर साहस करके सनद ग्रहण किया। थोड़े ही दिन में 'कम्पनी बहादुर' का नाम सर्वत्र फैल गया।

परिशिष्ट

(क)

कम्पनी के साथ मीरजाफ़रखाँ का गुप्त संधिपत्र

"I swear by God, and the Prophet of God to abide by the terms of this treaty whilst I have life.

(मीरजाफ़र का हस्ताक्षर)

ARTICLE I.—Whatever articles were agreed to in the time of peace with the Nabob Surajah-Dowlah, I agree to comply with.—II. The enemies of the English are my enemies, whether they be Indians or Europeans.—III. All the effects and factories belonging to the French in the province of Bengal, the paradise of nations, and Behar, and Orissa, shall remain in the possessions of the English, nor will I ever allow them any

more to settle in the three provinces.—IV. In consideration of the losses which the English Company have sustained by the capture and plunder of Calcutta by the Nabob, and the charges occasioned by the maintenance of the forces I will give them one crore of Rupees.—V. For the effects plundered from the English inhabitants of Calcutta, I agree to give fifty lacks of rupees—VI. For the effects plundered from the Gentoos, Mussalmans, and other Subjects of Calcutta twenty lacks of rupees shall be given.—VII. For the effects plundered from the Armenian inhabitants of Calcutta, I will give the sum of seven lacks of rupees. The distribution of the sums allotted to the English, Gentoos, Moors, and other inhabitants of Calcutta, shall be left to Admiral Watson, Colonel Clive, Roger Drake, William Watts, James Kilpatrick, and Richard Becher Esquires, to be disposed of by them, to whom they think proper.—VIII. Within the ditch, which surrounds the borders of Calcutta, are tracts of land belonging to several Zemindars; besides these, I will grant to the English Company 600 yards without the ditch.—IX. All the land lying south of Calcutta, as far as Culpee, shall be under the Zemindary of the English Company.

and all the offices for these parts shall be under their jurisdiction. The revenues to be paid by the Company in the same manner as other Zemindars.—X. Whenever I demand the assistance of the English, I will be at the charge of the maintenance of their troops.—XI. I will not erect any new fortifications near the river Ganges below Hughley.—XII. As soon as I am established in the three Provinces, the aforesaid sums shall faithfully be paid.—Dated the 15th of the month of Ramazan, in the second year of the present reign."

The treaty written and signed by the English contained the sense of all these articles, but not expressed in the same word; and it likewise had one more of the following tenor :—

ADDITIONAL ARTICLE.

"XIII. On condition Meer Jaffier Cawn Bahadur solemnly ratifies and swears to fulfil the above articles, we the underwritten do, for and in the behalf of the Honourable East India Company, declare on the Holy Evangelists, and before God, that we will assist Meer Jaffier Cawn Bahadur with our whole utmost force, to obtain the Subahdarship of the Province of Bengal, Behar, and Orissa, and further that we will assist him to the utmost against all his enemies whatever, whenso-

ever he calls upon us for that purpose, provided that when he becomes the Nabob he fulfils the above articles."

(ख)

मीरक़ासिमख़ाँ का संधिपत्र

"FIRST, The Nabob Meer Mahomed Jaffier Cawn, shall continue in the possession of his dignities, and all affairs be transacted in his name, and a suitable income shall be allowed for his expenses.

"SECOND, The Neabut of the Soubadaree of Bengal, Azimabad, and Orissa, &c., shall be conferred by his Excellency the Nabob, on Meer Mahomed Cossim Cawn. He shall be vested with the administration of all the affairs of the provinces, and after his Excellency he shall succeed to the government.

"THIRD, Betwixt us and Meer Mahomed Cassim Cawn, a firm friendship and union is established. His enemies are our enemies and his friends are our friends.

"FOURTH, The Europeans and seepoys of the English army shall be ready to assist the Nabob

Meer Mahomed Cassim Cawn in the management of all affairs, and in all affairs dependent on him, they shall exert themselves to the utmost of their abilities.

"FIFTH, For all charges of the Company, and of the said army, and provisions for the field, &c., the lands of Burdwan, Midnapoor, and Chittagong, shall be assigned, and sunnuds for that purpose shall be written and granted. The Company is to stand to all losses, and receive all the profits of these three countries; and we will demand no more than the three assignments aforesaid.

"SIXTH, One-half of the Chunam produced at Silhet for three years shall be purchased by the Gomasatahs of the Company, from the people, of the government, at the customary rate of that place. The tenants and inhabitants of that place shall receive no injury.

"SEVENTH, The balance of the former Tuncaws shall be paid according to the Kistbundee agreed upon with the Royroyan. The jewels, which have been pledged shall be received back again.

"EIGHTH, We will not allow the tenants of the Sircar to settle in the lands of the English Company. Neither shall the tenants of the Company be allowed to settle in the lands of the Sircer.

"NINTH, We will give no protection to the dependants

of the Sircar in the lands or factories of the Company. neither shall any protection be given to the dependants of the Company, in the lands of the Sircar; and whoever shall fly to either party for refuge shall be given up.

"TENTH, The measures for war or peace with the Shahzada, and raising supplies of money, and the concluding both these points, shall be weighed in the scale of reason, and whatever is judged expedient shall be put in execution: and it shall be so contrived by our joint counsels that he be removed from this country, nor suffered to get any footing in it. Whether there be peace with the Shahzada or not, our agreement with Meer Mahomed Cossim Cawn, we will, by the grace of God inviolably observe, as long as the English Company's factories continue in the country.

Dated the 27th of September, 1760,
in the year of the Hegira, 1174."

(ग)

मीरजाफ़रखाँ का दूसरा संधिपत्र

ON THE PART OF THE COMPANY.

ON THE PART OF THE NABOB.

FIRST,--The treaty which I formerly concluded with the Company, upon my accession to the Nizamut, engaging to regard the honor and reputation of the Company, their Governor and Council as my own, granting perwannahs for the currency of the Company's trade, the same treaty I now confirm and ratify.

SECONDLY,--I do grant and confirm to the Company, for defraying the expences of their troops, the chucklas of Burdwan, Midnapoor and Chittagong, which were before ceded for the same purpose.

THIRDLY,--I do ratify and confirm to the English, the privilege granted them by their firmaun, and Several husbul-hookums, of carrying on their trade by means of their own dustucks, free from all duties, taxes and impositions, in all parts of the country, excepting the article of salt, on which a duty of two and a half PER CENT. is to be levied on the Rowana or Hooghly market price.

FOURTHLY,--I give to the Company half the saltpetre, which is produced in the country of Poornea, which their gomastahs shall send to Calcutta ; the other half shall be collected by my fougedar, for the use of my offices ; and I will suffer no other person to make purchases of this article in that country.

FIFTHLY,--In the chucla of Silhet for the space of five years, commencing with the Bengal year 1170, my fougedar, and the Company's gomastah, shall jointly prepare Chunam, of which each shall defray half the expenses ; and half the Chunam so made, shall be given to the Company, and the other half shall be for my use.

SIXTHLY,--I will maintain twelve thousand horse, and twelve thousand foot in the three provinces ; and if there should be occasion for more, the number shall be increased proportionably to the emergency. Besides these, the force of the English Company shall always attend me when they are wanted.

SEVENTHLY,--Wherever I shall fix my court, either at Moorshedabad or elsewhere, I will advise the Governor and Council ; and whatever number of English forces, I may have occasion for, in the managment of my affairs, I will demand them, and they shall be allowed me ; and an English gentleman shall reside with me, to transact all affairs between me and the Company ; and a person shall also reside on my part at Calcutta, to negotiate with the Governor and Council.

EIGHTHLY,--The late perwanna issued by Cossim Allee Cawn, granting to all merchants the exemption of all duties, for the space of two years shall be reversed and called in, and the duties collected as before.

NINTHLY,--I will cause the rupees, coined in Calcutta, to pass in every respect equal to the siccas of Moorshedabad, without any deduction of batta ; and whosoever shall demand batta shall be punished.

TENTHLY,--I will give thirty lacks of rupees to defray all the expenses and loss accruing to the Company, from the war and stoppage of their investment ; and I will reimburse to all private persons the amount of such losses, proved before the Governor and Concil as they may sustain in their trade in the country ; if I should not be able to discharge this in ready money, I will give assignment of land for the amount

ELEVENTHLY,—I will confirm and renew the treaty which I formerly made with the Dutch.

TWELFTHLY,--If the French come into the country I will not allow them to erect any fortification, maintain forces, or hold lands, zemindarree, &c. but they shall pay tribute, and carry on their trade as in former times.

THIRTEENTHLY,--Some regulations shall be hereafter settled between us, for deciding all disputes which may arise between the English agents and gomastahs in the different parts of the country, and my officers.

In testimony whereof, we the said Governor and Council have set our hands, and affixed the seal of the Company to one part hereof; and the Nabob aforenamed, hath set his hand and seal to another part hereof: which were mutually done, and interchanged at fort William, the 10th day of July, 1764.

(Signed) HENRY VANSITTART
JOHN CARNAC,
WILLIAM BILLERS
JOHN CARTIER,
WARREN HASTINGS,
RANDOLPH MARRIOTT,
HUGE WATTS."

Demands made on the part of the Nabob Meer Mahomed Jaffer Cawn, to the Governor and Council, at the time of signing the treaty.

THIRDLY,--Let no protection be given, by any of the English gentlemen, to any of my dependents, who may fly for shelter to Calcutta, or other of your districts ; but let them be delivered up to me on demand. I shall strictly enjoin all my fougedars aumils on all accounts, to afford assistance and countenance to such of the gomastahs of the Company, as attend to the lawful trade of their factories ; and if any of the said gomastahs shall act otherwise, let them be checked in such a manner, as may be an example to others.

FOURTHLY,--From the neighbourhood of Calcutta to Hooghly, and many of the perganahs bordering upon each other, it happens, that on complaints being made, people go against the taalookdars, reiats, and tenants of my towns, to the prejudice of the business of the sircar ; wherefore, let strict orders be given, that no peons be sent from Calcutta on the complaint of any one, upon my taalookdars or tenants ; but on such occasions, let application be made to me, or the Naib of the fougedaree of Hooghly, that the country may be subject to no loss or devastation. And if any of the merchants and traders which belonged to the Buxbunder and Azimgunge, and have settled in Calcutta, should be desirous of returning to Hooghly, and carrying on their business there as formerly, let no one molest them. Chandernagore, and this French factory, was presented to me by Colonel Clive, and given by me in charge to Ameer Beg Cawn. For the reason, let strict orders be given, that no English gentlemen exercise any authority therein, but that it remains as formerly, under the jurisdiction of my people.

FIFTHLY,--Whenever I may demand any forces from the Governor and Council for my assistance, let them be immediately sent to me, and no demand made on me for their expenses.

The demands of the Nabob Shujaa-ool Moolk, Hissam-o-Dowla, Meer Mahomed Jaffier Cawn Bahader, Mohabut Jung, written in five articles. We the President and Council of the English Company do agree, and set our hands to, in Fort William, the 10th of July, 1763."

(घ)

दीवानी सनद

"Firmaun from the King Shah Aulum, granting the Dewannee of Bengal, Behar, and Orissa, to the Company. Dated August 12th, 1765,

At this happy time, our royal firmaun, indispensibly required obedience, is issued : that whereas, in consideration of the attachment and service of the high and mighty the noblest of exalted nobles, the chief of illustrious Warriors our faithful servants and sincere well-wishers, worthy of our royal favours, the English Company, we have granted them the Dewannee of the provinces of Bengal, Behar, and Orissa, from the beginning of the Fussal Rubby of the Bengal year 1171, as a free gift and ultumgau, without the association of any other person, and with an exemption from the payment of the customs of the Dewannee, which used to be paid to the court. It is requisite that the said Company engage to be security for the sum of twenty-six lacks of rupees a year, for our royal revenue, which sum has been appointed from the Naboob Nadjum-ul-Dowla Bahadur, and regularly remit the same to the royal Sircar : and in this case, as the said Company are obliged to keep up a large army for the protection of the province of Bengal, &c., we have granted to them whatsoever may remain out of the revenues of the said provinces, after remitting the sum of twenty-six lacks of rupees to the royal Sircar, and providing for the expenses of the Nizamut ; it is requisite that our royal descendants, the Vizers, the bestowers of dignity, the Omrahs, high in rank, the great officers, the Muttasuddies of the Dewannee, the managers of the business of the Sultanut, the Jaghirdars and Croories, as well the future as the present, using their constant endeavours for the establishment of this our royal command, leave the said office in possession of the said Company, from generation to generation, for ever and ever ; looking upon them to be insured from dismission or removal, they must on no account whatsoever give them any interruption, and they must regard them as excused and exempted from the payment of all the customs of the Dewannee, and royal demands. Knowing our orders on this subject to be most strict and positive, let them not deviate therefrom.

Written the 24th of Sophar of the 6th year of the Jaloos [illegible] 12th Aug. 17[illegible]

Contents of the Zimmun.

Agreeably to the paper which has received our sign manual, our royal commands are issued : That, in consideration of the attachment and services of the high and mighty the noblest of exalted nobles, the chief of illustrious warriors, our faithful servanrts and sincere well-wishers, worthy of our royal favours, the English Company, we have granted them the Dewannee of the provinces of Bengal, Behar, and Orissa, from the beginning of the Fussul Rubby of the Bengal year 1172, as a free gift and Ultumgau, without the association of any ather person, and with an exemption from the customs of the Dewannee, which used to be paid to the court on condition of their being security for the sum of twenty-six lacs of rnpees a year for our royal revenue ; which sum has been appointed from the Nabob Nudjum-ul-Dowla Bahadur ; and after remitting the royal revenue, and providing for the expenses of the Nizamot, whatsoever may remain we have granted to the said Company.

THE DEWANNEE OF THE PROVINCE OF BENGAL.
THE DEWANNEE OF THE PROVINCE OF BEHAR.
THE DEWANNEE OF THE PROVINCE OE ORISSA.

सस्ता-साहित्य मण्डल

अ

ज

मे

र

के

मुख्य-मुख्य प्रकाशन

क्रांतिकारी

१	हमारे जमाने की गुलामी	।)
२	नरमेध !	१॥)
३	शैतान की लकड़ी	॥।=)
४	चीन की आवाज़	।-)
५	दुखी दुनिया	॥)
६	जब अंग्रेज़ आये	१।=)

२

बल-प्रद

१	आत्मा-कथा (दोनों खण्ड)	२)
२	विजयी बारडोली	२)
३	दक्षिण आफ्रिका का सत्याग्रह (दो भाग)	१।)
४	स्वाधीनता के सिद्धांत	॥)
५	शिवाजी की योग्यता	।=)

३
जीवन-प्रद

४
ज्ञान-प्रद

५

'त्यागभूमि'

१ गंभीर लेख

२ स्फूर्तिप्रद कवितायें

३ दिल उठाने वाली कहानियाँ

४ सुरुचिपूर्ण एव कलामय चित्र

और

५ वार्षिक मूल्य केवल ४)

"मेरी राय में हिन्दी में सबसे अच्छी पत्रिका 'त्यागभूमि' है

जवाहरलाल नेहरु

"मैं हिन्दी में त्यागभूमि को सर्वोपरि मासिक पत्रिका समझता हूँ।"

पुरुषोत्तमदास टण्डन